परमानन्द सागर

[पद संग्रह]

सचित्र

संपादक
डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
एम. ए., पी-एच. डी
रीडर, संस्कृत-हिन्दी विभाग
अलीगढ विश्वविद्यालय, अलीगढ

भूमिका लेखक
डॉ० हरवंशलाल शर्मा
एम. ए., पी-एच. डी.; डी. लिट्
प्रोफेसर एव अध्यक्ष
संस्कृत-हिन्दी विभाग, अलीगढ विश्वविद्यालय

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

मूल्य १२)

श्री परमानंददास जी के परमाराध्य लीलानायक

श्री गोवर्धननाथ जी

[ब्लॉक श्री परीख जी के सौजन्य से]

सम्पादन के विषय में

पुष्टि मार्ग के 'द्वितीय सागर' भक्त प्रवर परमानन्ददास जी के काव्य का प्रस्तुत सग्रह एव सम्पादन प्रारम्भ में अलीगढ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए गवेषणात्मक प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से किया गया था परन्तु ज्यों-ज्यो इस दिशा में प्रयास अग्रसर हुआ मेरे सुप्त साम्प्रदायिक सस्कार जगते चले गए और शोध-दृष्टि गौण सी होती गई। परिणाम स्वरूप परमानन्ददास जी के कीर्तन-सग्रह की ही इच्छा बलवत्तर होती गई। कुछ मासो में लगभग सभी छपे हुए उपलब्ध कीर्तन एकत्र कर लिए गए किन्तु उससे न उद्देश्य पूरा हुआ न मनस्तुष्टि। बार बार चित्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के लिए छटपटाता था। सवत् २०१२ की देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन श्री गिरिराज की तरहटी में भटकते हुए मुझे सम्प्रदाय के मर्मज्ञ परम भगवदीय श्री भाई द्वारकादास जी परीख के दर्शन हुए। उन्होंने मेरा मन्तव्य सुनते ही मानो परमानन्ददास जी के किसी भक्त की वे प्रतीक्षा ही कर रहे हो— तुरन्त अपने पास की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां दे देने का वचन दे दिया। तदनुसार एक दिन अपने शोध निर्देशक गुरुवर डॉ० हरवशलाल जी, प्रोफेसर एव अध्यक्ष सस्कृत-हिन्दी विभाग अलीगढ विश्वविद्यालय के साथ आगरे जा पहुँचा, और मुझे दो प्रतिया मिल गई। एक तो सवत् १७५४ की थी और दूसरी वर्षा में भीग जाने से अतिम पृष्ठ फट चुका था पर लिखावट के आधार पर लगभग इसी सन् सवत् के आसपास की प्रतीत होती थी। अत कार्य प्रारभ हुआ और इन दोनों ही प्रतियो के कीर्तन भी संगृहीत कर लिए गए। इसके उपरान्त दतिया राज पुस्तकालय में भी स्वय जाकर किन्हीं परमानन्ददास जी की पुस्तकें भी देखी। परन्तु भाव, भाषा, शैली सभी दृष्टियो से वे हमारे चरितनायक से कोई भिन्न परमानन्द ही सिद्ध हुए। अपने पूज्य पिता स्वर्गीय पडित यादवनाथ जी शुक्ल के सग्रह में भी एक जीर्ण शीर्ण प्रति निकली जिसे दीमकें चट कर गई थी परन्तु इसमें भी सन् संवत् नही था। प्रति साधारण लिखावट की अपूर्ण थी। परन्तु पदो का क्रम नित्य सेवा का ही था। तदनन्तर श्रीनाथद्वार एव काकरौली की यात्राएँ की गई और वहा के महाराजश्री एव श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री वागरौदी की कृपा से प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के दर्शन का सौभाग्य हुआ। काकरौली के महाराजश्री गुजरात पधारे हुए थे अत. पूज्य कण्ठमणि शास्त्री की अनुपस्थिति में श्री छोगालाल जी ने उन प्रतियो के दर्शन कराए। वहाँ बैठ कर उस अल्प काल में जो भी परिचय उन हस्तलिखित प्रतियो का मैं ले सका सब लिपिबद्ध कर लिया। कुछ पद भी लिखे किन्तु समया-भाव और छोगालाल जी की कार्यव्यस्तता से कुछ अधिक पद उपलब्ध न हो सके, प्राय. सभी प्रतियाँ कीर्तन पद्धति पर ही थीं। सूर की भाँति स्कधात्मक क्रम से कोई भी प्रति नहीं मिली।

परन्तु शोध-प्रबन्ध के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होगई थी अत उक्त यात्रा से वापस आकर अपने शोध-प्रबध को पूरा किया। इस प्रबध पर अलीगढ विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। इस विश्वविद्यालय के सस्कृत-हिन्दी विभाग का यह सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध था। इसके उपरान्त "परमानन्द सागर" के पद अधिक से अधिक सख्या में जिज्ञासु भक्तो को उपलब्ध हो सकें इस दृष्टि से उक्त पद-संग्रह और परमानन्ददास जी की सक्षिप्त जीवनी जो एक प्रकार से उस शोध का साराश था अपने प्रेरक गुरुवर डा० हरवशलाल जी

की भूमिका सहित छपवा डालने का निश्चय किया। परन्तु इस दिशा में अपने सहायक एव कृपालु परम भगवदीय बन्धुवर परीख जी से मार्ग निर्देशन लेना अत्यावश्यक प्रतीत हुआ।

अत उन्ही की दोनो प्रतियो के आधार पर पाठ-भेद देना भी निश्चय करके प्रस्तुत पद-सग्रह का कार्य प्रारम्भ किया और क्रम भी उन्ही के आदेशानुसार वर्षोत्सव, नित्यसेवा क्रम एव दीनता, महात्म्यादि का रखा गया। जहाँ पाठान्तर प्रतीत हुआ या इतना पाठ भेद मिला कि पदों में पुनरावृत्ति सी प्रतीत हुई उन्हें परिशिष्ट में रख दिया गया। इस प्रकार प्रस्तुत पद-सग्रह चार भागो में विभक्त हुआ —

१—वर्षोत्सव के पद
२—नित्य सेवा के पद
३—दीनता, विनय महात्म्य आदि के पद तथा
४—परिशिष्ट।

इस प्रकार लगभग ६३० पदो का यह प्रस्तुत सग्रह अबसे पूर्व के सभी सग्रहो से विशाल और सम्प्रदाय-पद्धति के अनुसार है। इस सग्रह में कतिपय पदो में पुनरावृत्ति हुई है उसका कारण पाठभेद ही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस सग्रह का आधार परीख जी वाली दो हस्तलिखित प्रतियां तथा वर्षोत्सव, नित्य कीर्तन सग्रह के तीनो भाग हैं। अत. पाठ भेद उक्त दोनो हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर ही दिया गया है।

पाठो में सर्वत्र ब्रजभाषा की प्रवृत्ति का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए शब्दों की एकरूपता पर भी ध्यान रखा गया है। 'श' के स्थान पर 'स', 'य' के स्थान पर 'ज', 'व' के स्थान पर 'ब', 'ण' के स्थान पर 'न', 'क्ष' के स्थान पर च्छ' अथवा 'छ' एव ष और ख दोनो ही प्रयोग चले हैं। 'ड', 'ढ' के नीचे बिन्दी का प्रयोग नहीं किया गया। मात्राओ में जहाँ तक हो सका है पूरी सावधानी बर्ती गई है। स्वय प्रूफ सशोधन करते हुए भी प्रस्तुत सग्रह में त्रुटियाँ अवश्य रह गई होगी जो अगले सस्करण में अवश्य ही दूर की जा सकेंगी।

प्रस्तुत सग्रह कैसा बन पडा है यह तो विद्वानो के विचार की बात है, परन्तु इसमें जो भी अच्छा है वह मेरे गुरुदेव डा० हरवशलाल एव बधुवर भगवदीय श्री द्वारकादास जी परीख की अनवरत कृपाओ का परिणाम है। इन दोनो महानुभावो का आभार मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ। इस पद सग्रह में जो दोष हैं वे मेरी अनुभवशून्यता और अनभिज्ञता के कारण हैं। फिर भी जो हुआ है वह सब कर्तुमकर्तुमन्यथाकुर्तसमर्थ लीला नायक श्री गिरिराजधरण की कृपा और प्रेरणा का फल है।

अन्त में एक वार पुन अपने गुरुदेव डा० हरवशलाल जी एव बधुवर परीख जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हुआ भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ के अध्यक्ष बधुवर प० बद्रीप्रसाद जी शर्मा को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'सागर' के प्रकाशन में भरपूर रुचि ली है।

दिनांक १४–४–५८ गोवर्धननाथ शुक्ल

भूमिका

विक्रम की १६ वी शताव्दी विश्व के इतिहास मे एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। प्राय सम्पूर्ण ससार की भाषाओ के साहित्य मे इस शताव्दी मे एक विशेष क्रान्ति हुई। धार्मिक भावना को लेकर वह साहित्य सर्जना उस समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक की परपराएँ निहित हैं। मानवता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का यह अद्भुत उपाय था। अन्त और बाह्य साधनाओ का जैसा सुन्दर सामजस्य इस शताव्दी के साहित्य में दीख पडा वैसा पहले कभी प्रस्तुत नही हो सका और नही आजतक सम्भव हो सका है। भारतीय साहित्य का यह अद्भुत युग था। साहित्य, धर्म और नीति की त्रिवेणी का पावन तीर्थराज इसी शताव्दी मे सभव हो सका। विभिन्न युगो के अभेद्य स्तरो के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई, अनेक दिशाओ से उल्टी सीधी बहकर आने वाली विविध विचार धाराओ को आत्मसात् करती हुई, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की सिद्धात-सार-सुधा से प्राणियो के अन्त.-करण को तृप्त करती हुई भारतीय साधना की इस त्रिवेणी ने साहित्य-सागर को इतना लबालव भर दिया कि आज भी उसकी तरल तरगो मे मज्जन और अवगाहन करने से चिर शान्ति प्राप्त होती है।

भारतीय साहित्य मे इतनी उदारता, इतनी पावनता, इतना स्थायित्त्व और इतनी सर्वांगीणता का एक मात्र कारण केवल वैष्णवता है। भारतवर्ष को धर्मप्राण देश कहा गया हैं। यह धर्म के नाम पर अनेक पाखडो का भी प्रचार हुआ। वास्तव में धर्म का एकमात्र प्रतिमान मानवीय वृत्तियो का परिष्कार और समाज का उन्नयन है।

जिस धर्म के द्वारा मानववृत्तियो का परिष्कार होता है जिसके हृदय मे सत्य, शील और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होती है, सरसता, स्निग्धता, सहिष्णुता और मधुरता का सचार होता है वही धर्म उदार है। इसलिए वैष्णव धर्म अवश्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा जा सकता है। जाति-पाँति के बधन से परे सामाजिक भेदभावो को तोड कर मानव मानव को एक धरातल पर खडा करने वाला यह वैष्णव धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का प्रतिफल है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। अनेक विदेशियो ने इस धर्म को स्वीकार कर गौरव और गर्व का अनुभव किया। हूण, आन्ध्र, पुलिंद, पुलकस, आभीर, यवन, खस आदि जातियो के पुरुष भी इस धर्मध्वज के आश्रय मे पवित्र माने गए हैं। श्रीमद्भागवत मे स्पष्ट निर्देश है—

'किरात-हूणान्ध्र-पुलिंद-पुलकसा ।
आभीर-कका-यवना खसादय ।।
येऽन्येत्र पापा यदुपाश्रयाश्रया ।
शुध्यति तस्मै प्रभविष्णवे नम ।।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस धर्म का मूलमत्र है, अहिंसा इसका आधार है, और मानवता मे ईश्वरत्व का आरोप इसकी साधना है। अपनी विकृत अवस्था मे वैष्णव धर्म चाहे जैसा रहा हो, पर उसने अपने मूलमत्र के आधार को और साधना को नही छोडा। मानवमात्र के कल्याण की भावना से अनुप्राणित यह वैष्णव धर्म मगलात्मक मनोहर कला का स्रष्टा रहा है।

वैष्णव धर्म को अनेक नामो से अभिहित किया गया है। उनमे भागवत नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। वैदिक काल से लेकर आजतक का धर्म का इतिहास एक प्रकार से भागवत धर्म का इतिहास है। यह नामकरण कब हुआ यह विचारणीय विषय नही है। पर इस भागवत धर्म के तत्त्व वेदो में भी मिलते हैं। इसमे सन्देह का स्थान नही। महाभारत धार्मिक क्रान्ति की पहली आधार शिला हैं जिसपर समाधिस्थ होकर मनुष्य भागवत धर्म की विभिन्न परपराओ का साक्षात्कार कर सकता है। वैष्णव धर्म और भारतीय सस्कृति का यह पहला विश्वकोष है। शाति पर्व के नारायणीयोपाख्यान मे इस भागवत धर्म का वडा सुन्दर विवेचन हुआ है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की धार्मिक क्रान्तियो का सुन्दर समन्वित रूप नारायणीयोपाख्यान मे प्रस्तुत किया गया है। भागवतधर्म वैदिक तत्वज्ञान को सर्व-जन-सुलभ करने का सुन्दर उपाय प्रस्तुत करता है। वैदिक और अवदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आर्य और निषाद सस्कृतियो का सुन्दर सुखद सगम भागवत धर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता मे इस धर्म का सार सगृहीत हैं। भागवत धर्म की विजय वैजयन्ती शताब्दियो तक भारतभू पर फहराती रही। बौद्ध धर्म के आगमन से फिर विषमताएँ उत्पन्न हुई, जो शताब्दियो तक समानातर चलती रही। धर्म मे फिर एक वडी क्राति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। बौद्ध धर्म निवृत्ति परक धर्म था और भागवत धर्म प्रवृत्तिपरक। इस निवृत्ति और प्रवृत्ति के अन्तर को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। बौद्ध धर्म की महायान शाखा उन्ही प्रयत्नो मे एक भगीरथ प्रयत्न कहा जा सकता है। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय मे जन साधारण के कल्याण के कुछ समान मार्ग निकाले गए जो केवल नामभेद से शताब्दियो तक चलते रहे। वैष्णव, शैव, शाक्त जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायो ने इन प्रयत्नो मे योगदान दिया। हमारा पुराण साहित्य इसी युग की कृति है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि वैष्णव, शैव, ब्राह्म, सौर आदि सब पुराणो मे एक ही भावना मिलती है। केवल नाम का भेद है। इतना ही नही जैन और बौद्ध पुराण भी उसी भावना से अनुप्राणित हैं। कविकुल-गुरू कालिदास ने रघुवश मे लिखा है—

वहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थान सिद्धिहेतव ।
त्वय्येव निपतत्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।

ईसा के आविर्भाव के लगभग भारतीय धर्म-क्षेत्र में एक और वडी क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति सभवत उस समय हुई जब शको और हूणो के आक्रमण उत्तरी भारत पर होने लगे थे। इस क्रान्ति का इतिहास अभी तक अधकार मे है। परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि भागवत धर्म के मूल स्तम्भ यादव या सात्वत लोग शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गए थे। उनके साथ साथ वहुत से जैन और बौद्ध धर्मानुयायी भी दक्षिण में पहुँचे और दक्षिण देश को उन्होने अपने धर्म-प्रचार का क्षेत्र वनाया। इतिहासकारो मे इस विषय को लेकर वडा विवाद है कि सात्वत लोग उत्तरी भारत को छोडकर दक्षिण मे कव गए। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत वतलाया गया है।[1]

के० एस० आयगर ने 'परम सहिता' की भूमिका मे और 'सात्वत' नामक लेख मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला है और वतलाया है कि जब मागध जरासध ने सात्वतो पर आक्रमण किया तो वे शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के पश्चिमी समुद्र तट और दक्षिण मे जाकर वस

१—एतरेय ब्राह्मण ८–३–१४

गए। डॉ० कृष्णस्वामी आयगर ने यही निर्देश किया है कि द्रविड देश के अनेक राजाओ ने जो अपनी वश परम्परा सात्वतवशीय कृष्णचन्द्र से बताई है उसका मूलकारण यही है। यदि ऐतरेय ब्राह्मण का रचनाकाल हम दशम शताब्दी ईसापूर्व मानें तो हमे यह भी मानना पडेगा कि दशम शताब्दी ईसापूर्व से भी बहुत पहले सात्वत लोग दक्षिण में जा चुके थे। इस विषय का विस्तार से विवेचन हम अपनी पुस्तक 'भक्ति-आन्दोलन और उसका मध्य-कालीन सस्कृति और साहित्य पर प्रभाव' मे विस्तार से करेंगे। सात्वतो के सपर्क से सभवत. भागवत धर्म पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। हमारा अभिप्राय यहाँ भागवत धर्म का इतिहास प्रस्तुत करना नही है, केवल हम यह बतलाना चाहते हैं कि यह भागवत धर्म सम्पूर्ण भारत वर्ष मे फैल गया था और कई शाखाओ मे विभक्त होगया था। शको और हूणो ने भी इस धर्म को स्वीकार किया था जिसके प्रमाण आज भी उपलब्ध होते हैं। बेसनगर का शिला लेख और घोसुदी का शिला लेख इस तथ्य के प्रमाण हैं। भागवत धर्म के उपास्य महाभारत काल से ही वासुदेव रहे हैं जो स्वय विष्णु और नारायण रूप हैं। विष्णु के वासुदेव रूप मे भी भगवान् के विग्रह की कल्पना पूर्ण हुई जान पडती है। षाड्गुण्यविशिष्ट विग्रह को ही भगवद्विग्रह वासुदेव कहा गया है।

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वर्य वीर्य-तेजांस्यशेषत ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैं गुणादिभि ॥

पाञ्चरात्र मतका सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के शान्तिपर्व मे हुआ है। फिर इसकी व्याख्या अनेक पाञ्चरात्र ग्रथो मे अनेक प्रकार से की गई है। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए शकराचार्य ने भी पाञ्चरात्र मतका उल्लेख किया है।[1] उन्होंने इस मत का कुछ अश त्याज्य और कुछ उपादेय माना है। परन्तु आगे के वैष्णवाचार्यों ने पाञ्चरात्र मत की एक परम्परा सिद्ध की है और उसका सम्बन्ध वेद से जोडा है। कुछ भी हो, वैष्णवभक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य बडा महत्वपूर्ण है। इस मत की अनेक सहिताएँ आदि उपलब्ध होती हैं। कपिजल सहिता मे २१५ सहिताओ का उल्लेख है। बहुत सी सहिताओ की रचना उत्तर मे हुई और बहुत सी की दक्षिण मे। इन सहिताओ का तिथि-निर्णय बडा दुस्तर कार्य है। मुख्य रूप से इन सहिताओ मे ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यादिविषयो का विवेचन हुआ है। ब्रह्म, माया और जीव का भी बडे विस्तार से विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो ही भाव स्वीकार किए गए हैं। सगुण रूप मे भगवान् षाड्गुण्य विग्रह वाले हैं। इन षडगुणो मे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और शेष शक्ति आदि ५ गुण ज्ञान से सम्बद्ध हैं। भगवान् की शक्ति लक्ष्मी है जो दो रूप धारण करती है—क्रियाशक्ति और भूतिशक्ति। इन ६ गुणो मे से दो-दो गुणो की प्रधानता होने पर ३ व्यूहो की सृष्टि होती है। अर्थात् ज्ञान और बल की प्रधानता से सकर्षण, ऐश्वर्य और वीर्य की प्रधानता से प्रद्युम्न तथा शक्ति और तेज की प्रधानता से अनिरुद्ध। वासुदेव को मिलाकर इन्हे चतुर्व्यूह कहा जाता है। पाञ्चरात्र मत में अवतार भावना का वैशिष्ट्य है। विभव को अवतार कहा गया है जो सख्या मे ३९ माने गये गए हैं। धातु निर्मित मूर्तियाँ अर्चावतार मानी जाती हैं और प्राणियो के हृदय मे स्थित भगवान् अन्तर्यामी माने गए हैं। जीव भी भगवन्मय ही है। जिसके माध्यम से भगवान् इस विश्व मे लीला करते हैं सृष्टि, स्थिति, विनाश, निग्रह तथा अनुग्रह भगवान् का सुदर्शन चक्र

१—शारीरक भाष्य २–२, ४२–४५ सूत्र

है। निग्रह-शक्ति के कारण जीव के वास्तविक आधार ऐश्वर्य तथा ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है। यह निग्रह-शक्ति ही अविद्या, महामोह, महातमिस्र हृदय-ग्रन्थि आदि कहे जाते हैं। इन्हीं से बधकर जीव मलयुक्त और सबन्ध हो जाता है। जीव के कष्टो से आर्द्र होकर भगवान् की कृपा का आविर्भाव होता है जो अनुग्रह शक्ति कहलाती है। जिससे जीव का कल्याण होता है और जिसके अवलम्बन से उसे परमधाम की प्राप्ति होती है। इस अनुग्रह की प्राप्ति को ही पाञ्चरात्रमत मे साधना मार्ग कहा है। उसकी प्राप्ति का एकमात्र उपाय शरणागति और प्रपत्ति है। जिसका परिभाषिक नाम 'न्यास' है और यह एक मानसिक भावना है। साधना की पूर्त्ति पर जीव को ब्रह्मभावापत्ति होती है। जिसको प्राप्त कर वह परमधाम मे भगवान् के साथ विचरण करता है। पाञ्चरात्रमत मे साधना पद्धति के भेद से अनेक आगम और सहिताओ का निर्माण हुआ परन्तु मूल भावना एक ही रही। पाञ्चरात्रमत मे वैखानस आगमो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाञ्चरात्रमत वैष्णव सप्रदाय का ही एक रूप है। दक्षिण मे इस सप्रदाय का जब इतना शास्त्रीय विवेचन हो रहा था और इतनी सहिताओ का निर्माण हो रहा था, बौद्ध जैन, शैव और शाक्त सप्रदाय भी अपने-अपने सिद्धान्तो के प्रचार और निर्माण मे सलग्न थे। शैवो की आचार्य परपरा वैष्णवो की आचार्य परपरा के समान पुष्ट नही थी, इसलिए उसका प्रचार जन-आदोलन के रूप में था। वास्तव में शैवसतो से ही भक्ति-आन्दोलन का जन-आन्दोलन का रूप मिला। इन शैवसतो की सख्या ६४ मानी जाती है। जिनमे माणिकवाचक सबध वागीश और सुन्दर विशेपरूप से उल्लेखनीय हैं। इन सन्तो के गीत आज भी सुरक्षित हैं। इन सग्रह ग्रथो मे देवरम् और तिरुवाचकम् नामक सग्रह महत्त्वपूर्ण हैं। इन शैवसतो के समकक्ष वैष्णव सत भी अपने हृदय की पुकार को लेकर जनता-जनार्दन के सम्मुख उपस्थित हुए। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन इनका उद्देश्य नही था। इनकी दृष्टि मे भगवान् के दरबार मे जाति-पाँति का कोई भेद भाव नही था। सभवत शास्त्रीय भक्तिनिरूपण की प्रतिक्रिया मे इन अलवार भक्तो ने अपनी आवाज जनता मे उठाई और अपने हृदय के सच्चे उदगारो से मानवमात्र को प्रभावित किया। इनके उदगार आज भी नालायिर प्रबन्धम् में सुरक्षित हैं। इनके गीत वेद ग्रथो के समकक्ष माने जाते हैं।

'प्रबन्धम्' को तमिल वेद कहा जाता है। इन सत भक्तो की भक्ति के अजस्र प्रवाह ने सारा दक्षिण प्रांत सराबोर होगया। और परम्परागत सस्कृत के आचार्यों को यह फिक्र पडी कि कही इनके सम्प्रदाय इस प्रवाह के शिकार न बन जांय। इस लिए इन्होने 'तमिल वेद' का भली भांति अध्ययन कर अपने शास्त्रो से अपनी सगति बैठाने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि ये आचार्य 'उभय वेदान्ती' कहलाते हैं। यही से भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात समझना चाहिए। इससे पूर्व भक्ति का प्रचार आन्दोलन के रूप मे नही था। इस आन्दोलन की पृष्ठ भूमि मे एक और भी महत्त्वपूर्ण घटना थी। ९ वी शताब्दी मे स्वामी शकराचार्य ने जाति पांति की सकीर्ण परिधि को हटाने और सामाजिक विषमता दूर करने और बौद्धमत के विकृत रूप के निष्कासन का भागीरथ प्रयत्न किया था। बौद्ध और जैन मत के मूल सिद्धान्तो की सगति अद्भुत तर्कशैली के द्वारा उन्होंने वैदिक धर्म मे सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा के प्रभाव से चतुर्दिक प्रचलित बौद्ध एव जैन मत का खडन कर अपने मत की स्थापना की थी। परम्परागत दोषो को दूर कर समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का

सराहनीय कार्य किया था। दूसरी क्रान्ति के कारण जो प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का एकीकरण हुआ था वह कालान्तर में समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। इसलिए उन्होने श्रुति स्मृति वेद विहित वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करके निवृत्ति मार्ग के वैदिक सन्यास धर्म को कलिकाल में पुनर्जन्म दिया। अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए उन्होंने परमार्थ दृष्टि से ब्रह्म को सगुण स्वीकार नही किया था। मायामिथ्यात्व के कारण उपासना गौण होगई। शकर के विचारो का प्रवाह देश के सभी प्रान्तो और भाषाओ में बडे वेग से प्रवाहित हुआ। समस्त वैष्णव सप्रदायो पर शकर का आतक जम गया। इसलिए परवर्ती वैष्णवाचार्यो के लिए एक समस्या वन गई कि समाज-धर्म की पुन. स्थापना किस प्रकार की जाय। परन्तु मानव की स्वाभाविक रागात्मिका भक्ति भावना के ऊपर धर्म का वह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के प्रस्तरो को फोड कर निर्झरिणी के रूप में फूट निकला।

शकर के मायावाद का प्रचार सम्पूर्ण भारत मे हो चुका था, पर साथ ही साथ भक्ति के वीज के लिये भी उपयुक्त भूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। नवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक का भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास भक्ति-आन्दोलन का इतिहास है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे आचार्य-युग कह सकते हैं। इस युग के आचार्य वैष्णव आचार्य कहलाए। समस्त वैष्णव सम्प्रदायो मे परम आचार्य श्रीकृष्ण माने गए हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने चार शिष्यो को वैष्णव तत्व का उपदेश दिया था जिसका उल्लेख पद्मपुराण मे इस प्रकार है—

श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवा क्षितिपावना।
चात्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥

'प्रमेय रत्नावली' में इन चारो सम्प्रदायो के प्रवर्तक-आचार्यो का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

रामानुज श्री स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुख।
श्रीविष्णुस्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन॥

इस प्रकार रामानुजाचार्य श्री सम्प्रदाय के, मध्वाचार्य ब्रह्मसम्प्रदाय के, विष्णुस्वामी रुद्र सम्प्रदाय के और श्री निम्बार्काचार्य सनक सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। श्री रामानुजाचार्य पहले वैष्णव आचार्य हैं जिन्होने मायावाद के विरोध में भक्ति के सिद्धान्त की शास्त्रीय प्रतिष्ठा की। इनके प्रयत्नो से वैष्णव धर्म का सम्पूर्ण भारतवर्ष मे—विशेषतया दक्षिण प्रदेश मे खूब प्रचार और प्रसार हुआ। इनके सम्प्रदाय का नाम विशिष्टाद्वैत हुआ। चित्, अचित् और ईश्वर तीन पदार्थो मे चित् को ये भोक्ता जीव मानते हैं, अचित् को भोग्य जगत् और ईश्वर को अन्तर्यामी परमेश्वर। इनके मत में निर्गुण ब्रह्म की कल्पना ही असभव है। निर्गुण ब्रह्म का अर्थ केवल इतना ही है कि वह प्राकृत तथा लौकिक गुणो से रहित हैं, ईश्वर चित्, अचित् का नियमन करता है इसलिए विशेष्य कहलाता है। जीव, जगत् नियम्य होने से विशेषण कहलाते हैं। विशेष्य की सत्ता पृथक् रूप मे सिद्ध है विशेषण की नही, इस प्रकार विशेषणो से युक्त विशेष्य की एकता आचार्य जी स्वीकार करते हैं, इस तरह से यह सिद्धान्त अद्वैत होता हुआ भी विशिष्टाद्वैत है। आचार्य जी ने शकर के मायावाद का युक्तिपूर्वक खण्डन किया और वतलाया कि जब जगत् कर्ता ब्रह्म नित्य है तो कारण रूप जगत् अनित्य किस प्रकार हो सकता है। जीव और ब्रह्म में भी उन्होने

अंश-अंशीभाव माना है। तत्त्वमसि जैसे महा वाक्य की व्याख्या आचार्य जी ने बड़े विचित्र ढंग से की। तस्य त्वमसि (दास)। इस प्रकार भगवान् और जीव का सम्बन्ध इन्होंने सेव्य-सेवक रूप मे माना जिसे शेप शेषीभाव भी कहा गया है। नारायण इनके उपास्य हुए। अपने स्वामी नारायण को आत्म-समर्पण करना ही जीव के लिए सबसे बडी साधना है। उसमें इन्होंने दास्यभाव की भक्ति को महत्त्व दिया और 'प्रपत्ति को भक्ति का सार बताया' प्रपत्ति द्वारा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है और भगवत्कृपा से नारायण की।

दक्षिण भारत का दूसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय है जिसके प्रवर्त्तक मध्वाचार्य थे। इस सम्प्रदाय के द्वारा भक्ति-भावना को विशेष बल मिला। वस्तुत व्यवहार पक्ष में यह भक्तिवादी सम्प्रदाय है और अध्यात्मपक्ष मे भेदवादी या द्वैतवादी, रामानुजाचार्य ने मायावाद का खण्डन करते हुए भी अपना सम्बन्ध अद्वैतवाद से नही तोडा था अद्वैत वेदान्त का खण्डन माध्व मत के आचार्यों ने भी खुल्लमखुल्ला रूप से किया। माध्वमत के सिद्धान्तो का सार इस प्रकार है—

> श्री मन्मध्वमते हरि परतर सत्य जगत् तत्त्वतो
> भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभाव गता।
> मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम्
> ह्यक्षादित्रितय प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरि ॥

इस सम्प्रदाय का प्रचार दक्षिण भारत—विशेषकर कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रदेश—में हुआ। उत्तर भारत में बगाल इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बना। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय इसी का बँगला रूप है। कहा जाता है कि व्रज मण्डल को इतना गौरव इसी सम्प्रदाय के कारण प्राप्त हुआ है।

सनक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य निम्बार्क (११६२ ई०) माने जाते हैं। निम्बार्क वैष्णवो का प्रचार-स्थल वृन्दावन रहा। गोवर्धन के पास निम्बग्राम आज भी उनका तीर्थ स्थान है। इस सम्प्राय को कुछ विद्वान् सभी वैष्णव सम्प्रदायो में प्राचीनतम मानते हैं। वास्तव में अन्य वैष्णव सम्प्रदायो मे तो शकर के मायावाद का खण्डन किया गया है किन्तु इस सम्प्रदाय मे मायावाद का खण्डन नही हुआ। इसका सिद्धान्त द्वैताद्वैत सिद्धान्त कहलाता है। निम्बार्काचार्य के सिद्धान्त बडे सूक्ष्म और सरल हैं। केवल दश श्लोको मे उनके सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। इन्होंने भी प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। ये सबसे पहले आचार्य थे जिन्होंने उत्तर भारत में राधा कृष्ण की भक्ति का प्रचार किया।

रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक विष्णुस्वामी का इतिहास अभी तक अन्धकार में है। कहा जाता है कि भगवान् के साक्षात् दर्शन करने की उत्कट इच्छा से स्वामी जी ने घोर तपस्या की और उसके सफल न होने पर अन्न जल छोड दिया। सातवें दिन भगवान् श्यामसुन्दर ने वेणुवादन करते हुए शृङ्गारयुत किशोर मूर्ति में आपको दर्शन दिये और बालकृष्ण रूप मे इन्हें उपदेश दिया। तभी से ये बालकृष्ण की उपासना करने लगे। विष्णु स्वामी का समय कोई कोई विद्वान् तो ईसा से छठी शताब्दी पूर्व मानते हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्य बिल्व-मगल ने महाप्रभु वल्लभाचार्य को स्वप्न में विष्णु स्वामी की शरण में आने का उपदेश दिया था। विष्णु स्वामी के ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और वे अपनी ह्लादिनी सवित् के द्वारा आश्लिष्ट हैं, माया उनके अधीन रहती है। ईश्वर के नृसिंह रूप को इस सम्प्रदाय में महत्व

दिया गया है, पर कहा जाता है कि विष्णु स्वामी नृसिंह तथा गोपाल दोनो के उपासक थे रुद्र सम्प्रदाय को नवीन स्फूर्ति और शक्ति महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से प्राप्त हुई। महाप्रभु के उपास्य कुलदेवता गोपालकृष्ण थे। इन्होंने भक्ति सिद्धान्त की बडे व्यवस्थित ढंग से व्याख्या की और वैदिक काल से चली आती हुई भक्ति परम्परा का शास्त्रीय ढग से उन्नयन किया। उनकी सिद्धि और आध्यात्मिकता से न केवल तत्कालीन समाज ही प्रभावित हुआ, अपितु दिल्ली का मुसलमान वादशाह सिकन्दर लोदी ने भी उनके प्रभाव मे आकर अपने दृष्टिकोण को भी वदल दिया। कृष्णदेव राय की विशाल सभा का कनकाभिषेक वल्लभ सप्रदाय भी महत्व पूर्ण घटना है। शकर के मायावाद का प्राचीन खडन अभी तक कोई आचार्य नहीं कर सका था। विष्णुस्वामी के रुद्र सप्रदाय को नवीन साँचे में ढालकर उसका नाम इन्होने शुद्धाद्वैत रखा। आचार्य शङ्कर के, अद्वैत से भिन्नता प्रकट करने के लिए ही उन्होंने 'शुद्ध' विशेषण लगाया। शकर ने माया युक्त ब्रह्म को जगत का कारण माना था। परन्तु इन्होंने शुद्ध ब्रह्म को जगत का कारण माना। ब्रह्म का परिणाम रूप ही जगत और जीव का सत्ता का कारण है। शकर ने निर्गुण ब्रह्म को सगुण ब्रह्म की अपेक्षा महत्ता प्रदान की परन्तु महाप्रभु जी ने ब्रह्म के दोनो रूपो को सत्य माना वह एक ही समय में निर्गुण भी रहता है सगुण भी। यही उसका विरुद्ध धर्माश्रयत्त्व है। इसीलिए वह कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ है। वह अविकृत और अविकारी होते हुए भी भक्तो पर कृपा करने के लिए परिणामशील होता है। भगवान् कृष्ण स्वय पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं। जव वे अपनी आत्मा में आन्तर रमण करते है तव आत्मानद कहलाते हैं। वाह्य रमण की इच्छा से जव वे अपनी शक्तियो का प्रकाशन करते हैं तव पुरुषोत्तम कहलाते हैं। और इसी रूप में वे आनन्दमय अगणितानन्द और परमानन्द कहलाते हैं। आचार्य वल्लभ का यह सिद्धान्त परम्परागत सभी भक्ति सम्प्रदायो के मेल मे है इसमें कोई सन्देह नही। पाञ्चरात्र मत की यह सर्वश्रेष्ठ व्याख्या कही जा सकती है। भगवान् अपनी शक्तियो से वेष्टित होकर व्यापी वैकुण्ठ मे नित्य लीला करते हैं। यह व्यापी वैकुण्ठ विष्णुधाम से भी ऊपर है और गोलोक भी इसका अश मात्र है। भगवान् की शक्तिया भी पुष्टि गिरा कान्त्या आदि उनके अधीन रहती हैं। लीला के निमित्त वे सपरिवार इस लोक में उतरते हैं। तव व्यापी वैकुण्ठ ही इस लोक में विराजता है और उनकी वे ही शक्तियाँ श्री स्वामिनी चन्द्रावली, राधा, यमुना आदि के रूप मे अवतीर्ण होती हैं। श्रुतियाँ इस रस का आनन्द लेने के लिए गोपियो के रूप मे अवतीर्ण होती हैं। यह लीला नित्य रूप में आविर्भूत होती है।

आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त श्रीमद्भगवद्गीता के विलकुल अनुकूल है। जिस प्रकार भगवद्गीता में ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक इसी प्रकार इनके मत में भी जगत क्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम ब्रह्म के तीन परिणाम हैं। अक्षर ब्रह्म मे आनन्दाश का कुछ तिरोधान रहता है। और पर ब्रह्म में आनन्द पूर्ण रहता है। अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति विशुद्ध ज्ञान के द्वारा होती है जवकि परब्रह्म की प्राप्ति का साधन एक मात्र भक्ति है।

पुरुष स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। गीता ८। २२

पुरुषोत्तम के अधिकारी केवल भक्त ही हैं। जीव रूप में भी भगवान स्वय ही आते हैं। इसमें केवल भगवान् की इच्छा ही कारण है। आनन्दादि अशो का तिरोधान हो जाता है। ऐश्वर्य के तिरोधान से दीनता यश के तिरोधान से हीनता, श्री के तिरोधान से आपत्ति-

भाजनता, ज्ञान के तिरोधान से देहाध्यासता। जीव का आविर्भाव ब्रह्म से इस प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिंग भगवान् के अविकृत चिदंश से जीव का आविर्भाव होता है और उनके अविकृत सदंश से जड का। जीव मे केवल आनन्द का तिरोधान है और जड मे चित् और आनन्द दोनो का। आनंदांश के तिरोधान होने से ही जीव का सम्बन्ध अविद्या से हो जाता है और उसकी संज्ञा संसारी हो जाती है। पहले वह विशुद्ध रहता है। भगवान् की कृपा से संसारी जीव मे जब आनन्द का आविर्भाव होता है तो वह मुक्त होकर स्वयं सच्चिदानन्द हो जाता है। भगवत् कृपा का साधन ही पुष्टि मार्ग है। इस प्रकार महाप्रभु जी अविकृत परिणामवाद को मानने वाले हैं। अर्थात् निर्गुण सच्चिदानन्द ही अविकृत भाव से जगद्रूप में परिणत हो जाते है। आचार्य चरण जगत की उत्पत्ति और विनाश नही मानते केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही मानते हैं। जगत और संसार का आचार्य चरण ने बडा सूक्ष्म भेद किया है भगवान् के सदंश से प्रादुर्भूत पदार्थ जगत हैं। पर अविद्या के कारण जीव के द्वारा कल्पित व्यावहारिक पदार्थ संसार है। जगत जीव और ईश्वर की भाँति नित्य है। साधना पक्ष मे महाप्रभु जी ने शास्त्र सम्मत वैदिक मार्ग का प्रवर्तन किया और उन्होने सभी परम्पराओ का समन्वय बडे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। पुष्टिमार्ग प्रवाह मार्ग और मर्यादा मार्ग—तीनो मार्गो की सुन्दर विवेचना करते हुए आचार्य जी ने सभी भक्ति पद्धतियो का सुन्दर विवेचन किया। मर्यादा मार्ग को वे वैदिक मार्ग बताते हैं जो अक्षर ब्रह्म की वाणी से उत्पन्न हुआ है। परन्तु पुष्टि मार्ग साक्षात् पुरुषोत्तम के शरीर से ही निस्सृत हुआ है। इसीलिए मर्यादा भक्ति मे फल की इच्छा रहती है। इस मार्ग का भक्त सायुज्य भक्ति को अपना ध्येय मानता है। परन्तु पुष्टि मार्गी केवल भक्ति चाहता है। वास्तव में पुष्टि मार्ग जैसा सुलभ और सरल मार्ग अभी तक दूसरा नही था। वर्ण, जाति, देश सम्प्रदाय आदि भेदो से परे जीव मात्र के लिए कलिकाल में आनन्द प्राप्ति का यही एक मात्र साधन है।

पुष्टि मार्गीय भक्ति का आचार्य जी ने बडे विस्तार से शास्त्रीय विवेचन किया है। इस मार्ग में भक्त को किसी साधन की अपेक्षा नही रहती।

"निस्साधन भजनीये, भावतनौ मे मतिर्भूयात्॥" नवर्न ताष्टक

भक्तो पर कृपा करने के लिए ही भगवान् अपनी लीला करते हैं। लीला उनकी विलास की इच्छा मात्र है। (सुबोधिनी—भाग–३ स्कंध)

अनुग्रह ही भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विकास है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। यही भगवान के आविर्भाव का प्रयोजन है। भगवान् के अनुग्रह से ही रागानुगा भक्ति की प्राप्ति होती है। उस अनुग्रह की सिद्धि सेवा एकान्त निष्ठा तथा शुद्ध अनुराग से होती है। वह सेवा तीन प्रकार की है—तनुजा, वित्तजा एवं मानसी। अनुग्रह बिना उत्कट प्रेम के सम्भव नही। इस उत्कट प्रेम का परिचय विरह के द्वारा ही होता है, इसीलिये पुष्टि सम्प्रदाय में विरह भावना का बडा महत्व है और उसके लिये गृह-त्याग भी करना पडता है। भगवत् प्रेम की प्राप्ति के लिये भक्त को तीन अवस्थाओ मे होकर गुजरना पडता है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। प्रेम की इन तीन श्रेणियो का विवेचन आचार्य चरण ने बडे मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। आज के पीडित मानव के लिये पुष्टि मार्ग का आचरण रामबाण हो सकता है। ब्रह्म सम्बन्ध

के पीछे एक बड़ा व्यवहारी दर्शन है इसका विधान आचार्य चरक के सिद्धान्त रहस्य नामक स्तोत्र मे बतलाया है। गुरु आत्मनिवेदन मन्त्र से ब्रह्म सम्बन्ध कराता है। कहा जाता है कि यह आत्म निवेदन मन्त्र स्वय श्रीकृष्ण जी ने आचार्य जी को बताया था।

भगवत् अनुग्रह की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलती है। 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य.' तथा 'तमक्रतु पश्यति वीतशोको' धातु प्रसादात् महिमानमात्मानय' आदि श्रुति वाक्य इस बात का उद्घोप करते हैं कि भगवत् कृपा का सिद्धान्त बहुत पुराना है।

श्री, ब्रह्म, रुद्र एव सनक इन चार सम्प्रदायो का पुनरुत्थान दक्षिण में हुआ। श्री सम्प्रदाय की प्रचार भूमि विशेप रूप से दक्षिण रही, पर उत्तर में भी रूपांतर से इसका प्रचार हुआ और भक्ति के प्रचार में इस सम्प्रदाय ने अपना विशिष्ट योगदान दिया।

ब्रह्म तथा सनक सम्प्रदायो का भी उत्तर भारत में अपना विशिष्ट स्थान है। परन्तु रुद्र सम्प्रदाय का पुष्टि सम्प्रदाय नाम से प्रचार और प्रसार उत्तरी भारत में बहुत अधिक हुआ। इन सभी सम्प्रदायो ने भक्ति आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस आन्दोलन की व्यापकता और त्वरित गति से प्रभावित होकर ही सम्भवत पाश्चात्य विद्वानो ने इसे 'बिजली की चमक' बताया है। सभी भारतीय भापाओ के साहित्य को समृद्ध और प्राणवान् बनाने का श्रेय इस सम्प्रदाय को है। १० वी शताब्दी से लेकर १८ वी शताब्दी तक भारतीय साहित्य की मूल प्रेरणा इन्ही सम्प्रदायो से अनुप्राणित होती रही है। भक्ति-आन्दोलन के जन-आन्दोलन के स्वरूप का विवेचन करने से पूर्व हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि दक्षिण की भाषाओ के साहित्य को किस प्रकार इस वैष्णव-धर्म ने समृद्ध किया है। कहने की आवश्यकता नही कि वैष्णव धर्म के प्रभाव से सभी भापाओ का साहित्य सौन्दर्य और माधुर्य से ओत प्रोत होगया। जीवन की दिशाएँ बदल गईं और साहित्य में वह सरसता, मधुरता, लालित्य, शिवत्व और सौन्दर्य आगया जिनके कारण वैष्णव साहित्य सदा के लिए अमर हो गया। आश्चर्य है कि आज भी वही साहित्य सुन्दरतम है। सूर और तुलसी की तुलना का कोई दूसरा कवि अभी तक भारत में नही हो सका है। तमिल, तेलेगू, कन्नड, मलयालम बगला, आसामी, उडिया, मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि का वैष्णव साहित्य आज भी इन भापाओ के साहित्य का हृदय-स्थानीय है।

तमिल साहित्य में यद्यपि शैव-साहित्य की प्रधानता है परन्तु भावना वही वैष्णव धर्म की है। वैष्णव भक्त आलवारो की रचनाएँ भी कम महत्त्व पूर्ण नही। ये रचनाएँ आज भी तमिल वेद के नाम से पुकारी जाती हैं। सुप्रसिद्ध आलवार भक्त विष्णु स्वामी का 'दिव्य प्रबन्धम्' आज भी तमिल साहित्य की विशिष्ट निधि है। कहना न होगा कि तेलेगु साहित्य का भी वैष्ण भक्ति-साहित्य आज अनुपमेय है। महाकवि पोताना का भागवत पुराण तेलेगु का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार और कितने ही ग्रन्थ तेलेगु साहित्य में रत्नरूप से विराजमान हैं। कृ त्न राय का विष्णु चित्तीय काव्य और महाकवि वेंकना तथा तिमन्ना के काव्य तेलेगु साहित्य अलकार हैं। कन्नड भापा मे भी वैष्णव साहित्य की कमी नही हैं। रामानुजाचार्य के प्रभाव कन्नड भापा में ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जिसके कारण वह युग कन्नड़ भापा का 'स्व युग' कहा जाता है। कुमारव्यास, कुमार वाल्मीकि तथा चाटु विट्ठलनाथ के प्रसिद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त उन वैष्णव सतो का जो दास नाम से साहित्य में विख्यात हैं, साहित्य भी बहुत ही उच्च कोटि का है। पुरदरदास, कनकदास, विट्ठलदास, वेंकटदास,

विजयदास तथा कृष्णदास के पद आज भी चिर नवीन हैं। लक्ष्मीश का जैमिनि भारत एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मलयालम भाषा में भी वैष्णव काव्यों का प्राचुर्य है। इस दृष्टि से सभवत मलयाली साहित्य सब से अधिक सम्पन्न है। त्रावणकोर के महाराजा का रामचरित एक महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसी प्रकार चेरुम्सेरी नवूद्री का कृष्ण गाथा काव्य और तु जन कवि का भागवत बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। पोन्तान कवि अपने समय के गोस्वामी तुलसीदास कहे जा सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भक्ति-आन्दोलन बिजली की चमक की भाँति सारे भारतवर्ष मे फैल गया। दक्षिण के वैष्णव आचार्यो का प्रभाव उत्तर में भी बहुत व्यापक रहा, पर इसका अभिप्राय यह नही है कि उत्तर भारत मध्य भारत अथवा पूर्वी भारत मे भक्ति-आन्दोलन का श्रीगणेश दक्षिण के वैष्णव आचार्यों द्वारा हा हुआ हो। उत्तर भारत में पौराणिक धर्म का प्रचार पहले से ही था। शैव भक्ति का प्राधान्य था। कृष्णावतार तथा रामावतार की भी व्यापकता थी। दशावतार-चरित सम्बन्धी तो कई ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। पृथ्वीराज रासो का दसम वास्तव मे दशावतार चरित ही है, राम और कृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्राय लोक परक था। दक्षिण के आचार्यों के सम्पर्क से उसमे नई शक्ति आ गई और वह ईश्वरोन्मुख हो गया। लीला-गान की परम्परा के उदाहरण उत्तर भारत के साहित्य मे मिलते हैं। यह लीला-गान की परम्परा भागवत परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न थी। अपभ्रंश-साहित्य में हमें कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक गेयपद प्राप्त होते है। सिद्धो और नाथो ने जिस गेय परम्परा को अपनाया, वह अवश्य वैष्णव धर्म में रही होगी और यह परम्परा सम्पूर्ण उत्तर भारत मे प्रचलित थी, जयदेव का गीतगोविन्द भागवत वाली परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न परम्परा का है। विद्यापति और चण्डीदास के पद जयदेव की परम्परा के हैं। नाथ सिद्ध पश्चिमी भारत मे अड्डा जमाए थे तो बौद्धसिद्धों की प्रचार भूमि पूर्वी भारत था। काश्मीर में शैव मत का बोलबाला था। सभवत बौद्धसिद्धो के प्रभाव से बगाल में सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। बौद्धो का सहजयान सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय से बहुत बातो में मिलता जुलता है। वज्रयानी सिद्धो ने महासुख की उपलब्धि के लिये अनेक उपायो का वर्णन किया है। नाथसिद्धो और बौद्धसिद्धो की शब्दावली भी बहुत कुछ मिलती जुलती है। सहजयान वज्रयान का ही दूसरा नाम है। सहजावस्था की प्राप्ति में ही ये सिद्धि की पूर्णता मानते हैं। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय में सहज शब्द की व्याख्या को बिलकुल बदल दिया था। ये लोग रागानुगा प्रेमा भक्ति के अनुयायी बने और प्रेम को परमात्मा का सहज गुण या सहज रूप बतलाया। इसी प्रेम के द्वारा मनुष्य सहज भाव प्राप्त कर सकता है। रूप जब स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तभी मनुष्य सहज भाव को प्राप्त होता है। मनुष्य के अन्तर्गत भगवान् का आध्यात्मिक तत्त्व ही स्वरूप है और जो निम्नतर भौतिक तत्त्व है वह रूप है। रूप पर स्वरूप के आरोप से पार्थिव प्रेम को अपार्थिव रूप में परिणत करना होता है, किन्तु बिना रूप की सहायता के स्वरूप की उपलब्धि नही हो सकती। इसी लिये अपार्थिव प्रेम की अनुभूति के लिये ये परकीया प्रेम को महत्त्व देते हैं। सहज रूप मनुष्य को प्रेमा भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। तभी उसमें शुद्ध सत्त्व की प्रतिष्ठा होती है और वह समभाव को प्राप्त होता है। सहजिया सम्प्रदाय की साधना का गूढ तत्त्व यह है कि पुरुष स्वय को स्त्री समझकर भगवान् की उपासना करे। ऐसा करने से वह यौन सम्बन्ध का परित्याग कर सकता है। इस सम्प्रदाय मे भगवान् आनन्द, माधुर्य और सौन्दर्य के उत्स

हैं। राधाकृष्ण प्रकृति और पुरुष हैं। इन में आश्रयाश्रयी भाव है। सहजिया सम्प्रदाय एक तान्त्रिक मार्ग कहा जा सकता है परन्तु शुद्ध तान्त्रिक मत से साधना पक्ष में इसकी पर्याप्त भिन्नता है।

मध्वाचार्य के सम्प्रदाय का वगाल पर बडा प्रभाव पडा था जिसके फलस्वरूप बगाल मे गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा चली। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में सख्य, दास्य तथा वात्सल्य भावो को भी उपासना में उपादेय माना है किन्तु सहजिया वैष्णव केवल माधुर्य भाव की उपासना को ही श्रेष्ठ समझते हैं। गौडीय वैष्णवो मे तो परकीया तत्त्व को सिद्धान्त रूप से ही स्वीकार किया था पर सहजिया वैष्णवो ने इस तत्त्व को व्यावहारिक रूप भी दिया। वास्तव में सहजिया वैष्णवो के सिद्धान्त बौद्ध सहजयान के सिद्धान्तो से बहुत मिलते जुलते हैं। चण्डीदास की उपास्य वाशुली देवी वज्रयानियो की वज्रधारवीश्वरी का ही दूसरा रूप है। सहजिया सम्प्रदाय के अतिरिक्त वगाल में आउल, बाउल, साई, दरवेश आदि अन्य कई सम्प्रदायो का भी प्रचार था। बाउल तो सहजिया वैष्णवो से भी एक कदम और आगे थे। सहजिया लोगो का प्रेम राधा और कृष्ण दो व्यक्तियो की अपेक्षा रखता है जबकि बाउलो का प्रेम 'मनेर्मानुम' के प्रति होता है। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अलौकिक प्रेमपात्र है। उसे उसी के प्रति प्रेम करना चाहिये।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है बगाल की गौडीय शाखा माध्व सम्प्रदाय की ही एक शाखा कही जा सकती है पर इनका व्यावहारिक पक्ष माध्व सम्प्रदाय से भिन्न है। चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को भक्तिक्षेत्र मे एक चमत्कार समझना चाहिये। इस भक्ति-आन्दोलन के युग में उत्तर भारत के वैष्णवाचार्यो मे चैतन्य महाप्रभु का नाम अग्रगण्य है। यह एक विचित्र घटना है कि चैतन्य महाप्रभु की कर्मभूमि वगाल ही रही पर उनके सम्प्रदाय का व्रजभूमि से विशेष सम्बन्ध रहा। वास्तव में चैतन्यमत का शास्त्रीय विवेचन व्रजभूमि में ही हुआ। माध्व मत के अनुयायियो में माधवेन्द्रपुरी, गौडीय सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय के वीच में सेतु का कार्य करने वाले हैं चैतन्य महाप्रभु। इन्ही के यह शिष्य ईश्वरपुरी के शिष्य थे, यद्यपि दीक्षा उन्होंने केशव भारती से ली थी। भक्ति के प्रसार और प्रचार में चैतन्य महाप्रभु ने बडा योगदान दिया। इन्होने भारतवर्ष के सभी विख्यात तीर्थ स्थानो की यात्रा की। दक्षिण के तीर्थों के दर्शन से इनकी प्रवृत्ति वृन्दावन के उद्धार की ओर झुकी। वैष्णव धर्म के प्रचार में इन्हे नित्यानन्द जैसे सहयोगी मिले और दोनो ने मिलकर समस्त उत्तरी भारत को विशेषकर बगाल को भक्ति स्रोत से आप्लावित कर दिया। व्रज, विशेषकर वृन्दावन, के उद्धार का श्रेय बहुत कुछ चैतन्य महाप्रभु को है। यह विषय यद्यपि अभी तक विवाद का बना हुआ है फिर भी वृन्दावन के उद्धार में चैतन्य महाप्रभु का जो योगदान है वह कम महत्त्व का नहीं है। माधवेन्द्रपुरी उनसे पहले वृन्दावन मे गोपाल की मूर्ति स्थापित कर चुके थे, चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन के उद्धार के लिये अपने दो प्रधान शिष्यो को भेजा। ये दो भक्त थे लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भाचार्य। चैतन्य के सहयोगियो में अद्वैताचार्य का नाम भी उल्लेखनीय है, चैतन्यमत को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय चैतन्य के शिष्य षट् गोस्वामियो को है जिनके नाम हैं रूप, सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी।

माध्व मत की शाखा होने पर भी चैतन्यमत का दार्शनिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। माध्व सम्प्रदाय का मूलाधार द्वैतवाद है जबकि चैतन्य का अचिन्त्यभेदाभेद। अर्थात् भगवान्

श्रीकृष्ण परम तत्त्व है और उनकी अनन्त शक्तियां हैं। शक्ति और शक्तिमान् में न भेद होता है और न अभेद। उनका सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है, चैतन्य मत मे प्रेम को ही महान् पुरुषार्थ माना गया है और यह प्रेमा भक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अतिरिक्त पांचवां पुरुषार्थ है। गौडीय वैष्णवो के सम्बन्ध में एक वात यह भी विचारणीय है कि इन्होने साहित्य जगत् में भवित को रस की कोटि तक पहुँचाया। भवितरसामृतसिन्धु भवितरस का सुन्दर ग्रन्थ है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य पांच भावो से भगवान् कृष्ण की भावमयी गोलोक लीला सम्बन्ध रखती है। रति की निम्न कोटि शान्त में है और चरमोत्कर्ष माधुर्य में। यह माधुर्य भाव-रति तीन प्रकार की वताई गई है साधारणी रति, समञ्जसा रति और समर्था रति। इनमे समर्था रति सर्वोपरि है, जिसका एक मात्र लक्ष्य भगवान् का ही आनन्द है। उसके लिये भक्त मर्यादा का भी उल्लघन कर सकता है। गोपीभाव इस रति का दृष्टान्त है। यह गोपीभाव ही अपने उत्कर्ष में राधाभाव पर पहुँच जाता है। गौडीय वैष्णवो के इस रतिभाव मे और पुष्टि सम्प्रदाय के ब्रह्म सम्वन्ध में इतना साम्य है। यह वडे आश्चर्य की वात है।

चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव बगाल के अतिरिक्त उत्कल में भी पडा। यों तो उत्कल भक्ति भावना का पहले से ही केन्द्र रहा है, पर जगन्नाथ जी के मन्दिर के निर्माण के पश्चात् तो यह प्रदेश वैष्णव भक्ति का महत्त्वपूर्ण पुण्यस्थल बन गया। भगवान् जगन्नाथ के आविर्भाव की कथा नारद पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कन्द पुराण तथा कपिल सहिता आदि ग्रन्थो में मिलती है, दारु ब्रह्म का उल्लेख शाङ्खायन ब्राह्मण में भी मिलता है, कुछ इतिहासकारो का कथन है कि इस प्रदेश में शबरो का राज्य था। इसीलिये यहाँ लकडी की मूर्ति बनाई गई। कुछ भी हो, जगन्नाथ जी की पूजा इस प्रदेश में प्राचीनकाल से ही होती आई है। अनेकवार उत्कल के मन्दिरो पर विदेशियो के आक्रमण हुए हैं और उनके ध्वसचिह्न मात्र अवशिष्ट रह गये हैं। ह्वेनसाग ने अपनी यात्रा के प्रसङ्ग में इस तथ्य की ओर सकेत किया है। इस प्रदेश के मन्दिरो और मूर्तिकला के सम्बन्ध में यह बात लक्ष्य करने की है कि यहाँ वैष्णव धर्म के माध्यम से कई सस्कृतियो का सगम हुआ है। चैतन्य महाप्रभु ने राजा प्रतापरुद्र (१५०३ ई०) के समय में नीलाचल क्षेत्र को अपना प्रचार क्षेत्र बनाया और तभी से इस क्षेत्र का महत्त्व बढ गया। पुरी के सम्वन्ध मे इतिहासकारो का यह भी मत है कि यहाँ की जगन्नाथ मूर्ति पर बौद्ध प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नही कि उत्कल प्रान्त बौद्धो का अड्डा रहा है। कटक जिले के रत्नगिरि नामक स्थान में आज भी बौद्ध महाविद्यालय पुष्पगिरि के भग्नावशेष मिलते हैं और स्थान-स्थान पर अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, आर्य तारा आदि वौद्ध देवता पाये जाते हैं। सांची से प्राप्त धर्मयन्त्रो से इस मूर्ति की बडी समानता है। कुछ लोगो का कहना है कि जगन्नाथ जी की रथयात्रा भी बौद्ध प्रभाव का फल है। उडिया की कुछ पुस्तको में जगन्नाथ जी बुद्ध के ही रूप माने गए हैं। जगन्नाथ जी को हम पूरा बौद्ध विग्रह तो नही मानते पर इसमे हमें कोई सन्देह नही है कि यहाँ के विधि-विधान, वास्तुकला, मूर्तिकला आदि इस वात को प्रमाणित करते हैं कि जगन्नाथपुरी मे शबर, बौद्ध और ब्राह्मण सस्कृतियो का सुन्दर समन्वय हुआ है। वैष्णव धर्म उत्कल प्रान्त में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित था। इसके प्रमाण कुछ शिलालेखो से मिलते हैं। हाथीगुफा का शिलालेख विशेषरूप से उल्लेखनीय है। चैतन्य के प्रभाव से उत्कल-साहित्य में पांच महान् वैष्णव कवि हुए जो पञ्चसखा कहे जाते हैं—बलरामदास, अनन्तदास, यशवन्तदास,

जगन्नाथदास और अच्युतानन्ददाम। इन सखाओ ने उडिया भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे और ये सखा चैतन्य महाप्रभु के लीलापरिकर माने जाते हैं। उन्होंने प्रेमा भक्ति का प्रचार इस प्रदेश में किया। इनके उपदेश सन्तो की ही भांति थे और इनका दर्शन कबीर आदि सन्तो के दर्शन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इन्होने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपो का निरूपण किया है किन्तु परमतत्त्व निराकार शून्य पुरुष को माना है। इनके सिद्धान्तो में वैष्णव तान्त्रिक और बौद्ध तत्त्वों की त्रिवेणी दर्शनीय है। बगाल से आगे असम प्रदेश में भी महाप्रभु चैतन्य के वैष्णवधर्म का प्रभाव पडा। असम प्रदेश प्राचीन काल से शाक्तो का गढ रहा है। कामाख्यापीठ कामरूप में ही है। वैष्णवधर्म की यह बडी भारी विजय थी कि शाक्त-प्रभाव देश मे आज भी इतनी बडी सख्या में वैष्णव पाये जाते हैं। वैष्णवधर्म का प्रचार यहाँ शकरदेव और माधवदेव ने किया। शकरदेव महापुरुष कहलाते थे इसलिये उनसे प्रचारित धर्म को आज भी महाधर्म या महापुरुष धर्म कहते हैं। सिद्धान्त रूप से तो ये अद्वैतवादी थे और आचरण रूप में पूर्ण भक्त। इनका भक्तिरत्नाकर और भक्तिरत्नावली ग्रन्थ बडे अद्भुत हैं। असमिया भाषा में असख्य कीर्तन पदो की रचना शकरदेव ने की। कुछ ग्रन्थ ब्रजबुलि मे लिखे गए। हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन भक्तिभाव की दृष्टि से ब्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही है।

वैष्णव धर्म के ऐतिहासिक विवेचन में महाराष्ट्र के वैष्णव पथो का उल्लेख भी आवश्यक है। महाराष्ट्र प्रान्त का बडा पुराना वैष्णव पथ महानुभाव या मानभाव या महात्मा पथ है। गुजरात में इसे अच्युत पथ कहते हैं और पजाब मे जयकृष्ण पथ। इस पथ के अनुयायी अपनी सभी बातो को गोपनीय रखने में विश्वास रखते हैं। लोकमान्य तिलक ने इस पथ को प्रकाश में लाने का कुछ प्रयत्न किया था। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाडे, प्रसिद्ध लेखक भावे और यशवन्त पाण्डे ने इस पथ के विषय मे सराहनीय कार्य किये हैं। प्रत्येक बात को गुप्त रखने की भावना के कारण इस पथ के अनुयायियो को यहाँ कुछ अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। एक कहावत भी प्रसिद्ध है 'करणी कसावाची बोलणी मानुभावाची'। इस पथ के उपास्य देवता श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय हैं। कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण बने जिनसे ये हिन्दू धर्म-विरोधी समझे जाने लगे थे, परन्तु अब परिस्थिति कुछ बदल रही है। इस पथ का उदय तेरहवी शताब्दी मे हुआ और इसके आद्य आचार्य गोविन्द प्रभु माने जाते हैं, परन्तु पथ का प्रवर्तन श्री चक्रधर द्वारा हुआ और प्रचार उनके शिष्य श्री नागदेवाचार्य द्वारा। इस पथ में स्त्री और पुरुष दोनो को ही संन्यास की दीक्षा दी जाती है। इस पथ के कतिपय लीलापरक ग्रन्थ मराठी भाषा में मिलते हैं। कुछ मगलगीत भी हैं। हिन्दुओ की जातिव्यवस्था के विरोध में इस पथ का उदय हुआ था। इनकी सिद्धान्त दृष्टि द्वैतवाद की ओर है और भक्ति भावना योग से समन्वित। श्रीमद्भगवद्-गीता इनका मान्य ग्रन्थ है और इस पथ के आचार्यों ने श्रीमद्भगवद्गीता की कई टीकाएं लिखी हैं। इस पथ का प्रचार पजाब और अफगानिस्तान तक हुआ और मराठी भाषा का प्रचार सुदूर प्रदेशो मे हुआ।

महाराष्ट्र का वास्तविक वैष्णव सम्प्रदाय 'वारकरी पन्थ' कहलाता है। इस पथ के उपास्य विट्ठलदेव जी हैं जो कृष्णचन्द्र के बालरूप हैं। पण्ढरपुर इनका तीर्थ स्थान है जहाँ एक ईंट पर खडे हुए विट्ठलजी की मूर्ति है और साथ ही रुक्मिणी जी भी विद्यमान हैं। विट्ठल शब्द की व्याख्या विद्वानो ने कई प्रकार से की है। सस्कृत के विद्वान् इस का विग्रह

इस प्रकार करते हैं—विदा ज्ञानेन, ठान् शून्यान्, लाति गृह्णाति इति विट्ठल। कोई कोई विट्ठल को विटस्थल का अपभ्रंश मानते हैं अर्थात् ईंट पर खडा होने वाला और किसी किसी ने विष्णु का अपभ्रंश बिठोवा माना है। सन्त तुकाराम जी के अनुसार वि गरुड, और ठोवा वाहन। इस प्रकार विठोवा की व्युत्पत्ति की है। इस पन्थ को वारकरी पथ और भागवत पन्थ भी कहते हैं। तुलसी की माला इस पथ का विशिष्ट चिह्न है। विठोवा का ही दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। इस पन्थ के मान्य ग्रन्थ भागवत और भगवद्गीता हैं। महाराष्ट्र प्रान्त की भक्तिभावना बडी पुरानी है पर पण्ढरपुर में विट्ठल जी का आविर्भाव पुण्डलीक के समय में हुआ। सन्त ज्ञानदेव ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया और उन्होंने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका लिखी। पाण्डुरङ्ग की उपासना तो और भी पुरानी ठहरती है। शंकराचार्य ने अपने पाण्डुरङ्गाष्टक में पुण्डरीक के लिए पाण्डुरङ्ग के आविर्भाव का संकेत किया है। कुछ भी हो इस मत का प्रचार ज्ञानदेव जी के समय से अधिक हुआ। इस मत मे अद्वैतवाद के साथ कृष्ण भक्ति का बडा अच्छा सामञ्जस्य हुआ है और साथ ही साथ योग भावना का भी पूर्ण सम्मिश्रण इस मत में दीख पडता है। ज्ञानदेव को लोग आज भी सिद्ध योगी मानते हैं। ज्ञानदेव के साथ-साथ नामदेव का नाम भी उल्लेखनीय है। नामदेव ने सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य किया है। नामदेव का कबीर की वाणियो से बहुत साम्य है। इनके कारण महाराष्ट्र प्रान्त में भागवत सम्प्रदाय बहुत व्यापक हुआ और अनेक सन्त इसके प्रचार में प्रवृत्त हुए। इन सन्तो में सब जाति के लोग थे। विसोवा जोगी थे और गोरा कुम्हार, सावता माली, चोखा महार, सेना नाई, नरहरि सुनार जैसे सन्त इसी सम्प्रदाय की देन है। साथ ही साथ कई प्रसिद्ध भक्तिन भी हो गई हैं, जिनमे जनाबाई, कान्हूयात्रा, सखूबाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पथ की सन्त परम्परा में एकनाथ (१५३३ ई०) बडे प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में कितनी ही अलौकिक घटनाएँ आज भी महाराष्ट्र में प्रचलित हैं। इनका नाथ-भागवत एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनका 'रुक्मिणी स्वयंवर' और 'भाव रामायण' भी भक्ति के श्रेष्ठ ग्रन्थो में गिने जा सकते हैं। सन्त तुकाराम भी इस सम्प्रदाय के महनीय व्यक्ति थे। ये अभंग मराठी साहित्य के रत्न माने जाते हैं तथा भक्तो के शिरोमणि तुकाराम शिवाजी के समकालीन थे। इस मत में अन्य भी बहुत से सन्त हुए हैं जिन्होने अपनी अमर वाणी से मराठी साहित्य को समृद्ध किया। वारकरी मत में चार सम्प्रदाय माने जाते हैं—चैतन्य स्वरूप, आनन्द और प्रकाश। इन चारो सम्प्रदायो में कोई तात्विक भेद नही हैं। वारकरी पथ पूर्ण रूप से वैदिक है और वर्णाश्रम धर्म में आस्था रखता है। सिद्धान्त रूप में अद्वैत का पक्षपाती होता हुआ भी व्यवहार पक्ष में यह सगुण भक्ति का पोषक है। तुलसी की माला और एकादशी व्रत का माहात्म्य इस मत में बहुत अधिक है। तुकाराम जी ने अपने मत का सार शिवाजी के पास इस प्रकार लिख कर भेजा था —

> आम्हीं तेणे सुखी म्हाडा विट्ठल विट्ठलमुखी
> कण्ठीमिरवा तुलसीव्रतकरा एकादशी।

इस पथ मे भक्ति और ज्ञान दोनो का सुन्दर समन्वय हुआ है। युगल उपासना में राधा के स्थान पर रुक्मिणी को रखा गया है जिससे यह मत लोक संग्रही हो गया। महाराष्ट्र में वारकरी सम्प्रदाय के अतिरिक्त रामदासी सम्प्रदाय का भी प्रचार है जिसके प्रवर्तक

ाजी के गुरु समर्थ रामदास जी थे। इस सम्प्रदाय में समाज की ऐहिक और पारलौकिक ो प्रकार की उन्नति को महत्व दिया गया है। स्वामी जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ दासबोध मे इस दाय के सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। स्वामी जी के उपास्य राम थे। और इन्होने भक्ति मे ब्रह्म ज्ञान और कर्म काण्ड दोनो का सामञ्जस्य किया।

महाराष्ट्र प्रान्त की भाति गुजरात में भी स्वतन्त्र रूप से वैष्णव धर्म का विकास ा। ऐतिहासिक तथ्यो से यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि गुजरात में भागवत का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। गुजरात के दो वैष्णव पीठ प्रसिद्ध हैं—द्वारका र डाकोर जी। द्वारका में तो शकराचार्य जी ने आठवी शताब्दी मे ही अपना पीठ स्थापित या था। तेरहवी शताब्दी से तो गुजरात में वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत ही अधिक बढ ा था। मध्य युग में राधा कृष्ण की भक्ति के प्रचार का श्रेय नरसी मेहता और मीराबाई है। जब से पुष्टिमार्ग का प्रचार गुजरात मे हुआ तब से तो मानो गुजरात भक्ति का ही बन गया और समस्त गुजरात में श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति फैल गई। गोस्वामी विट्ठल- थ जी ने पुष्टिमार्ग के प्रचार के लिये छै बार गुजरात की यात्रा की थी।

यहाँ प्रसगवश वृन्दावन के कुछ वैष्णव सम्प्रदायो की चर्चा भी आवश्यक है।

वैष्णवाचार्यो के प्रभाव से व्रजभूमि में परिनिष्ठित सम्प्रदायो के अतिरिक्त कुछ घन्य प्रदाय भी प्रचलित हुए। यह पहले कहा जा चुका है कि वृन्दावन मे निम्बार्क सम्प्रदाय ा से पुराना है। निम्बार्क सम्प्रदाय में सब से पहले राधा जी को इतना महत्व मिला था। के सम्पर्क से वृन्दावन में कुछ भक्तो ने कुछ परिवर्तन के साथ राधा की भक्ति भावना का ार किया। कुछ विद्वानो का मत है कि ऐसे सम्प्रदायो का प्रचलन वृन्दावन में चैतन्य के ाव से हुआ। राधा के सम्बन्ध में निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायो मे मौलिक भेद यह है निम्बार्क सम्प्रदाय में तो राधा के स्वकीयात्व को ही महत्त्व दिया गया है जबकि गौडीय प्रदाय में इस भाव की पूर्ण स्पष्टता नही है। श्री जीव गोस्वामी ने परकीयात्व को केवल विशेष के पोषण के लिये ग्रहण किया था पर उज्ज्वल नीलमणि के टीकाकार श्री विश्वनाथ क्रवर्ती ने इस भाव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया। हमे तो ऐसा लगता है कि दावन के इन छोटे-छोटे सम्प्रदायो पर निम्बार्क, वल्लभ और चैतन्य सभी सम्प्रदायो का ाव है। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय को तो निम्बार्क मत की ही एक शाखा मान सकते हैं। शाखा के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। इसमें गोपीभाव का वैशिष्टय है। सखी- म्प्रदाय में सिद्धान्त पक्ष पर बल नही दिया गया है। इसका केवल साधना पक्ष ही महत्त्व र्ण है। इस सम्प्रदाय की उपासना सखी भाव की है। स्वामी हरिदास जी राधाकृष्ण के ाल रूप के उपासक थे और उनकी ललित लीलाओ का दर्शन सखीभाव से किया करते थे। ीत कला में निपुण होने के कारण वे अपने सगीत के द्वारा ही राधाकृष्ण की उपासना करते । हरिदास जी की पदावली में उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो का विवेचन है। उनके पदो एक सग्रह केलिमाला नाम से प्रख्यात है। इस सम्प्रदाय के भक्तो ने, जो टट्टी सस्थान के क्त कहलाते हैं, माधुर्य और प्रेम से भरे अनेक पदो की रचना की है। हरिदास जी से लेकर ाज तक टट्टीसस्थान के भक्तो की परम्परा चली आरही है।

राधा को केन्द्र मानकर वृन्दावन का दूसरा सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय है। के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवश जी थे जो मुरली के अवतार माने जाते हैं। हितहरिवश जी

भी राधाकृष्ण की युगलमूर्ति के उपासक थे और कृष्ण की अपेक्षा श्री राधारानी को ही अपनी उपासना में इन्होने अधिक महत्त्व दिया है। इनकी उपासना मधुर भाव की उपासना कही जा सकती है। राधा की अनन्य उपासना, राधा की चाकरी ही उनकी भक्ति भावना का मुख्य तत्त्व है, इस तत्त्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इन्होने भी अध्यात्मपक्ष का विवरण कम दिया है। इनकी उपासना में विरहभावना का महत्त्व नही है। वह केवल संयोगपक्ष को ही लेकर चलती है। स्वामी जी के राधानिधि और हित चौरासी ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त आशास्तव, चतुश्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधातन्त्र ग्रन्थ भी इन्ही के बताए जाते हैं। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के पोषको में हितहरिवंशजी के पश्चात् श्री हरिराम जी व्यास का नाम उल्लेखनीय है। ये वास्तव में हितहरिवंशजी के ही समकालीन थे। और आगे चलकर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य कहलाए। व्यास जी के दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनमें एक संस्कृत का ग्रंथ नवरत्न अप्रकाशित हैं और दूसरा ग्रंथ व्यास वाणी प्रकाशित हो चुका है। भक्ति भावना की दृष्टि से इनके पद परमोच्च कोटि के हैं जो भक्ति भावना से ओत-प्रोत हृदय के उद्गार कहे जा सकते हैं। उन्होने राधाकृष्ण की लीला का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। व्यास जी के अनन्तर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्यों में ध्रुवदास जी का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होने चालीस से अधिक ग्रन्थ लिखे। भक्त नामावली नामक उनका ग्रन्थ बडा महत्वपूर्ण हैं। इस ग्रंथ मे उन्होने बहुत से भक्तो का परिचय दिया है। इन्होने हितहरिवंश के सिद्धान्तो का पूर्ण विवेचन किया है और अपने मत की साधना प्रणाली को बडा गूढ तथा रहस्यमय बताया है। इस मत की उपासना का तत्व सब सम्प्रदायो से विलक्षण है। नित्य मिलन को ही इन्होने विशेष महत्व दिया है। इस मिलन में भी विरह सदृश उत्कण्ठा रहती है। स्वकीया, परकीया, विरह-मिलन तथा स्व-परभेद से रहित नित्य विहार रस ही इस सम्प्रदाय का इष्ट तत्त्व है। इस सम्प्रदाय को वास्तव में रस सम्प्रदाय कहा जा सकता है। राधा और कृष्ण एक ही तत्व के प्रतीक हैं। श्री राधाजी सर्वत्र प्रकृति रूप में व्याप्त हैं। वही सखियो के रूप में हैं और वही गोपियो के रूप में। प्रत्येक जीव प्रेम रूपा गोपी है। अपने स्वरूप को भूलकर ही जीव नाना प्रकार के कष्ट भोगता है इसलिए उसे अपने स्वरूप का अनुसंधान करना चाहिये। उनके कृष्ण निर्गुण सगुण से परे हैं और ईश्वरो के भी ईश्वर हैं। आदि पुरुष और नारायण के भी कारण हैं सब अवतारो के मूल हैं और स्वयं रस रूप हैं। भगवत्तत्व केवल एक ही है। लीला और क्रियाओ के अनुसार उसके भेद हो गये है। इस तत्त्व का नाम ही श्री राधावल्लभलाल है जो वृन्दावन मे नित्य विहार करते है। उनके नित्य विहार के परिकर के चार अङ्ग हैं—श्री राधा श्रीकृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियाँ, परन्तु मूलभूत तत्व एक ही है। श्री वृन्दावन दिव्य धाम है जहाँ यह नित्य विहार होता है। यह नित्य विहार प्रेम केलिमात्र है। युगलकिशोर एक प्रेम के ही दो रूप हैं। प्रेम तत्व निर्वचनीय है और एक होकर भी अनेक रूपो में विलास करता है।

वृन्दावन के इन सम्प्रदायो ने भी वैष्णव भक्ति भावना के प्रचार और प्रसार में बड़ा योगदान दिया और हिन्दी के भक्ति साहित्य सरोवर को प्रेमामृत से लबालब भर दिया। कृष्ण भक्ति का प्रचार भक्ति-आन्दोलन के युग मे वैष्णव धर्म का प्रधान अङ्ग रहा है। उत्तर भारत में यह भक्ति-आन्दोलन जितना सफल हुआ संभवत दक्षिण मे उतना न हो सका। इसके कई कारण थे। उत्तरी भारत मे राजनीतिक परिस्थितियो के कारण भक्ति भावना के प्रचार के उपयुक्त वातावरण बन चुका था। वैष्णव धर्म के मूलाधार राम और कृष्ण

अवतारो की जन्म-भूमि उत्तर में ही थी। सिद्धो और नाथो ने उत्तर भारत की भूमि को अपने शुष्क सम्प्रदायो से इतना रोद डाला था कि प्रत्येक भावुक भक्त किसी सरस और शीतल पवन के झोके की प्रतीक्षा में था। इसके अतिरिक्त दक्षिण मे शैव धर्म का प्रचार होने के कारण वैष्णव धर्म के प्रचार के अवसर कम थे। वहाँ वैष्णवो को शैवो से लोहा लेना पडता था। शैवो की भक्ति-भावना वैष्णवो से कम सरस नही थी। शैव धर्म का प्रचार उत्तर में भी था पर उसका प्रचार करने वाला उत्तर में कोई ऐसा आचार्य नही हुआ जो उसकी सामयिक सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में समर्थ होता। पौराणिक मत भी रूढियो से ग्रस्त था। धर्म लोकधर्म न रहकर व्यक्तिधर्म होता जा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ और पाखण्ड का प्रचार था। सूफी सन्त जनता मे अपने प्रेम का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत की इन परिस्थितियो के सकेत हमे तत्कालीन रचनाओ में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। उत्तर भारत के वैष्णव धर्म के आन्दोलन का विवेचन करते समय हमें यह वात नही भूल जानी चाहिये कि इस धर्म का बीजारोपण सर्वप्रथम काशी में ही हुआ था और वैष्णव धर्म के उपास्य कृष्ण न होकर राम थे। कवीर के नाम से एक साखी प्रचलित है—

भक्ति द्राविड ऊपर्जी लाये रामानन्द।
कवीर ने परगट करी सात दीप नौ खण्ड॥

यह साखी प्रामाणिक हो या न हो, पर इसमे सन्देह नही कि स्वामी रामानन्द जी का वैष्णव भक्ति के प्रचार में वडा महत्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भारत में विष्णु भक्ति के प्रचार के दो केन्द्र थे—काशी और मथुरा। काशी रामभक्ति के प्रचार का केन्द्र था और मथुरा कृष्ण भक्ति के प्रचार का। स्वामी रामानन्द जी की जन्मतिथि का प्रश्न अभी तक विवादास्पद है। भण्डारकर और ग्रियर्सन ने उनका जन्म सन् १२९९ माना है और ये दोनो ही महानुभाव उन्हे रामानुजाचार्य से चतुर्थ आचार्य मानते हैं। डा० ताराचन्द ने रामानन्द को रामानुज की परम्परा में वाईसवाँ आचार्य मान कर उनका जन्म चौदहवी शताब्दी के अन्त मे माना है। उनकी मृत्यु तिथि के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार मतभेद है। भडारकर उनका देहावसान सन् १४११ मे मानते है। कुछ भी हो, स्वामी रामानन्द जी रामभक्ति के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं और कहा जाता है कि वे दक्षिण से ही रामभक्ति को उत्तर मे लाए थे। वास्तव मे, रामभक्ति के सन्दभ मे रामानन्द की अपेक्षा उनके गुरु राघवानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रचार का कार्य चाहे रामानन्द जी ने किया हो, पर सिद्धान्त-निरूपण की आधार-शिला का न्यास स्वामी राघवानन्द जी के करकमलो द्वारा ही हुआ था। वे दक्षिण तथा उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलनो के सयोजक व्यक्ति कहे जा सकते हैं। नाभादास जी ने अपने भक्तमाल मे राघवानन्द जी और रामानन्द जी दोनो का ही उल्लेख किया है। अनन्तस्वामी-रचित 'हरिभक्ति-सिन्धुवेला' मे राघवानन्द जी का स्मरण इस प्रकार किया गया है—

वन्दे श्रीराघवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम्।
याम्यादुत्तरमागत्य राममन्त्रप्रचारकम्॥

राघवानन्द जी की साधना योग और भक्ति के समन्वित रूप मे थी। उत्तर भारत मे उस समय नाथ योगियो का जोर था और योग-समन्वित भक्ति ही सफल हो सकती थी।

स्वामी जी ने अपनी भक्ति-साधना मे हठयोग तथा वैष्णव भक्ति का पूर्ण सामजस्य प्रस्तुत किया। आगे चल कर उनकी भक्ति-पद्धति को उनके शिष्य रामानन्द जी ने जन-आन्दोलन का रूप दिया। रामानन्द जी के शिष्य दो कोटि के थे—एक तो सुधारवादी और दूसरे प्राचीन भक्ति-परम्परा के भक्त। रामानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। उनके ग्रन्थो के सम्बन्ध में भी मतभेद है। 'वैष्णव मताब्ज-भास्कर' ही उनका एकमात्र प्रामाणिक ग्रन्थ माना जा सकता है। सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो के कारण स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति को नवीन साँचे में ढाल कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री शकराचार्य का ज्ञान और निवृत्तिपरक अद्वैतवाद साधारण जनता को सात्वना देने में असमर्थ सिद्ध हो चुका था। आचार्य कुमारिल के कर्म मार्ग तथा प्रवृत्ति-पन्थ से भी लोग ऊब चुके थे। नाथ-पन्थियो का योग-मार्ग वैयक्तिक साधना के कारण सकुचित होता जा रहा था। भगवान् के परोक्ष अथवा अन्तर्यामी रूप आर्त-समाज के दु ख-निवारण में असमर्थ थे। धार्मिक क्षेत्र में अध्यात्म और वेद-वाद के नाम पर जनता को ठगने वाले पाखण्डियो की कमी नहीं थी। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनो के ही स्वरूप धुँधले हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति में शील, शक्ति और सौन्दर्य समन्वित पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य झाँकी दिखाने का सुन्दर प्रयास स्वामी रामानन्द जी ने किया। स्वामी जी समन्वयवादी थे। भक्ति के क्षेत्र में उन्होने जाति-पाँति को कोई महत्व नही दिया। इनके सुधारवादी शिष्य छोटी जातियो के ही व्यक्ति थे, जिनकी संख्या लगभग छ थी। उस समय जब भारतीय समाज मे जाति-प्रथा का इतना महत्त्व था, रामानन्द जी का यह अद्भुत साहस बडा ही सराहनीय था।

स्वामी जी की दृष्टि बडी ही उदार और व्यापक थी। वे सब से पहले आचार्य थे जिन्होने भक्ति का द्वार अन्त्यजो तक के लिए समान भाव से मुक्त कर दिया था। इन्होंने लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर सीता-राम को अपना इष्टदेव स्वीकार किया, क्योकि लक्ष्मी-नारायण क्षीर-सागर मे शयन करने के कारण साधारण मानव की पहुँच से बहुत दूर पडते थे।

इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी तक यह भक्ति-आन्दोलन पूर्ण रूप से जन-आन्दोलन बन गया। इस आन्दोलन के नेताओ ने सस्कृत के स्थान पर प्रान्तीय भाषाओ को अपने प्रचार का माध्यम बनाया, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय भाषाओ का साहित्य बडा समृद्ध और शक्तिशाली बन गया जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। राम और कृष्ण के पावन चरितो को लेकर अनेक ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। रामचरित को लेकर लिखने वाले भक्त कवियो ने अवधी भाषा को ही विशेष रूप से अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जबकि कृष्णधारा के कवियो ने ब्रज भाषा को अपना कर अपने मधुर काव्य की रचना की। ब्रज भाषा ने वैष्णव सम्प्रदायो को एकता के सूत्र में बाँधने का महनीय कार्य किया। यह भक्ति-आन्दोलन भारतीय भाषाओ, विशेषकर हिन्दी की साहित्य-सर्जना में बडे महत्व का है। हमने यहाँ रामभक्ति-आन्दोलन की बात केवल प्रसगवश ही कही है। हमारा अभिप्राय कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की ही पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है। कृष्ण भक्ति-आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भागवत का उल्लेख बडा आवश्यक है। कृष्ण भक्ति के सभी सम्प्रदायो को श्रीमद्भागवत से प्रेरणा मिली है और सारा कृष्ण-भक्ति-साहित्य किसी न किसी रूप में श्रीमद्भागवत से प्रभावित है। इसलिए श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

भागवत पुराण के सम्बन्ध मे भागवतकार लिखते हैं—

निगमकल्पतरोर्गलित फल
शुकमुखादमृतद्रवसयुत
पिबत भागवत रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुका (भागवत १।१।२)

चैतन्य और वल्लभ दोनो ही सम्प्रदायो मे भागवत की विशेष मान्यता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो अपने तत्वदीप निबन्ध मे भागवत को 'चतुर्थ प्रस्थान' माना है—

वेदा श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ त नि श्लोक ७

श्रीमद्भागवत का विस्तार मे विश्लेषण हमने अपने ग्रन्थ 'भागवत दर्शन' में किया है। इस अद्वितीय ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय के सम्यक् निरीक्षण से ज्ञात होता है कि यह एक निश्चित और सुयोजित भक्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक स्कध में उसी सिद्धान्त का क्रमिक विकास होता गया है। वह सिद्धान्त है प्रेम-लक्षणा भक्ति। यद्यपि भागवत में भक्ति का अत्यन्त विस्तृत और पूर्ण विवेचन है और वैधी भक्ति, नवधा भक्ति, निर्गुण भक्ति आदि का भी सागोपाग वर्णन है, तथापि साधक का परम श्रेय भगवान् की प्रेम-लक्षणा भक्ति से सिद्ध होता है, यह बात भागवत मे अनेक स्थलो पर दुहराई गई है। श्रीमद्भागवत की प्रमुख विशेषता है इसकी समन्वय-प्रवणता। इसमे साख्य, मीमासा, योग, न्याय, वैशेषिक आदि सभी दर्शनो का स्वस्थ समन्वय कर भक्ति में उनका पर्यवसान किया गया है और उसे मुक्ति से भी गरीयसी ठहराया है। जठरानल जैसे भक्षित अन्न को भस्म कर देता है उसी प्रकार यह भक्ति भी शीघ्र ही कर्म-सस्कार के भण्डार रूप लिंग शरीर को भस्म कर देती है। विभिन्न दार्शनिक मतो के समन्वय के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में एक ही दर्शन के विभिन्न मतो का भी समन्वय हुआ है। दर्शनों के अतिरिक्त भागवतकार ने विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायो का भी सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। पाचरात्र मत तो एक प्रकार से श्रीमद्भागवत का प्रधान मत ही है। नारद पांचरात्र, शाण्डिल्य-सहिता, अहिर्बुध्न्य-सहिता आदि सभी उपासनापरक ग्रन्थो के तत्व श्रीमद्भागवत में विद्यमान हैं। शिव की महिमा भी भागवत में अनेक स्थलो पर गाई गई है और उन्हे भी परम भागवत और वैष्णव कहा गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी भागवत का चरम प्रतिपाद्य तत्व निर्गुण ब्रह्म ही है। श्रीमद्भागवत को हम एक प्रकार से शकर के अद्वैत सिद्धान्त का पूरक ग्रन्थ कह सकते हैं। श्रीमद्भागवत के पारायण से ज्ञात होता है कि यह एक ही कवि की रचना है। साथ ही इसकी समास-प्रधान सक्षिप्त शैली और आलकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य, भाषा और शैली में सरलता और स्पष्टता के स्थान पर आलकारिक प्रयोगो, प्रतीक विधानो और व्यजना के गूढ साधनों को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। बाण के समय से यह प्रवृत्ति बढने लगी थी और राजशेखर तक आते आते यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। श्रीमद्भागवत की भाषा सभी पुराणों से प्रौढ, दुरूह, सक्षिप्त और आलकारिक है। शायद इसी लिए पडितो में 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' वाली उक्ति का प्रचार हुआ। उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति आदि का सुन्दर प्रयोग इसे

एक सफल काव्य का रूप सहज ही प्रदान कर देते हैं। एक बात और भी लक्ष्य करने की यह है कि श्रीमद्भागवत मे केवल पद्यबद्ध रचना ही नही है, अनेक स्कन्धो मे प्रौढ और प्रवाहपूर्ण गद्य भागवत की भाषा को एक नया रूप प्रदान करता है। श्रीमद्भागवत मे जहाँ भगवान् की स्तुतियाँ हैं, वहाँ उसकी भाषा विचित्र रूप से परिवर्तित हो जाती है और उसमे एक सुन्दर प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। ये स्तुतियाँ इतिवृत्तात्मक मरुभूमि में एक मनोहारी शाद्वल भूखण्ड का काम करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत् भक्ति के प्रवाह में लिखे गए स्तोत्र-साहित्य की परपरा का ग्रन्थ है।

भागवत के अन्त साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इसका रचना-स्थल दक्षिण भारत है। इसके वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हैं। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा-प्राप्त ज्ञात होता है। व्रज-मण्डल के वर्णन के सबन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। भील, किरात आदि जातियो का बाहुल्य तथा गिरिकन्दराओ की अधिकता का चित्रण इस मत को और भी पुष्ट करते हैं। नदी, पर्वतो, सघन वनो तथा खर्जूर आदि वृक्षो का आधिक्य दक्षिण प्रायद्वीप और विन्ध्याचल के आस-पास ही है। इसी प्रकार कुरवक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, मालती, मल्लिका, जाति, जूथिका आदि पुष्पो के उल्लेख से स्पष्ट है कि भागवतकार दक्षिण के पुष्पो से अधिक परिचित है और उसे दक्षिण के पदार्थों का ज्ञान और दर्शन प्रत्यक्ष सुलभ है।

भागवत महापुराण की प्राचीनता मे चाहे जो विवाद हो, इसमें कोई सन्देह नही कि समस्त भारतवर्ष के भक्ति-आन्दोलन के मूल में इस महापुराण की प्रेरणा निहित है 'वास्तव मे यह एक अलौकिक ग्रन्थ हैं और इसमें वर्णाश्रम धर्म मानवधर्म कर्मयोग, अष्टाङ्ग-योग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदि भगवत्प्राप्ति के सभी साधनो का विशद वर्णन है, किन्तु इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य भक्ति का उत्कर्ष प्रतिपादित कर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना है, इस महापुराण में आदि से अन्त तक भक्ति का ही वैशिष्ट्य हैं, भक्ति की परिभाषा से इसका आरम्भ होता है और पर्यवसान भी भक्ति सम्बन्धी प्रार्थना से। कई स्थलो पर भागवतकार ने भक्ति को ज्ञान और मुक्ति से भी बढकर बताया है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के सभी तत्त्वों का विशद विवेचन हुआ है और यही कारण है कि सभी वैष्णव सम्प्रदायो में इस ग्रन्थ की मान्यता है। श्रीधरस्वामी, जो अद्वैत मतानुयायी थे, भागवत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी भावार्थ दीपिका नाम की टीका प्रसिद्ध ही है। उनसे पहले वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् चित्सुखाचार्य जी भी भागवत की टीका कर चुके थे, विशिष्टाद्वैतमतानुयायी विद्वानो ने भी श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं, सुदर्शन सूरी की शुकपक्षीया और वीरराघव की भागवतचन्द्रिका शिष्टाद्वैत मत की ही टीकाएँ हैं। द्वैतमत के आचार्य श्रीमध्व ने स्वय 'भागवत तात्पर्यनिर्णय' ग्रन्थ लिखा था जो पूर्णरूप से भागवतपरक ही है, इसी सम्प्रदाय के श्री विजयध्वज ने भागवत की 'पदरत्नावली' नाम की द्वैतपरक व्याख्या की। निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान ग्रन्थ भी श्रीमद्भागवत ही है। इस सम्प्रदाय वालो की टीकाएँ अत्यन्त सक्षिप्त हैं। इस मत के आचार्य श्री शुकदेवजी की श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्त प्रदीप' नाम की व्याख्या है। भागवत को आधार मानकर इस सम्प्रदाय मे अनेक रस-पूर्ण निबन्ध तथा टीका टिप्पणी लिखी गई हैं, चैतन्य महाप्रभु तो श्रीधरी टीका को ही प्रामाणिक मानते थे किन्तु उनके अनुयायी गोस्वामियो ने भागवत पर अनेक टीका-टिप्पणियाँ लिखी हैं। सनातन गोस्वामी की 'वृहद्-वैष्णव तोषिणी', केवल दशम स्कन्ध पर ही है, अति प्रसिद्ध और मान्य टीका है। जीव गोस्वामी की क्रमसदर्भ

नामक टीका समस्त भागवत पर है। पुराण के गूढ अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने षट्सदर्भ अलग से लिखे। चैतन्य सम्प्रदाय के मान्य आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती की सारार्थदर्शिनी भागवत की अच्छी टीका है। भागवत को आधार मानकर बहुत से विद्वानो ने अनेक व्याख्याएँ और ग्रन्थ लिखे जो साक्षात् टीका न होकर भागवती लीला का विश्लेपण करते हैं। श्रीहरि का 'हरि भक्ति रसायन' ऐसो ही ग्रन्थ है। ये सब टीकाएँ और व्याख्यान ग्रन्थ इस बात को सिद्ध करते हैं कि भागवत्त सभी वैष्णव आचार्यो का आधार ग्रन्थ रहा है। साम्प्रदायिक टीकाओ में पुष्टि मार्ग के आचार्य श्रीवल्लभ की 'सुवोधिनी टीका' बहुत प्रसिद्ध है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

वल्लभाचार्य भागवत को महर्पि व्यासदेव की समाधि भापा मानते हैं. हमारी दृष्टि में कृष्ण भक्ति आन्दोलन को इतना व्यापक बनाने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को ही है. उन्होंने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उनका आधार भी भागवत को ही स्वीकार किया है। पुष्टिभक्ति का नामकरण भी उन्होंने भागवत के ही आधार पर किया। 'सिद्धान्त रहस्य' नामक ग्रन्थ की विवृति में हरिराय जी ने लिखा है कि पुष्टि मर्यादा और प्रवाह भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती हैं। प्रवाह भक्ति का प्रतिपादन तो वेद और पुराणो मे हुआ है तथा मर्यादा एव पुष्टि भक्ति के प्रतिपादन के उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। पुष्टिमार्ग में भक्ति को ही नर्वोपरि माना है। श्रीवल्लभाचार्य जी ने तत्त्वदीप निवन्ध के भागवतार्य प्रकरण मे सब स्कन्धो और अध्यायो को प्रकरणों में विभाजित किया है और उनके भाँति भाँति से अर्थ किये हैं। छठे स्कन्ध को उन्होने पुष्टि स्कन्ध वताया है और पुष्टि भक्ति का सूत्र इसी स्कन्ध से ग्रहण किया है। इस स्कन्ध में पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्त्वो का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर का है।

यह हम पहले कह चुके हैं कि पुष्टिमार्ग के अनुसार इस ब्रह्माण्ड के आविर्भाव का प्रयोजन केवल मात्र लीला है। वल्लभाचार्य जी ने भागवत के तृतीय स्कन्ध की सुवोधिनी में इस वात को स्पष्ट किया है कि भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विलास उनका अनुग्रह ही है। आचार्य जी भगवान् के बालरूप के उपासक थे। श्रीकृष्ण का यशोदोत्सङ्ग-लालित रूप ही इस सम्प्रदाय का उपास्य है, श्री वल्लभाचार्य जी अवश्य ही युग-पुरुष कहे जा सकते हैं, उनकी पुष्टि भक्ति मे जहाँ एक ओर सभी भक्ति-सम्प्रदायो का सामञ्जस्य है वहाँ दूसरी ओर उनमें वे मननीय शास्त्रीय तत्त्व भी निहित हैं जिनके कारण वह भक्ति के प्रकारो में सर्वोपरि कही जा सकती है, पुष्टि भक्ति का स्वरूप प्रेमलक्षणा निर्गुण है इसीलिये वल्लभाचार्य जी विशिष्ट सेवा मार्ग का निरूपण किया था। वल्लभाचार्य जी ने सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर पुष्टि भक्ति का प्रचार किया, पर पुष्टि मार्गीय सेवाभाव को विस्तार देने का कार्य उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने किया। महाप्रभु जी के समय में तो श्रीनाथ जी का शृङ्गार केवल पाग और मुकुट द्वारा होता था किन्तु विट्ठलनाथ जी ने आठ शृङ्गारो, झाँकियो, उत्सवो आदि का भी सन्निवेश सम्प्रदाय में किया और भगवान की आठो झाँकियो में नियमित कीर्तन के लिए आठ सगीताचार्य कीर्तनकार नियुक्त किये। पुष्टिमार्ग के अनुसार भक्त को भगवान् के स्वरूप का ही ध्यान करते रहना चाहिए और उन्हीं के गुण-कीर्तन में अपना मन लगाना चाहिए। यही निरोध का सब से वडा मन्त्र है। इससे वढकर न कोई मन्त्र है, न स्तुति है, न तीर्थ है, और न कोई विद्या है। पुष्टि मार्ग का सेवा-विधान एक अपनी मौलिकता है। पुष्टि मार्ग में जहाँ पूजा का विधान है वहाँ वेदोक्त अथवा तन्त्रोक्त पूजा का अभिप्राय नहीं है

बल्कि पुष्टिमार्गीय सेवाविधि का अभिप्राय है जो दो प्रकार की होती है—क्रियात्मक और भावनात्मक। इस भक्ति में भगवान् के प्रति विशुद्ध प्रेम की ही प्रधानता है और वह प्रेम 'माहात्म्यज्ञान पूर्वक' होना चाहिए —

माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिकः ।।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ।। त० नि० श्लोक ४६

'अर्थात् भगवान् के प्रति माहात्म्यज्ञान रखते हुए जो सुदृढ और सब से अधिक स्नेह हो वही भक्ति है और उसी से मुक्ति प्राप्त होती है। इस भक्ति में सेवा का ही विशेष महत्त्व है जैसा कि आचार्य वल्लभ ने सिद्धान्त मुक्तावली में लिखा है—

कृष्ण-सेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता। सि० मु० श्लोक १

सेवा का रूप उन्होंने इस प्रकार बताया है, 'चेतस्तत्प्रवण सेवा'। पुष्टिमार्ग के अनुसार सेवा के दो प्रकार हैं—नाम सेवा और स्वरूप सेवा। स्वरूप सेवा तीन प्रकार की है तनुजा, वित्तजा और मानसी। मानसी सेवा भी मर्यादा मार्गी और पुष्टि मार्गी भेद से दो प्रकार की है। मर्यादामार्गी मे भक्त शास्त्रानुकूल मर्यादा मार्ग पर चलता हुआ भगवान् कृष्ण की सेवा और आराधना करता हुआ अपनी अहंता और ममता को दूर करता है। इसमे पहले आत्मज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है, पुष्टि मार्गी मानसी सेवा करने वाला पहले से ही भगवान् के अनुग्रह की इच्छा करता है और शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान् की भक्ति करता हुआ भगवदनुग्रह से सहज ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। कहना न होगा कि पुष्टि मार्ग के ये सब विधि-विधान आचार्य वल्लभ ने श्रीमद्भागवत पुराण से ही ग्रहण किये। सुबोधिनी टीका में उन्होंने भागवत की पुष्टिमार्गीय भक्ति का भी विवेचन किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत मध्य कालीन भक्ति आन्दोलन की प्रेरणा का मूल स्रोत रहा है। इसलिये सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे भागवत का महत्त्व स्वीकार किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय में भागवत की विविध प्रकार से व्याख्या करके वैष्णव भक्ति के सभी तत्त्वो की सगति भागवत से लगाई गई है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो में बाह्यरूप से चाहे जितना वैषम्य हो उनके मूलतत्त्वो मे कोई बडा भारी भेद नही है। सभी वैष्णवसम्प्रदाय भगवत्तत्व को सगुण और साकार मानते है पर उसके मूल में निर्गुण और निराकार ब्रह्म भी विद्यमान रहता है। भगवान् भक्तो पर अनुग्रह करने के लिये अपनी लीला का विस्तार करता है और अपने भगवद्धाम में विग्रह धारण करता है जो छै गुणो से युक्त है। भगवान् स्वभाव से ही स्वामी, विभु और शेषी है जबकि जीव स्वभाव से ही दास, अणु और शेप है। प्राय सभी वैष्णव सम्प्रदायो में इन सिद्धान्तो की मान्यता है। भक्ति के मूलतत्त्व भी सब सम्प्रदायो में एक से हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना तीनो ही धर्माङ्गो को महत्त्व प्रदान किया गया है। पर ज्ञान और कर्म अङ्ग रूप से आते हैं और भक्ति अङ्गीरूप से। कर्म चित्त-शुद्धि का साधन है और ज्ञान आत्मबोध का हेतु। परम तत्त्व की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही होती है और वह भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है। भक्ति साधन रूपा भी है। प्राय सभी कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायो में साध्यभक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। शरणागति भी सभी सम्प्रदायो में मान्य है और भगवान् के अनुग्रह को सबने सर्वोपरि माना है। मुक्ति के प्रकार वैष्णव-सम्प्रदायो में अलग और साध्य रूपा अलग माने अवश्य गये हैं परन्तु मूलभावना सर्वत्र एक ही है सभी सम्प्रदायो ने शकर के मायावाद का खण्डन किया है। ईश्वर जीव और जगत् के सम्बन्ध में वैष्णव सम्प्रदायों की

मान्यताएँ कुछ अलग अलग हैं। चैतन्य महाप्रभु भगवान् मे अचिन्त्य शक्ति मानकर अचिन्त्य-भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। आचार्य वल्लभ माया सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म में विश्वास रखते हैं। मध्वाचार्य जीव और ईश्वर में द्वैतभाव मानते हैं और रामानुजाचार्य चित् तथा अचित् को भगवान् के ही विशेषण मानकर उभयविशिष्ट ब्रह्म की कल्पना करते हैं। निम्बार्काचार्य अवस्था भेद से चित् और अचित् को ईश्वर से भिन्न और अभिन्न मान कर भेदाभेद सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। भगवान् की लीला के सम्बन्ध में भी मतभेद है। यह मतभेद वास्तव मे भगवान् के गुणो की कल्पना पर आधृत है। लक्ष्मीनारायण अथवा सीताराम में ऐश्वर्य गुण की प्रधानता के कारण उनके भक्त दास्यभक्ति मे विशिष्ट आस्था रखते हैं। आगे चलकर सीताराम की उपासना में भी माधुर्यभाव और सखीभाव की कल्पना करली गई। यद्यपि कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के भक्तो में माधुर्यभाव पर विशेष बल है, पर उनकी उपासना-पद्धति में भी सूक्ष्मभेद विद्यमान हैं। निम्बार्क मत में सख्यभाव की प्रधानता है तो वल्लभाचार्य जी के मत में बालभाव की। शृङ्गार और माधुर्यभावना दोनो ही मतो मे है। चैतन्य सम्प्रदाय में माधुर्यभाव को ही प्रधानता दी गई है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में तो आह्लादिनी शक्ति राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्त्व दिया गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् यह भक्ति-आन्दोलन जन-आन्दोलन के रूप में सारे भारतवर्ष में फैल गया था। भारतवर्ष की प्राय सभी भाषाओ के साहित्य की अभिवृद्धि इस आन्दोलन के द्वारा हुई परन्तु व्रजभाषा में तो इस आन्दोलन ने मानो चार चाँद ही लगा दिये। कही व्रजभाषा के नाम पर तो कही 'व्रजबुलि' के नाम पर विशाल भक्ति साहित्य की सर्जना हुई। खेद है कि आज हिन्दी के विद्वानो का उस व्रजभाषासाहित्य की ओर विशेष ध्यान नही गया है। वल्लभ सम्प्रदाय में जहाँ एक ओर वैष्णव साधना के सभी तत्त्वो का समावेश था वहाँ दूसरी ओर इसके द्वारा व्रजभाषा साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वय भी व्रजभाषा में रचनाएँ कीं। उनकी चौरासी अपराध नाम की एक व्रजभाषा की रचना प्रकाशित भी हो चुकी है। उन्होने स्वय चाहे व्रजभाषा मे कुछ न लिखा हो पर उनके शिष्यो ने व्रजभाषा के सँवारने और समृद्ध करने में जो योगदान दिया है वह वास्तव मे अपूर्व है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि आचार्यचरण अपने सम्प्रदाय का प्रचार व्रजभाषा के ही माध्यम से किया करते थे और इसे वे 'पुरुषोत्तम भाषा' कहते थे। उनकी शिष्य परम्परा मे ऐसे अनेक अज्ञात कवि हैं जिनकी रचनाएँ आज भी अन्धकार के गर्भ में छिपी हुई हैं। हरिराय जी की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता में ऐसे अनेक कवियो का उल्लेख किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय और उसके माध्यम से व्रजभाषा साहित्य के प्रचार और प्रसार का श्रेय वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को है। उन्होने इस सम्प्रदाय की ठीक प्रकार से व्यवस्था की और पुष्टिमार्गीय सेवा भावना को विस्तार से क्रियात्मक रूप दिया।

भगवान् के आठ शृङ्गारो की व्यवस्था की और अनेक प्रकार के उत्सवो का प्रचार किया। शृङ्गार, भोग, राग सभी की ऋतुओ के अनुसार व्यवस्था की गई। भोग के विस्तार के लिये छप्पन भोग तथा अनेक प्रकार की भोज्य सामग्री प्रस्तुत करने की व्यवस्था की। राग का विस्तार करके ऋतुओ के अनुसार विस्तृत कीर्तन-पद्धति का प्रचलन किया और उस कीर्तन पद्धति के सम्यक् निर्वाह के लिये अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के आठो कीर्तनिया आठो झाँकियो के कीर्तन में विशिष्ट ऋतु और काल के अनुसार अनेक राग रागनियो में भगवत्कीर्तन किया

करते थे। इन आठ कीर्तनकारो में प्रत्येक के साथ कुछ झालरिया और ताल वाले भी कवि और गायक रहते थे जो स्वय भी उच्चकोटि के कीर्तनकार थे। इन अष्टछापी कीर्तनकारो में चार अर्थात् कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास उनके पिता के शिष्य थे और चार—गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और कृष्णदास—उनके अपने शिष्य थे। ये सभी भगवान् की अन्तरङ्ग लीलाओ से परिचित थे। इसीलिये उन्हे भगवान् के अन्तरङ्ग आठ सखाओ की सज्ञा दी गई थी। इन आठ कीर्तनकारो के अतिरिक्त विट्ठलनाथ जी ने ब्रजभाषा के अनेक कवियो को भी प्रश्रय दिया था। इन सभी कवियो का सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य कितना विशाल और महनीय होगा यह कल्पना ही हिन्दी के विद्यार्थी को चकित करने वाली है। पुष्टि सम्प्रदाय मे इन कीर्तनकारो का महत्त्व उनके काव्य के कारण इतना नही है जितना भक्त होने के कारण। हरिराय जी ने अष्टसखान की वार्ता पर अपनी भाव प्रकाश टिप्पणी में उनके साम्प्रदायिक महत्व पर विस्तार से विचार किया है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिये तो इन कीर्तनकारो का साहित्यिक दृष्टि से बडा वैशिष्ट्य है। इनके द्वारा ब्रजभाषा का रूप इतना निखर गया कि सम्पूर्ण रीतिकाल में उसकी धारा बडे प्रबल वेग से बहती रही।

यह बडे खेद की बात है कि आज भी ब्रजभाषा के इस विशाल साहित्य के उद्धार के लिये हिन्दी जगत् में कोई बडा प्रयत्न नही किया जा रहा है। इस उपेक्षा का एक कारण यह भी हो सकता है कि ब्रजभाषा के इन साहित्यकारो का महत्त्व अभी तक विद्वान् साम्प्रदायिक दृष्टि से ही आक रहे हैं। इसीलिये सम्प्रदाय के विद्वान् ही इस ओर कुछ अधिक प्रयत्नशील दीख पडते हैं। कुछ अनुसन्धाताओ को छोडकर किसी सुनिश्चित योजना के आधार पर कोई विद्वत्समाज इस पुण्य कार्य में तत्पर नही दीख पडता। भक्त-प्रवर द्वारकादास जी परीख के सत्प्रयत्नो से बहुत कुछ अज्ञात साहित्य प्रकाश मे आया है पर वह केवल सिन्धु में बिन्दु के सदृश ही है। सूर साहित्य पर गवेषणा करते हुए मुझे इस विशाल साहित्य की यत्र-तत्र कुछ झाँकियाँ मिली और मेरी यह दृढ धारणा बन गई कि अभी तक जो शोधकार्य इस दिशा मे हुआ है वह विद्वानो का केवल चञ्चुप्रवेशमात्र है। इस सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाश में लाने की आज बडी आवश्यकता है। धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक सभी दृष्टियो से इस साहित्य का विश्वसाहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान है। हजारो शोध विद्यार्थियो के लिये इस विशाल साहित्य मे मसाला भरा पडा है इसी भावना से प्रेरित होकर हमने अपने विश्वविद्यालय में शोध के विषयो में कृष्ण भक्ति साहित्य को विशिष्ट स्थान दिया है और उसके विभिन्न पक्षो पर हमारे विद्यार्थी शोधकार्य कर रहे हैं। मेरे सहयोगी और प्रियशिष्य डा० गोवर्धननाथ शुक्ल के लिए शोध के विषय की समस्या बहुत दिनो से बनी हुई थी। शुक्ल जी के पूर्वज पुष्टि सम्प्रदाय के उच्चकोटि के विद्वान् और भक्त रहे हैं और उनके घर में आज भी पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा तथा सैकडो हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं। उनकी समस्या पर मुझे बडा आश्चर्य हुआ और मैंने उन्हे परमानन्ददास जी पर काम करने की सलाह दी प्रस्तुत सपादन कार्य उसी का परिणाम है। सूर साहित्य प्रकाश मे आ चुका था। पुष्टि सम्प्रदाय के दूसरे सागर एव भक्त गायक परमानन्ददास जी का साहित्य अप्रकाशित ही था। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास का एक पद प्रसिद्ध है—

परमानन्द और सूर मिलि गाई सब ब्रजरीति।
भूलि जाति बिधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।

इस पद से परमानन्द जी का महत्त्व स्पष्ट है। परमानन्ददास जी अपने जीवन काल में ी सागर' कहलाने लगे थे जैसा कि अष्टसखान की वार्ता में लिखा है "तासो वैष्णव तो अनेक ी आचार्य जी के कृपापात्र हैं परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ 'सागर' भये। न दोउन के कीर्तन की सख्या नाही, सो दोऊ सागर कहवाये" इस प्रकार का भी उल्लेख आगे ाया है—"पुष्टि मार्ग मे दोई 'सागर' भये एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास जी सो तिनको हृदय अगाध रस भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।"

परमानन्ददास जी का पुष्टि सम्प्रदाय में अपना अलग महत्त्व है। सूरदास जी ने कृष्ण की विविध लीलाओ का गायन किया है जबकि परमानन्द जी बाललीला गायन में निष्णात कहे जाते हैं। इनका बाललीला गायन अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक है। कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों में 'गोपीभाव' एक विशिष्ट भाव है और यह बात नि सकोच कही जा सकती है कि इस भाव निरूपण मे परमानन्द जी बेजोड हैं। गोपीभाव का अभिप्राय गोपी की वेश-भूषा धारण करना नहीं है बल्कि उसके मूल में पूर्ण समर्पण और विरह में पूर्ण व्याकुलता की भावना है जैसा कि नारदभक्तिसूत्र में लिखा है—'तदर्पिताखिलाचारिता तद्विरहे परमव्याकुलता च'। श्रीमद्भागवत की गोपियाँ इन्हीं दोनों भावनाओं की प्रतीक हैं। यहा स्वार्थ की गन्ध नही है। काम का प्रवेश वर्जित है और विषयासक्ति का अभाव है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण भगवान् स्वय गोपियो की स्तुति करते हैं'—

न पारयेऽह निरवद्यसयुजाम्।
स्व साधु कृत्य विबुधायुषापिव ।।
या माभजन् दुर्जरगेह शृ खला.,
सवृश्च्यतद् व प्रतियातु साधुना ।। भाग १० स्क० अ० ३२ श्लो० २२

परमानन्ददास जी के साहित्य में सर्वत्र इसी भाव की प्रधानता मिलती है। इन गोपियो के विषय में कहा गया है: —

ये हरिरस ओपी गोप तियन ते न्यारी।
कमलनयन गोविन्दचन्द की प्रानन पियारी।
निर्मत्सर जे सन्त तिनहि चूडामनि गोपी।
निर्मल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी।
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावै।
क्यो नहि परमानन्द प्रेम भगति सुख पावै।

परमानन्ददास जी ने इस गोपीभाव के विश्लेषण के लिए शृङ्गार-भक्ति के सयोग और वियोग दोनों ही पक्षो पर बडे मार्मिक पद रचे हैं। उनके विरह के पद तो इतने उत्कृष्ट हैं कि उनकी अपनी विरह वेदना पदो से स्पष्ट झलकती है। ऐसे उच्च कोटि के भक्त और महाकवि के काव्य के विषय में हिन्दी जगत अन्धकार में रहे, यह बडे दुख की बात थी परमानन्ददास जी के पदो का सग्रह अवश्य उनके जीवनकाल में होगया होगा। 'परमानन्द सागर' की कई प्रतियाँ आज भी विद्या विभाग काँकरोली में सुरक्षित हैं, पर हिन्दी के विद्वानो को उनके पदो की जानकारी नहीं के बराबर है। परमानन्ददास जी के काव्य का काव्य-कला की

दृष्टि से भी बहुत कम विचार हुआ है। मुझे बडी प्रसन्नता है कि श्री गोवर्धननाथ शुक्ल ने अपने शोध-प्रबन्ध के द्वारा इस ओर स्तुत्य प्रयास किया है। 'परमानन्ददास जी और उनका साहित्य' शीर्षक शोध-प्रबन्ध में परमानन्द जी की जीवनी, उपलब्ध-साहित्य, भक्ति और काव्य-पक्ष आदि विभिन्न अगो पर विस्तार से विचार किया गया है। स्वय पुष्टि-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण शुक्ल जी का दृष्टिकोण बडा उदार रहा है। साथ ही उन्होने शोध के मानदण्डों का कही भी परिहार नही किया। एक निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से परमानन्द और उनके साहित्य पर विचार किया गया है। परमानन्द जी के विद्यार्थी की सुविधा के लिए, शोध-प्रवन्ध की मुख्य-मुख्य बातें साररूप में यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। इस शोध-प्रबन्ध से भी बृहत्तर कार्य 'परमानन्द-सागर' के सम्पादन का था। जो उस लीला-पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से ही सम्पन्न हो सका है। अभी 'सागर' के कुछ और भी पद अवशिष्ट हैं, जिन्हे दूसरे सस्करण में सम्मिलित करने का प्रयास किया जायगा। पद-सग्रह यथा-सम्भव साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ही किया गया है, फिर भी बहुत सी त्रुटियो का प्रवेश जाने-अनजाने अवश्य हो गया होगा, जिसके लिए सम्प्रदाय के उदार विद्वान् क्षमा करेंगे और अपने बहुमूल्य सुझावो से सम्पादक को कृतज्ञ करेंगे।

—हरवशलाल शर्मा

॥ श्रीहरि ॥

'परमानन्द सागर' एक झांकी

[श्री द्वारकादास परीख]

१—सागर क्यों

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि व्रजभाषा-गेय-साहित्यगिरि पर अष्टछाप के कवियो की रचनाए शिखर स्थानीय हैं। उनमें काव्य चमत्कृतियो की अद्‌भुत कलाओ के साथ अन्तरात्मा की दिव्य एव देदीप्यमान अनुभूतियो का जैसा रसास्वादन मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ हैं। यह रसास्वादन उन सन्त एव भक्त कवियो के हृदयो की स्वतन्त्र भक्ति का प्रसाद स्वरूप है। यह स्वतन्त्र भक्ति वैदिक मन्त्र, विधि-विधानो और उपासना-पद्धति से विलक्षण केवल हृदय की साहजिक परम प्रेम स्वरूपा है जिसकी झाकी 'सागर' में होती है।

हृदय का साहजिक प्रेम काल, कर्म और स्वभाव से अबाधित रूपवाला होता है, वह केवल कोमल भाव-तरगो को लिये हुए स्वतन्त्र भक्तिभावनाओ के अखडित प्रवाह रूप से हृदय में वहता रहता है। भाव-तरगो की उच्छलित लहरें कभी-कभी भक्त के मुख द्वारा निष्कासित होती हैं जो काव्य रूप में इस जगत में प्रतिफलित होती हैं, अष्टछाप के कवियो की वाणी का यही स्वरूप है। इसमे 'सूर' और 'परमानन्द' की वाणी 'सागर' रूप कहलाई।

'८४ वैष्णवन' की वार्ता से यह भी विदित होता है कि 'सूर' और 'परमानन्द' की वाणी ही नही किन्तु वे भी स्वय 'सागर' रूप कहलाये[१]। 'सूर' ने तो अपने 'सागर' रूप का कथन निम्नलिखित पद में इस प्रकार स्पष्ट रूप से किया ही है—

> है हरि ! मोहूते अति पापी।
>
> 'सागर सूर' विकार जल भरयो वविक अजामिल वापी।

'सूर' को 'सागर' की उपाधि सर्वप्रथम महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रदान की थी। उसी के अनुसरण रूप में आपके द्वितीय पुत्र प्रभुचरण श्री विट्ठलनाथ जी गुसाई ने यह उपाधि 'परमानन्ददास' को दी थी[२]। इस प्रकार पिता पुत्र द्वारा 'सागर' शब्द एक महती उपाधि रूप में भक्ति मार्ग और साहित्य क्षेत्र मे प्रचलित हुआ है।

अब प्रश्न यह होता है कि इस महती उपाधि से 'सूर' और 'परमानन्द' को सम्मानित वा गलकृत क्यो किया गया ! और दोनो की रचनाओ को भी 'सागर' रूप देने का तात्पर्य क्या है ? इस प्रश्न को लेकर आज तक किसी विद्वान् ने स्वतन्त्र रूप से कोई विचार ही नही किया है। मेरा अपना यह मन्तव्य है कि जब तक 'सागर' शब्द का रहस्य ज्ञात न होगा तब तक सूर वा परमानन्द इन उभय सागरो की भीतरी तहो को हम छू न सकेंगे और न उन

१—वार्ता प्रसग—३। भावना वाली ८४ वै० वार्ता पृष्ठ ७३८।

२—वार्ता प्रसग—७। लीला भावना वाली ८४ वै० वार्ता पृष्ठ ८०४।

सागरो के अन्दर रहे हुए निगूढ तत्त्व रूप रत्नो को ही पा सकेंगे। इसलिए 'सागर' शब्द के रहस्य को जानना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

कई लोगो की धारणा है कि सहस्रावधि पदो की रचना के कारण ही ये दोनो 'सागर' कहलाये। किन्तु यह धारणा ठीक नही है। क्योकि इन कवियो के समकालीन और उत्तरकालीन ऐसे और भी कई कवि हुए हैं जिन्होने सहस्रावधि पदो की रचनाऐं की हैं। किन्तु महाप्रभु या किसी अन्य महापुरुष द्वारा उन कवियो को यह उपाधि प्राप्त नही हुई हैं। अत 'सागर' का सम्बन्ध केवल 'सख्या' सूचक नही है।

हाँ! ८४ वैष्णव की वार्ता में एक मुकुन्ददास कवि भी मिलते हैं। उनकी रचना को वार्ताकार ने 'सागर' की उपाधि दी है। वह है 'मुकुन्द सागर'। 'मुकुन्द सागर' में श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्धो का ब्रजभाषा में ज्यो का त्यो उलथा हुआ है [1]। इससे यह प्रतीत होता है कि 'सागर' शब्द श्रीमद्भागवत से सम्बन्धित है। यहा यह द्रष्टव्य है कि वार्ताकार ने मुकुन्ददास की रचना को 'सागर' कहा है किन्तु 'सूर' 'परमानन्द' की भाति 'मुकुन्ददास' को स्वय 'सागर' की उपाधि से विभूषित कही नही किया गया है। अस्तु।

'सागर' शब्द भागवत से सम्बन्धित है उसका तात्पर्य यह है कि 'सागर' भागवत वाची शब्द है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपने भागवत-सार समुच्चय रूप 'श्री पुरुषोत्तम सहस्र नाम' मे श्री भागवत को 'सागर' कहा है। जैसा कि—

"हृर्यविशित चितेन श्री भागवतसागरात्।
समुद्धृतानि नामानि चिंतामणि निभानि हि" ॥

इससे यह निश्चित हो जाता है कि 'सूर' और 'परमानन्द' को 'सागर' की उपाधि से अलकृत करके महाप्रभु और प्रभुचरण ने भक्त द्वय को भागवत स्वरूप ही कहा है। उनकी रचनाओ को भी 'सागर' कहने का तात्पर्य यही है कि वे भागवती-भक्ति के ही अनुसरण रूप हैं।

२—भक्त का भागवतीय रूप

श्री भागवत में द्वादश स्कध हैं, उनमें क्रमश अधिकार, ज्ञान (साधन) सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, इशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय-इस प्रकार की द्वादशीय भगल्लीलाओ का वर्णन हुआ है। अधिकार और ज्ञान ये दो लीला अन्य लीलाओ के साधन रूप होने से गौण हैं। शेष सर्गादि से लेकर मुक्ति पर्यंत की नव लीलाऐं द्वादश स्कधीय 'आश्रय' रूप लक्ष्य" की लक्षणस्वरूपा है 'लक्ष्य' रूप 'आश्रय' भगवान् का ही स्वरूप माना गया है। इसीलिये नन्ददास जी ने भी कहा है—

'नवलक्षण करि लक्ष्य जे दसयें आश्रय रूप।
नन्द' बदि लै ताहिको श्रीकृष्णाख्य अनूप ॥'

अर्थात् तृतीय स्कध से एकादश स्कध पर्यन्त की लक्षण रूपा नव लीलाओ से युक्त द्वादश स्कधीय 'आश्रय' स्वरूप श्रीकृष्ण की श्रीभागवत में स्थिति रही हुई है इसलिये श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है।

१—देखो मुकुन्ददास की वार्ता स० १९

श्री वल्लभाचार्य जी श्री भागवत के द्वादश स्कधो की अपने इष्ट परब्रह्म श्री गोवर्धननाथ जी के द्वादश अवयव रूप मानते हैं।[१] आप के मत से प्रथम-द्वितीय स्कध भगवान् के दोनो चरण हैं। तृतीय-चतुर्थ स्कध दोनो बाहू हैं। पचम-षष्ठ स्कंध दोनो सक्थि हैं। सप्तमस्कध दक्षिण श्रीहस्त है। अष्टम नवम स्कध दोनो स्तन हैं। दशम स्कध हृदय है। एकादश स्कध श्री मस्तक है और द्वादश स्कध वाम श्रीहस्त हैं। इस प्रकार द्वादश स्कधीय भागवत भगवान् पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण के द्वादश अवयव स्वरूप साक्षात् श्री विग्रह है। इस प्रकार के 'द्वादशागोवै पुरुष —"भागवत स्वरूप श्रीकृष्ण" की जिस भक्त के हृदय में अक्षुण्ण स्थिति रहती है वह ही भागवत स्वरूप होता है। महाप्रभु ने सूर और परमानन्द दोनो के हृदय में दशम स्कध की अनुक्रमणिका और पुरुषोत्तम-सहस्रनाम की प्रतिष्ठा कर दोनो को 'भागवत' स्वरूप बना दिये थे। यह बात वार्ता से स्पष्ट सिद्ध होती है[२]।

द्वादशलीला युक्त भगवान् श्रीकृष्ण की 'सूर' और 'परमानन्द' के हृदयो में तात्विक रूपो से स्थिति थी। इसीलिये सूर जन्म से लौकिक द्रष्टि से विहीन होते हुए भी इस निरानन्द लोक (जगत) और उस आनन्दमय गोलोक के सर्वांग रूप से द्रष्टा बन सके, यही नही भगवान् और उनके प्रकृतिजन्य विविध सौंदर्य क्रीडा, और पदार्थों को भी तलस्पर्शी वर्णन कर सके। स्वय भगवान् की अविगत रसमयी लीलाओ को भी जान सके और प्रकट भी कर सके। इसी प्रकार परमानन्द के हृदय में भी वही आनन्द स्वरूप और आनन्दमयी लीलाओ की स्थिति थी उसका ज्ञान उनके 'सागर' से स्पष्ट हो जाता है।

३—'सागर' में भागवती लीला

'सूर सागर' की भाँति 'परमानन्द सागर' विस्तृत नही है। 'सूर' ने 'सारावली' आदि अपनी रचनाओ में'सर्ग विसर्गादि सभी लीलाओ आश्रयात परिपूर्ण वर्णन किया है इसीलिए सूर सारावली को 'सागर' की सूची रूप मान कर 'सागर' की भागवतीय लीलाओ की पूर्ति का अश माना है—वास्तव में तो 'सागर' भागवतीय भक्ति—तत्व से ही सम्बन्धित है। अन्य लीलाएँ तो उस तत्व का विस्तार, पोषण और स्पष्टीकरण रूप है। इसलिए सूर सागर के नाम से दो तरह की प्रतिया उपलब्ध होती हैं। एक केवल दशमस्कध पूर्वार्द्ध की लीलाओ की सग्रह वाली। द्वितीय द्वादश स्कध के अनुवाद वाली। इनमें प्रथम प्रति ही भगवान् की भक्ति तत्व वाली है अत मूल रूप 'सागर' का स्वरूप वही है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने भागवत में तीन भाषायें मानी हैं। लौकिक भाषा, पर मत भाषा और समाधिभाषा। लौकिक भाषा वह है जिसमें इतिहास है। पर मत भाषा वह है जिसमे अन्य ऋषि मुनिओ के मतो को कहा गया है। समाधिभाषा वह है जो व्यास-शुक वचन स्वरूप है। व्यास जी ने समाधि में भगवल्लीलाओ का दर्शन अनुभव करके शुक को कहा है। वे ही भक्ति मार्ग में प्रमाण स्वरूप हे और व्यास जी की आत्मा को भी उसी से शान्ति हुई है। इससे समाधि-भाषा की उपादेयता और प्रधानता सिद्ध है। भागवत में कहे गए ज्ञान वैराग्य आदि अन्य तत्वो का पर्यवसान भक्ति में ही हुआ है। भागवत में भक्ति के भी अनेक भेद कहे गए हैं

१—इतीदं द्वादशस्कन्ध 'पुराण' हरिरेव स.। पुरुषे द्वादशत्व हि सक्थ्यौ बाहू-शिरोऽन्तरम् ॥१४॥ हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ तत । सक्थ्यौ हस्तस्ततश्चैको द्वादश चापर स्मृत ॥१५॥ उत्क्षिप्तहस्त' पुरुषो भक्तमाकारयन्स्युत। स्तनौ मध्य शिरश्चैव द्वादशांग तनुर्हरि ॥१६॥ निबन्ध।

२—देखो ८४ वैं० वा० [भावनावाली] स० ८१-८२ पृष्ठ ७३८, तथा ८०४।

हैं। उनमें मर्यादा और पुष्टिभक्तो के चरित्र रूप भक्ति की प्रधानता है। पष्ठ, नवम और दशम स्कधो में सदोष पुष्टि जीवो का मर्यादा पुष्टि और निर्दोप जीवो के पुष्टि चरित्रो का वर्णन मिलता है। इनमें भी निर्दोष-पुष्टि भक्तो के चरित्र में विशुद्ध प्रेमलक्षणा का आविष्कार हुआ है। वह विशुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन दशम-पूर्वार्द्ध मे ही मिलता है। यह भक्ति ही भागवत का प्रधान तत्व है। इससे ही मुक्ति और आश्रय की सिद्धि होकर जीव कृत कृत्य हो जाता है।

प्रेमलक्षणा भक्ति को महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी ने स्वतत्र, स्वाधीना, वा पुष्टिभक्ति कहा हैं। उसमें भगवान् स्वय प्रेम विवश होकर जीवो का समुद्धार करते हैं। इस भक्ति के अधिकारी नि साधन जीव होते हैं, जिनको वेदादि ज्ञान का आश्रय नही होता है। ऐसे भक्तो में श्री गोपीजन प्रधान हैं। इसलिये प्रेम भक्तिमार्ग के सभी आचार्यों ने उनको गुरु माना है। गोपीजनो के उद्धार के अर्थ भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रज में अवतरित होकर जो लीलाएँ की हैं वे सव प्रेम-भक्ति की विविध अवस्था रूप हैं। उन लीलाओ का 'सागर' मे वर्णन है। ये लीलाएँ प्रधानत· चार अवस्था वाली हैं —बाल, कुमार, पौगड और किशोर। भगवान् श्रीकृष्ण ने ११ वर्ष ५२ दिवस सपर्यत् ऐतिहासिक रूप से व्रज में स्थिति की है। भाव रूप से उनकी स्थिति व्रज में नित्य है। ११ वर्ष और ५२ दिनो मे उन्होने उक्त चार अवस्थाओ को अगीकार करते हुए जन्म से लेकर रास क्रीडा पर्यन्त लीलाएँ की है, जिनका भागवत और 'सागर' दोनो में वर्णन हुआ है।

दशम स्कध पूर्वार्द्ध के भक्ति तत्व में भगवान् श्रीकृष्ण की चार अवस्थाओ की चतुर्विध लीलाएँ हैं वह प्रेम-भक्ति की स्नेह, आसक्ति, व्यसन और तन्मय इस प्रकार की चार अवस्थाओ को प्रकट करती हैं। जैसाकि—

१—बाल लीला —इसका वर्णन 'सागर' मे जन्म के पश्चात् छट्ठी पूजन, पलना, अन्नप्राशन, कनछेदन, नामकरण, करवट, भूमिस्थिति, देहली उल्लघन, ऊखल लीला, मृतिका भक्षण और माखन चोरी आदि पदो में है। इस प्रकार की अढाई वर्ष तक की बाल लीला से भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रजजनो की दूध, दही आदि लौकिक पदार्थो में से राग निवृत्त कर अपने मुग्ध रूप के प्रति स्नेह को उत्पन्न किया है। आचार्य चरण स्नेह का लक्षण बताते हुए 'भक्तिवर्द्धिनी' मे आज्ञा करते हैं कि 'स्नेहाद्रागविनाश' अर्थात् भगवान् में स्नेह हुआ तभी मानना चाहिए जब भक्त का लौकिक पदार्थों में रहा हुआ राग नाश हो।

'सागर' मे से स्नेह के उदाहरण रूप एक पद यहा दिया जाता है—

हरिलीला गावत गोपी जन आनन्द मे निसिदिन जाई।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन व्रजजन सुखदाई॥
दोहन मण्डन, खण्डन लेपन, मडन-गृह, सुतपति सेवा।
चारियाम अवकास नहि पल, सुमरत कृष्ण देव-देवा॥
भवन भवन प्रति दीप बिराजत, कर ककन नूपुर बाजे।
'परमानन्द' धोख कोतूहल निरखि पाति सुरपति लाजे॥[1]

इस पद में वाल-लीला-चरित्र के स्मरण से गोपीजनो के सभी आवश्यक गृह-कार्यों में से भी राग निवृत हुआ प्रतिभासित होता है।

१—परमानन्द सागर पद सख्या—८१

२—कुमार लीला :—इसका वर्णन 'सागर' में गोदोहन, गोचारण, आदि के पदो में है। अढाई से पाच वर्ष तक कुमार अवस्था मानी गई है। भगवान् ने पाचवें वर्ष से ही गोचारण गोदोहन आदि लीलाएँ शुरू की थी। उस कुमार अवस्था में आपका सौंदर्य 'कुत्सितो मारो यस्मिन् स कुमार.' अर्थात् जहाँ काम भी तुच्छ लगे ऐसा था। वाल क्रीडाओ से उत्पन्न किया गया प्रेम इस प्रकार के रूप द्वारा आसक्ति में परिणत हुआ। आसक्ति का स्वभाव है प्रिय का गुणानुवाद गाना।[1] भगवान् श्रीकृष्ण जब गोचारण को पधारते थे तब सब गोपीजन गृह के कार्यो को छोड कर आपस में भगवान् के स्वरूप और लीलाओ का गुणानुवाद करती थी। इससे गोपीजनो की गृह में अरुचि सिद्ध होती है। आचार्य चरण आसक्ति का यही लक्षण 'भक्तिवर्द्धिनी' में वतलाते हैं। "आसक्त्यास्याद् गृहारुचि ।"[2] 'सागर' में मे आसक्ति के उदाहरण रूप एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

अब तो कहा करोरी माई।
जवतें दृष्टि परी नदनदन पल भर रह्यौ न जाई ॥
भीतर मात-पिता मोहि त्रासत जे कुल गारि लगाई।
वाहर सबै मुख मोरि कहत हैं, कान्ह सनेहनि आई ॥
निसवासर मोहि कल न परत है गृह-अगना न सुहाई।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हसि चित्त लियौ है चुराई ॥[3]

इस पद में एक गोपिका अपनी सखी के आगे भगवान् के स्वरूप के प्रति आसक्ति का वर्णन करती हुई कहती है कि रात-दिन मुझे न तो कल पड रही है न गृह का आगन ही सुहाता है। इससे 'गृहारुचि' स्पष्ट जानी जा सकती है।

३—पौगड लीला :—छै से नव वर्ष तक की पौगड अवस्था होती है। इस अवस्था में व्रतचर्या आदि लीलाएँ भगवान ने की हैं। इन लीलाओ में गोपी जनो की आसक्ति व्यसनावस्था को प्राप्त हुई हैं। वे भगवान् को अपने पति रूप में प्राप्त करने के साधन रात दिन करती रहती हैं। इसके लिये व्रज की कुमारिकाओ ने जहा 'व्रतचर्या' आदि साधन किये वहा गोप-वधुओ ने दान, मान, पनघट आदि साधनो से भगवत्स्वरूपो के 'अँखरस' 'कनरस' 'वतरस' और 'सवरसो' का अनुभव करने की सतत चेष्टाएँ की हैं। भगवान् श्रीकृष्ण 'रसो वै स ' रस स्वरूप है। वह "आनन्दमात्र कर पाद मुखोदरादि" [4] स्वरूप वाले आनन्द स्वरूप हैं। 'रसह्येवाय्यलब्ध्वा ग्रानदी भवति' श्रुति के अनुसार इसको प्राप्त कर जीव आनदमय होता है। अत आनदपिपासुओ के लिये रसमय श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही ध्येय रूप होती हैं। उस ध्येय की सिद्धि से ही जीव कृतकृत्य हो जाता है। इसीलिये आचार्य चरण 'भक्तिवर्द्धिनी' में आज्ञा करते है :—'यदास्याद् व्यसन कृष्णे कृतार्थ. स्यात् तदैवहि' [5] अर्थात् जिस समय श्रीकृष्ण में व्यसन हो जाता है उसी समय जीव कृतार्थ हो जाता है।

१—गोपी गीत-सुबोधिनी
२—भक्ति वर्द्धिनी श्लोक ४
३—परमानन्द सागर पद सं०—७१३
४—तत्वदीप श्लोक ४८
५—भक्ति वर्द्धिनी—श्लोक ५

'सागर' मे से कुमारिकाओ एव गोप-वधुओ के व्यसन के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

व्रतचर्या :— हरिजस गावत चली ब्रजसुन्दरी नदी जमुना के तीर ।
लोचन लोल बाह जोटी कर स्रवनन झलकत वीर ।।
वेनी सिथिल चारु काधे परे कटि-पर अवर लाल ।
हाथन लिये फुलन की डलिया उरमुक्ता मनि माल ।।
जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास ।
जैसे प्रीतम होय नदसुत व्रत ठान्यौ यह आस ।।
तब तें चीर हरे नदनदन चढि कदब की डार ।
'परमान्द प्रभु' वर देवे कौं उद्यम कियो हैं मुरार ।।[1]

रस प्राप्ति के लिये वन गमन—

यातें माई भवन छाडि वन जैये ।
अखि रस, कन-रस, वतरस, सबरस नद नदन पे पैये ।।
कर पल्लव कर कध बाहु धरि सग मिलि गुन गैये ।
रास विलास विनोद अनुपम माधो के मन भैये ।।
यह सुख सखीरी कहत न आवै देखे ही दु ख बिसरैये ।
'परमानद स्वामी' को सगम भाग वडे ते पैये ।।[2]

४—किशोर लीला —कृतार्थ हो जाने पर जीव प्रेम भक्ति के फल को प्राप्त होता है । अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति होने के पश्चात् जीव अपनी एकादश इन्द्रियो से हरि-रस वा कृष्ण रस का उपभोग करता है । एकादश इन्द्रियो से इस प्रकार कृष्ण रस का उपभोग होता है—

परम रस पायो ब्रज की नारि ।
जो रस ब्रह्मादिक को दुर्लभ मो रस दियो मुरारि ।।
दरसन सुख नैनन को दीनो रसना को गुन गान ।
बचन सुनन श्रवनन को दीनो वदन अधर रस पान ।।
आलिगन दीनो सब अगन भुजन दियो भुजबध ।
दीनी चरम विविध गति रसकी नासा को सुख गध ।।
दियो काम सुखभोग परम फल त्वचा रोम आनद ।
ढिग बैठिवो नितबन लै उछग नदनद ।।
मन को दियो सदा रस भावन सुख समूह की खान ।
'रसिक' चरन रज ब्रज-जुवतिन ही अति दुर्लभ जिय जान ।।

यह पद महाप्रभु श्री हरिराय चरण का है । इसमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी की उन कारिकाओ का फलितार्थ हैं जो वेणुगति' के अध्याय में आपने 'अक्षण्वता फलमिद' श्लोक पर लिखा है जैसा कि—"अक्षण्वतामिन्द्रियवता चक्षुष्मतां वा, इदमिति स्वहृदये मनोरथ प्रकारेण प्रतिभात" ।[3]

१—परमानन्द सागर—पद ८००

२—परमानन्द सागर पद—२१०

३—सुवोधिनी द० स्क० अ का० ३

भगवता सह सलापो दर्शन मिलितस्य च ।
आश्लेप. सेवन चापि स्पर्शश्चापि तथा विधि ॥
अधरामृत पानं च भोगो रोमोद्गमस्तथा ।
तत्कूजिताना श्रवणमाघ्राण चापि सर्वत ॥
तदन्तिकगतिर्नित्यमेव तद्भावन सदा ।
इदमेवेन्द्रियवता फल मोक्षोपि नान्यथा ॥

इस प्रकार के रसानुभव से परे कोई फल नही हैं, मोक्ष भी नहो है। यह श्रुति रूपा गोपीजन कहती हैं। यह परम फल है। इस परमफल के दो रूप हैं। एक बाह्य रमण। दूसरा आतर रमण। बाह्य रमण श्रीकृष्ण के स्वरूप से रमण सयोगफल रूप है। वह रास क्रीडा रूप में श्री गोपीजनों को प्राप्त हुआ। यही किशोर अवस्था की लीला है। जिसमे रास, खण्डिता आदि के पदो का समावेश होता है। स्थानाभाव से उन पदो को यहाँ नही दिया जा रहा है। दूसरा आंतररमण परमफल[1] युगलगीत भ्रमरगीत में धर्मी रूप से मिलता है। यह धर्मी विप्रयोग स्वरूप हैं। इसमे धर्मी सयोग की निरन्तर स्थिति रहने के कारण उसमें वियोगजन्य दु ख नहीं रहता है। वह तन्मयता की परमानद अवस्था रूप है। यही 'स्वाधीना भक्ति'[2] है। स्वाधीना अर्थात् हृदय में प्रतिष्ठित हुए आनन्दकंद श्रीकृष्ण को ऐसे भक्त अपनी इच्छा से लीला स्वरूप बाहर भी प्रादुर्भूत करते हैं और भक्त अपनी इच्छा के अनुसार उस रूप का आतर बाह्य उभय प्रकारो से भोग करता रहता है। श्रीगोपजनो ने उद्धवजी को भक्तियोग का यह चमत्कार दिखलाया तभी वे ज्ञानी से मिटकर भक्त हुए और श्री गोपीजनो की प्रशसा करने लगे।[3]

सागर में यहाँ तक की किशोर लीला के पद मिलते हैं। आचार्य चरण ने इस माधुर्य भाव को नितान्त गोप्य रखने को कहा है। क्यो कि यह सर्वोत्तम रस प्रगट होने पर रसाभास रूप हो जाता है। इसीलिये पुष्टिमार्ग में इस रस को बाल लीला से आवृत रखा है। यही प्रणाली परमानददास ने भी अपने पदो मे अपनायी है। उनकी वार्ता प्रसग ५ में इस बात को स्पष्ट किया गया है :—"तब रामदास जी ने पूछी, जो परमानंददास व्रज में सगरो प्रेम व्रजभक्तन को है, सो श्रीनदराय जी गोपीजन, ग्वाल, सखान को। जातें सबतें श्रेष्ठ प्रेम किन को है। सो काहे ते, जो तिहारी बाल लीला में लगन बहुत है।"—भावप्रकाश वार्ता ५

परमानंददास के प्राय सभी पदो में आतर अथवा बाह्य-भाव प्रकार से बाल लीला, की छाया जरूर दिखाई देती है। उसका यही मर्म है। अस्तु

भ्रमर गीत में— ऐसे मे नदलाल रूप नैनन के आगे।
आइ गये छवि छाय बने पियरे उर बागे॥
उधो सो मुख मोरि के तिनही सो कहे बात।
प्रेम अमृत मुख ते स्रवत अंबुज नैन चुचात॥
तरक रसरीति की॥[4]

१—आतरतु परफलम्-सुबोधिनी
२—कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते-निबध
३—व्रजेस्थित व्रजे अस्मिन्–भागवत–सुबोधिनी
४—भ्रमर गीत—पद सख्या २६, ४२, ४३ नंददास—ग्रंथावली।

'सागर' में से कुमारिकाओ एव गोप-वधुओ के व्यसन के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

व्रतचर्या :— हरिजस गावत चली ब्रजसुन्दरी नदी जमुना के तीर।
लोचन लोल बाहु जोटी कर स्रवनन झलकत वीर॥
वेनी सिथिल चारु काधे परे कटि-पर अवर लाल।
हाथन लिये फुलन की डलिया उरमुक्ता मनि माल॥
जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास।
जैसे प्रीतम होय नदसुत व्रत ठान्यो यह आस॥
तब तें चीर हरे नदनदन चढि कदब की डार।
'परमान्द प्रभु' वर देवे कों उद्यम कियो हैं मुरार॥[1]

रस प्राप्ति के लिये वन गमन—

यातें माई भवन छाडि वन जैये।
अखि रस, कन-रस, वतरस, सबरस नद नदन पे पैये॥
कर पल्लव कर कघ बाहु धरि सग मिलि गुन गैये।
रास विलास विनोद अनुपम माधो के मन भैये॥
यह सुख सखीरी कहत न आवैं देखे ही दुख बिसरैये।
'परमानद स्वामी' को सगम भाग वडे ते पैये॥[2]

४—किशोर लीला —कृतार्थ हो जाने पर जीव प्रेम भक्ति के फल को प्राप्त होता है। अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति होने के पश्चात् जीव अपनी एकादश इन्द्रियो से हरि-रस वा कृष्ण रस का उपभोग करता है। एकादश इन्द्रियो से इस प्रकार कृष्ण रस का उपभोग होता है—

परम रस पायो ब्रज की नारि।
जो रस ब्रह्मादिक को दुर्लभ मो रस दियो मुरारि॥
दरसन सुख नैनन को दीनो रसना को गुन गान।
बचन सुनन श्रवनन को दीनो वदन अधर रस पान॥
आलिगन दीनो सब अगन भुजन दियो भुजबध।
दीनी चरम विविध गति रसकी नासा को सुख गध॥
दियो काम सुखभोग परम फल त्वचा रोम आनद।
ढिग बैठिवो नितवन लै उछग नदनद॥
मन को दियो सदा रस भावन सुख समूह की खान।
'रसिक' चरन रज ब्रज-जुवतिन ही अति दुर्लभ जिय जान॥

यह पद महाप्रभु श्री हरिराय चरण का है। इसमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी की उन कारिकाओ का फलितार्थ हैं जो वेणुगति' के अध्याय में आपने 'अक्षण्वता फलमिद' श्लोक पर लिखा है जैसा कि—"अक्षण्वतामिन्द्रियवता चक्षुष्मतां वा, इदमिति स्वहृदये मनोरथ प्रकारेण प्रतिभात"।[3]

१—परमानन्द सागर—पद ८००
२—परमानन्द सागर पद—२१०
३—सुवोधिनी द० स्क० अ का० ३

भगवता सह् सलापो दर्शन मिलितस्य च ।
आश्लेप: सेवन चापि स्पर्शश्चापि तथा विधि ॥
अधरामृत पानं च भोगो रोमोद्गमस्तया ।
तत्कूजितानां श्रवणमाघ्राण चापि सर्वत ॥
तदन्तिकगतिर्नित्यमेव तद्भावन सदा ।
इदमेवेन्द्रियवता फल मोक्षोपि नान्यथा ॥

इस प्रकार के रसानुभव से परे कोई फल नही है, मोक्ष भी नही है । यह श्रुति रूपा गोपीजन कहती हैं । यह परम फल हैं । इस परमफल के दो रूप हैं । एक वाह्य रमण । दूसरा आतर रमण । वाह्य रमण श्रीकृष्ण के स्वरूप से रमण सयोगफल रूप है । वह रास क्रीडा रूप में श्री गोपीजनो को प्राप्त हुआ । यही किशोर अवस्था की लीला हे । जिसमें रास, खण्डिता आदि के पदो का समावेश होता है । स्थानाभाव से उन पदो को यहाँ नहीं दिया जा रहा है । दूसरा आंतररमण परमफल[1] युगलगीत भ्रमरगीत में धर्मी रूप से मिलता है । यह धर्मी विप्रयोग स्वरूप है । इसमें धर्मी सयोग की निरन्तर स्थिति रहने के कारण उसमें वियोगजन्य दु ख नहीं रहता है । वह तन्मयता की परमानद अवस्था रूप है । यही 'स्वाधीना भक्ति'[2] है । स्वाधीना अर्थात् हृदय में प्रतिष्ठित हुए आनन्दकद श्रीकृष्ण को ऐसे भक्त अपनी इच्छा से लीला स्वरुप वाहर भी प्रादुर्भूत करते हैं और भक्त अपनी इच्छा के अनुसार उस रूप का आतर वाह्य उभय प्रकारो से भोग करता रहता है । श्रीगोपजनो ने उद्धवजी को भक्तियोग का यह चमत्कार दिखलाया तभी वे ज्ञानी से मिटकर भक्त हुए और श्री गोपीजनो की प्रशसा करने लगे ।[3]

सागर में यहाँ तक की किशोर लीला के पद मिलते हैं । आचार्य चरण ने इस माधुर्य भाव को नितान्त गोप्य रखने को कहा है । क्यो कि यह सर्वोत्तम रस प्रगट होने पर रसाभास रूप हो जाता है । इसीलिये पुष्टिमार्ग मे इस रस को वाल लीला से आवृत रखा है । यही प्रणाली परमानंददास ने भी अपने पदो में अपनायी है । उनकी वार्ता प्रसग ५ में इस वात को स्पष्ट किया गया है :—"तव रामदास जी ने पूछी, जो परमानददास व्रज में सगरो प्रेम व्रजभक्तन को है, सो श्रीनदराय जी गोपीजन, ग्वाल, सखान को । जातें सवतें श्रेष्ठ प्रेम किन को है । सो काहे ते, जो तिहारी वाल लीला में लगन वहुत है ।"—भावप्रकाश वार्ता ५

परमानंददास के प्राय सभी पदो में आतर अथवा वाह्य-भाव प्रकार से वाल लीला, की छाया जरूर दिखाई देती है । उसका यही मर्म है । अस्तु

भ्रमर गीत में— ऐसे मे नदलाल रूप नैनन के आगे ।
आइ गये छवि छाय वने पियरे उर वागे ॥
उधो सो मुख मोरि के तिनही सो कहे वात ।
प्रेम अमृत मुख ते स्रवत अवुज नैन चुचात ॥
तरक रसरीति की ॥[4]

१—आतरतु परफलम्-सुवोधिनी

२—कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते-निवध

३—व्रजेस्थित व्रजे अस्मिन्—भागवत—सुवोधिनी

४—भ्रमर गीत—पद सख्या २९, ४२, ४३ नंददास—ग्रथावली ।

तथा— इहि विधि ह्वै आवेस परम प्रेमहि अनुरागी ।
और रूप पिय चरित तहाँ सब देखन लागी ।।
रोम रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय ।
तिनके भूत भविष्य को जानत कौन दुराय ।।
रगीली प्रेम की ।।

देखत इनको प्रेम नेम ऊधो को भाज्यो ।
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यो ।।
मन में कहे रज पाँय को लै माथे निज धारि ।
परम कृतारथ ह्वै रह्यौ त्रिभुवन आनद वारि ।।
बदना जोग ए ।।

४—सागर के दो विभाग

'सागर' मे दो विभाग हैं । एक वर्षोत्सव का, दूसरा नित्य लीला क्रम का । वर्षोत्सव के क्रम में भगवान् के जन्म से लेकर भ्रमरगीत पर्यन्त की लीलाओ के पदो का सग्रह मिलता है । वह भागवत की लीला-क्रम के अनुसरण रूप है । 'सागर' की कई लीलाएँ भागवत में प्रकट रूप से नही है जैसे कि दान लीला खडिता आदि । उसके सकेत भागवत में अवश्य मिलते हैं । यह एक अलग और विस्तृत विषय होने से यहा उस पर नही लिखा जा रहा है । कुछ लीलाएँ ऐसी भी हैं जिनका उल्लेख सकेत रूप से भी श्रीभागवत मे नही है । वे अन्य पुराणादिको की हैं । जैसे कि पर्व, त्यौहार (पतग उडायवे आदि की लीला)

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने प्रमाण चतुष्टय-वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवत की समाधि-भाषा से अविरुद्ध सभी प्रमाण और लीलाओ को स्वीकार किया है, इसलिये उनका गान 'सागर' मे भी पाया जाता है । ये विशेषत पुष्टि मार्ग की सेवा-प्रणाली से सम्बन्ध रखने वाली है ।

५—सेवा का रूप

पुष्टि मार्ग की सेवा प्रणाली में कृष्ण की दिनचर्या और ब्रज के बार-त्यौहार और पर्व आदि का समावेश किया गया है । मगला से लेकर शयन पर्यन्त की सेवा कृष्ण की दिनचर्या की भावना से ऋतु-अनुसार की जाती है और उत्सव, त्यौहार पर्व आदि की सेवा अन्य शास्त्रीय एव ब्रजीय लोक भावनाओ के अनुसार होती है । इस प्रकार सेवा मे भागवत के दशमस्कध की लीलाओ के साथ अन्य शास्त्र पुराणो और लोक-भावनाओ का भी समावेश किया गया है । तदनुसार 'सागर' में भी पद मिलते हैं ।

भागवत की भक्ति प्रेमलक्षणा है । 'भक्ति' शब्द का निर्माण 'भज्' धातु और 'क्तिन्' प्रत्यय से हुआ है । 'भज्धातु सेवायाम्' इस सूत्र के अनुसार और 'क्तिन्' प्रत्यय भाववाची होने से भक्ति' का अर्थ होता है—भावपूर्वक की गई परिचर्या । 'भाव' देव विषयक स्थायी रति को कहते हैं । अत श्रीकृष्ण की स्थायी रति पूर्वक भावना युक्त जो परिचर्या की जाय वही 'सेवा' कही जाती है । इसीलिये गोपी जनो की प्रेम-भावना के अनुसार श्रीकृष्ण की सेवा का पुष्टिमार्ग में निर्माण हुआ है । उस सेवा की समस्त प्रक्रियाएँ प्रेम प्रधान हैं । उसमे बाल लीला कुमार लीला, पौगड लीला और किशोर लीलाओ की भावना और उत्सव आदि का भी समावेश हुआ है । सक्षिप्त में कहा जाय तो पुष्टीमार्गीय सेवा ही 'सागर' स्वरूप है । और वह

'सागर' भागवत स्वरूप है। अर्थात् भागवत की भक्ति का तत्व रूप और कर्म रूप का सयुक्त व्यवहार रूप पुष्टिमार्गीय सेवा है और उसी के अनुसार 'सागर' में वर्षोत्सव और नित्य लीला क्रम पाया जाता है।

पुष्टीमार्गीय सेवा में 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह रूप भक्ति रही है। अत उस भगवान् के भक्ताधीनत्व रूपो की चार जयतिया वामन, नृसिंह राम और कृष्ण की जयतियाँ—मान्य हुई हैं। इसलिये 'सागर' मे उन चारो के पद और माहात्म्य आदि के पद भी मिलते हैं। पुष्टिमार्गीय सेवा भागवत के भक्ति सिद्धान्तो का प्रतीक है। उस पर जितना लिखा जाय कम ही रहेगा। इसीलिये विस्तार भय से यहाँ 'सागर' पर अधिक विवेचन नही किया गया है।

वार्ता मे 'सागर' का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा कि—

१—"और सूरदास को जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो—'आवो सूर सागर! सो ताको आसय यह है, जो समुद्र में सगरो पदार्थ होत है। तैसे ही सूरदास ने सहस्त्रावधि पद किये हैं जामें ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति भेद अनेक भगवद् अवतार सो तिन सबन की लीला को वर्णन कियो है—" सूरदास की वार्ता प्रसग ३।

२—"सो ता समय श्री गुसाईं जी आपु उन वैष्णवन के आगे यह वचन श्रीमुख सो कहे, जो ये पुष्टिमारग में दोइ 'सागर' भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाध रस भगवल्लीला रूप जहा रत्न भरे हैं।"

परमानन्ददास की वार्ता प्रसग ७

प्रस्तुत प्रकाशित 'सागर' में पदो के क्रम में विशेषत 'नित्यसेवा' के पदो के क्रम मे छापने में थोडी गडबड हुई है। इसलिये क्रम पर यहा विवेचन नही किया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि भागवतीय लीला का क्रम 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्व तोऽधिक स्नेह की भक्ति की व्याख्या के पूर्ण अनुकूल 'सागर' में मिलता है उसी प्रकार 'नित्य सेवा' का क्रम भी इसमें ऋतु, समय और दिनचर्या के साथ चारो वर्ण के पर्व त्यौहार के सम्पूर्ण अनुकूल है। उस पर फिर कभी विस्तृत प्रकाश डाला जायगा।

श्री भाई शुक्ल जी ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक 'सागर' के पदो का सग्रह और सकलन कर हिन्दी साहित्य जगत् की बहुमूल्य सेवा की है। अभी 'सागर' के कुछ पद इस सग्रह में छूट गये हैं आशा है द्वितीय आवृत्ति मे वे भी आ जायेंगे

कविवर परमानन्ददास और उनका साहित्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्य-युग अथवा भक्ति-काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। इस युग में सगुण भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अनुपम थी। साहचर्य और सौंदर्य से उत्पन्न प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियो के समाधिमय क्षणो में जिन, चिरतन मानवीय रहस्यो का उद्घाटन और उनकी वर्णमय अभिव्यक्ति जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर सभव हो सकी। शृङ्गार-भावना और उसकी अभिव्यक्ति को सगुण शक्ति के पवित्र प्राचीर मे सुरक्षित रखने का श्रेय जितना कृष्ण-भक्त कवियो को है उतना अन्यभक्त कवियो को नही। इस युग के कृष्ण-भक्त कवियो ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व-साहित्य में समादरणीय है। उनमें भी 'अष्टछाप' के कवियो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

ये 'अष्ट काव्य वारे' आठो सखा "अष्टछाप" के नाम से साहित्य-जगत् में प्रसिद्धि मे आए। परन्तु इनकी कीर्तन-सेवा के कारण पुष्टि-सप्रदाय इनसे बहुत पहले से परिचित चला आता था। अष्टछाप में भी आचार्य वल्लभ के प्रथम चार शिष्य 'अष्टछाप' की स्थापना (सवत् १६०२) के ४०-४५ वर्ष पूर्व से ही अर्थात् लगभग सवत् १५५५ से ही श्री गोवर्धननाथ जी के समक्ष कीर्तन-सेवा के रूप में अपना सरस मधुर काव्य उनके चरणो में निवेदित करते चले आ रहे थे और लगभग सवत् १६४२ तक इन महानुभावों की कीर्तन-सेवा का क्रम चलता रहा। इस प्रकार लगभग सवत् १५५५ से सवत् १६४२ तक का लगभग ८७ वर्षों का युग एक ऐसे विशाल भाव-रत्नार्णव का मर्जन कर गया जिसे हिन्दी साहित्य के भक्ति-युग की 'दैवी घटना' अथवा 'चमत्कार' ही समझना चाहिये। क्योकि न तो उससे पूर्व ही, और न उसके पश्चात् ऐसी किसी सुशृखलित परम्परा के दर्शन हो सके जिसमें भक्ति की तन्मयता, भावो की विभोरता, साकार भावना की दृढता और सगीत की सरसता के साथ साथ अभिव्यक्ति की गभीरता और भगवत्सेवा की निश्छल परायणता मिलती हो। इस काल में जीवन का दर्शन तो मिलता है परन्तु भगवान् के चरणो में पूर्ण विनियोग के साथ। प्राकृत-जन-गुण-गान की दुर्गन्ध से दूर, भगवल्लीला की सरस माधुरी से पूर्ण व्रज भाषा के इन भक्त कवियो के पदो मे जन-मन को तन्मय कर देने की कितनी प्रवल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सप्रदाय के तत्कालीन बडे-बडे आचार्य चरण जो कि सस्कृत के उद्भट विद्वान् थे, इन पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसधान तक खो बैठते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने "पृथ्वी पर्यटन" करते हुए जब पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार किया और जीवो को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान किया तब श्री गिरिराज मे प्रकट हुए श्रीनाथ जी के स्वयभू स्वरूप की सगीत सेवा अपने प्रमुख चार शिष्यो—सूरदास परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास—को सौंपी[१] और सवत् १५८७ मे उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त जब उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी सम्प्रदाय की आचार्य-गद्दी पर अभिषिक्त हुए तो श्रीनाथ जी की सेवा में और भी अधिक सुव्यवस्था

१ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता पृष्ठ १६

अष्टछाप के द्वितीय सागर

भक्त प्रवर

प्राकट्य
(मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, स० १५५०)

नित्य लीला प्रवेश
(भाद्रपद कृष्णा नवमी, स० १६४१)

(मूल प्रति श्री परीख जी के सौजन्य से)

कविवर परमानन्ददास और उनका साहित्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्य-युग अथवा भक्ति-काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। इस युग मे सगुण भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अनुपम थी। साहचर्य और सौंदर्य से उत्पन्न प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियो के समाधिमय क्षणो में जिन, चिरतन मानवीय रहस्यो का उद्घाटन और उनकी वर्णमय अभिव्यक्ति जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर सभव हो सकी। शृङ्गार-भावना और उसकी अभिव्यक्ति को सगुण शक्ति के पवित्र प्राचीर में सुरक्षित रखने का श्रेय जितना कृष्ण-भक्त कवियो को है उतना अन्यभक्त कवियो को नही। इस युग के कृष्ण-भक्त कवियो ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व-साहित्य मे समादरणीय है। उनमे भी 'अष्टछाप' के कवियो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

ये 'अष्ट काव्य वारे' आठो सखा "अष्टछाप" के नाम से साहित्य-जगत् मे प्रसिद्धि मे आए। परन्तु इनकी कीर्तन-सेवा के कारण पुष्टि-सप्रदाय इनसे बहुत पहले से परिचित चला आता था। अष्टछाप मे भी आचार्य वल्लभ के प्रथम चार शिष्य 'अष्टछाप' की स्थापना (सवत् १६०२) के ४०-४५ वर्ष पूर्व से ही अर्थात् लगभग सवत् १५५५ से ही श्री गोवर्धननाथ जी के समक्ष कीर्तन-सेवा के रूप में अपना सरस मधुर काव्य उनके चरणो में निवेदित करते चले आ रहे थे और लगभग सवत् १६४२ तक इन महानुभावों की कीर्तन-सेवा का क्रम चलता रहा। इस प्रकार लगभग सवत् १५५५ से सवत् १६४२ तक का लगभग ८७ वर्षो का युग एक ऐसे विशाल भाव-रत्नार्णव का सर्जन कर गया जिसे हिन्दी साहित्य के भक्ति-युग की 'दैवी घटना' अथवा 'चमत्कार' ही समझना चाहिये। क्योकि न तो उससे पूर्व ही, और न उसके पश्चात् ऐसी किसी सुशृंखलित परम्परा के दर्शन हो सके जिसमें भक्ति की तन्मयता, भावो की विभोरता, साकार भावना की दृढता और सगीत की सरसता के साथ साथ अभि-व्यक्ति की गभीरता और भगवत्सेवा की निश्छल परायणता मिलती हो। इस काल में जीवन का दर्शन तो मिलता है परन्तु भगवान् के चरणो में पूर्ण विनियोग के साथ। प्राकृत-जन-गुण-गान की दुर्गन्ध से दूर, भगवल्लीला की सरस माधुरी से पूर्ण व्रज भाषा के इन भक्त कवियो के पदो मे जन-मन को तन्मय कर देने की कितनी प्रबल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सप्रदाय के तत्कालीन बडे-बडे आचार्य चरण जो कि सस्कृत के उद्भट विद्वान् थे, इन पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसधान तक खो बैठते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने "पृथ्वी पर्यटन" करते हुए जब पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार किया और जीवो को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान किया तब श्री गिरिराज मे प्रकट हुए श्रीनाथ जी के स्वयभू स्वरूप की सगीत सेवा अपने प्रमुख चार शिष्यो—सूरदास परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास—को सौंपी[1] और सवत् १५८७ मे उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त जब उनके द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी सम्प्रदाय की आचार्य-गद्दी पर अभिषिक्त हुए तो श्रीनाथ जी की सेवा में और भी अधिक सुव्यवस्था

१ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता पृष्ठ १६

हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे भगवान के अर्चा विग्रह की सेवा के प्रति बडी लगन और रुचि थी। सम्प्रदाय मे उनके विषय मे प्रसिद्ध है—

सेवा की यह अद्‌भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौ राखै प्रीति[1] ॥

अत उन्होने भगवान की नित्य सेवा के तीन अङ्ग किये—

१ राग
२ भोग
३ शृङ्गार

इनमें राग अथवा सगीत की सेवा के लिए अपने पूज्य पिता के चार शिष्यो और चार अपने शिष्यो को सम्मिलित कर 'अष्टछाप' की स्थापना की[2]। अष्टछाप के यही आठ कवि महानुभाव सम्प्रदाय मे 'अष्टसखा' अथवा 'अष्ट कीर्तन वारे' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' आदि नामो से प्रसिद्ध हुए। स्वय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप शब्द का कही भी व्यवहार नहीं किया है। सम्प्रदाय में इन्हे लगभग १६९० तक 'अष्ट काव्य वारे' पुकारा जाता रहा[3]। सवत् १६९७ की प्राचीन वार्ता प्रति मे सर्वप्रथम 'अष्टछाप' शब्द का प्रयोग मिलता है। अत अनुमान किया जाता है कि सर्वप्रथम इस शब्द को लिखित रूप प्रभु चरण गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने दिया और इस प्रकार यह शब्द सम्प्रदाय द्वारा ही प्रचलित किया गया।

'अष्टछाप' मे तात्पर्य था आठ महानुभावो को सम्प्रदाय की विशिष्ट कीर्तन सेवा पद्धति से मुद्राङ्कित अथवा चिह्नित करना और आगे चलकर इसका परिणाम यह हुआ कि पुष्टि सम्प्रदाय की अपनी एक विशिष्ट कीर्तन शैली बन गई, जिसके अतिरिक्त प्रभु को कीर्तन सेवा स्वीकार नही समझी जाती और न इन विशिष्ट कीर्तन कारो के अतिरिक्त अन्य गायको के पद ही निवेदन किए जाते हैं। स्वय गोस्वामी विट्ठलनाथ जो उच्चकोटि के काव्य-मर्मज्ञ एव सगीतज्ञ थे। अत अष्टछाप की स्थापना में उनका उद्देश्य साहित्य और सगीत के सुन्दर समन्वय के साथ कीर्तन भक्ति की सुरसरि से समूचे भरत खण्ड को आप्लावित करना था।

अष्टछाप के ये कवि गण जिन्हे भगवान् के प्रति सख्यासक्ति के कारण 'अष्टसखा' कहा जाता रहा है, मुख्य रूप से भक्त (उपासक), कवि, सगीतज्ञ एव कीर्तनकार थे। ये लोग भगवल्लीला गान को अपना लक्ष्य मानकर भगवत्प्रेम की शाश्वत भावना मे निश्चिन्त एक ऐसे दिव्य-लोक मे विचरण किया करते थे जो केवल अनुभव गम्य है। इनके पदो के आध्यात्मिक प्रभाव ने धर्म, साहित्य और कला की त्रिवेणी से आर्यावर्त को पदे-पदे प्रयाग बना दिया[4]।

खेद का विषय है कि जिन भक्त कवियो का साहित्य सगीत इतना गौरवमय हो उन सब का सुशृखलित जीवन-वृत्त और प्रामाणिक काव्य-सग्रह उपलब्ध नही। अष्टछाप के मूर्धन्य भक्त एव कीर्तनकार महाकवि सूरदास जी को छोडकर लगभग सभी कवियो की प्रामाणिक जीवनी और उनके काव्य की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से समीक्षा नही हो सकी। अत 'सूर की टक्कर' के कहे जाने वाले सप्रदाय के 'दूसरे सागर' परमानन्ददास जी की प्रामाणिक जीवनी और उनके काव्य की विस्तृत समीक्षा की आवश्यकता का अनुभव करके

१ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ५
२ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ७
३ गोकुलनाथ जी के वचनामृत स० १६९६
४ विट्ठलेश चरितामृत पृ० ४

प्रस्तुत प्रयास किया गया है। आधुनिक ममीक्षा पद्धति में प्रामाणिक जीवनी देने की दो पद्धतियाँ हैं —

१ अन्तस्साक्ष्य।
२ वाह्यमाक्ष्य।

अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत कवि का काव्य और उसमे की गई आत्म-चर्चा आती है। बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत अन्य समकालीन महानुभावो की उस कवि के विषय में की गई चर्चा, उल्लेख एव अन्य कवियो द्वारा लिखे गये ग्र थ आदि आते हैं। इमी में इतिहास, समकालीन राजकीय प्रमाणों को भी रखा जाता है। अत. उक्त दोनो पद्धतियो की कसौटी पर सभी अष्टछापी महानुभावो का जीवनवृत्त और काव्य कसा जाना चाहिए। क्योंकि इन आठों ही महानुभावो का त्रिविध महत्त्व है:—

१ साम्प्रदायिक महत्त्व।
२ साहित्यिक महत्त्व।
३ कलात्मक महत्त्व।

साम्प्रदायिक महत्त्व की दृष्टि से अष्टछाप के आठो कवि भगवान् श्री गोवर्धननाथ जी के नित्य सखा एव उनकी नित्य लीला के सहचर हैं और रात्रि में वे ही श्री स्वामिनी जी की सखियाँ हैं। इन सव की इस भावनात्मक महत्ता की चर्चा सप्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वार्ता साहित्य' पर लिखे गए हरिराय जी के टिप्पण 'भाव प्रकाश' में मिलते हैं। 'वार्ता साहित्य' सप्रदाय के विशाल प्रासाद के आधार शिला-खण्ड हैं जिनके आद्य प्रणेता स्वयं आचार्य वल्लभ[1] वक्ता श्री दामोदर दाम हरसानी, विकासकर्ता गोस्वामी विट्ठलनाथ जी, प्रचारक गोवर्धन दास,[2] लेखवद्ध करने वाले श्रीकृष्ण भट्ट[3] एव चौरासी तथा दो सौ वावन की सख्याओ में वर्गीकृत करके उनको वर्तमान विशद रूप में प्रस्तुत करने वाले प्रभु चरण गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी[4] और इन समग्र वार्ताओ पर भावात्मक टिप्पण देने वाले सप्रदाय के एक मात्र मर्मज्ञ प्रभु चरण हरिराय जी है। अत वार्ताओं का महत्त्व सुस्पष्ट है। उनमें अष्टसखाओ की चर्चा वडे आदर और सम्मान के साथ की गई है। उन्हे श्री गोवर्धननाथजी के नित्य महचर होने का गौरव प्राप्त है। श्री गिरिराज उनकी नित्य लीला भूमि है। श्री गिरिराज स्वय श्रीकृष्ण का ही पर्वत रूप है। भागवत[5] एव गर्ग सहितादि[6] पुराणो में उसकी विशद चर्चा मिलती है। वह पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का 'आतपत्र'[7] है और समस्त तीर्थमय है। श्री गिरिराज के नित्य निकुञ्ज के आठ द्वारो पर आठ सखा स्थित रहकर भगवान् की नित्य सेवा में तत्पर रहते हैं। इन मखाओ की चर्चा भागवत में इस प्रकार आई है.—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो सखा।
सुवलस्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णेदमब्रुवन्॥ भाग १०॥१५

१ वार्ता साहित्य मीमासा ले० श्री परीख जी—पृष्ठ २
२ २५२ वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना) पृष्ठ १०५
३ ,, ,, ,, प्रस्तावना पृष्ठ ५१
४ विट्ठलेशचरितामृत
५ भागवत १०। २५। ३५
६ गर्गसहिता गिरिराज खंड अ० १ श्लो० १२
७ ग० सं० गिरिराज ख० अ० ७ श्लो० १

यहाँ 'स्तोक कृष्णाद्या.' मे अन्य सखाओ का भी समावेश है। एक और स्थान पर श्रीकृष्ण इन सखाओ का नाम ले लेकर स्वय पुकारते हैं।

हे स्तोक कृष्ण ! हे अशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ।
विशालर्षभ ! तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ।। आदि । भाग० १० । २२ । ३१, ६२

इन दस ग्यारह सखाओ की चर्चा गर्गसहिता में धेनुकासुर-वध प्रसग में पृथक्-पृथक रूप में की गई है।

इन मूल सखाओ की भावना को सर्वप्रथम श्री द्वारकेश जी महाराज ने, जो सप्रदाय में बहुत बडे आचार्य हुए हैं, अष्टछापी महात्माओ पर आरोपित किया तभी से उनका यह छप्पय सप्रदाय में बडा महत्त्वपूर्ण माना जाता है—

सूरदास सो तो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो ।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीत स्वामी सुबल बखानो ।।[1] आदि

द्वारकेश जी के द्वारा इन अष्टसखाओ की महिमा के विस्तार से न केवल उनके व्यक्तित्व को ही गौरव मिलता है, अपितु सम्प्रदाय का भक्त इन महानुभावों के पदो में गीता के स्वाध्याय जैसी शान्ति एव समाधान प्राप्त करता है। ये सखा आगे चलकर भगवान् के विभिन्न अङ्ग[2], उनके विविध शृङ्गार, के रूप में भी माने गए और इस प्रकार सम्प्रदाय में उनके प्रति विविध भावनाएँ प्रचलित हुईं।

सखाओ को साहित्यिक दृष्टि से भी बहुत बडा महत्त्व एव गौरव प्राप्त है। 'नरगिरा' ब्रज भाषा को भगवत् गुणगान के माध्यम से 'सुरगिरा' के समादरणीय सिंहासन पर समासीन कराने वाले इन महानुभावो ने वर्ण्य की चिंता की, वर्णन की नही, वस्तु को देखा, शैली को नही। अत, शारदा 'वाग्वश्या भार्या' की भाँति बद्ध कर होकर किंवा 'दारुयोषित्' की भाँति सूत्र बद्ध होकर इनके अँगुलि निर्देश पर नृत्य करती थी और सम्प्रदाय के दो सखा सूर और परमानन्द तो साक्षात् 'लीला सागर' ही थे। जिनकी प्रशसा स्वय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने श्रीमुख से की है और तथ्य यह है कि वात्सल्य एव शृङ्गार के मुक्तक गेय पदो के क्षेत्र में इनके टक्कर का कोई अन्य कवि नही[3] हो सका।

लगभग सभी अष्टछापी महानुभावो के भाव-जगत् की कोमलता, रमणीयता और तन्मयता एक दिव्य लोक की सृष्टि करने वाली होती थी। जिसका आनन्द उनके साहित्य का अनुशीलन करने वाला श्रद्धालु स्वाध्यायी ही जान सकता है।

साहित्यिक महत्त्व के अतिरिक्त अष्टछाप के भक्त कवियो का कलात्मक महत्व भी है। वे सभी उच्चकोटि के कीर्तनकार कलाविद् सगीतज्ञ एव रसिक शिरोमणि थे। आज का हिन्दी समाज जब अष्टछाप के काव्य वैभव से सुपरिचित भी नही हुआ था, उससे पूर्व हमारा सगीतज्ञ समाज उनके पद माधुर्यार्णव में चिरकाल से अवगाहन करता चला आ रहा था। भारतीय सगीत की ध्रुपद एव धमार शैली जिसे देशी सगीत कहा जाता है के विकास और वृद्धि का श्रेय इन्हीं अष्टसखाओं को है। इन भक्त कवियो ने कीर्तन-सगीत की एक ऐसी विशिष्ट पद्धति को जन्म दिया जो पुष्टि मार्ग की अपनी मर्यादा बन गई।

---

१ ग० स० वृन्दावन खण्ड—अ० १२ श्लो० १३, १४, १५
२ श्री गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता—पृ० ३१
३ अष्टछाप भूमिका—लेखक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

अष्टमखाओं के उपर्युक्त त्रिविध महत्व के प्रतिपादन के उपरान्त यहां पर अपने प्रबन्ध के प्रकृत विषय अष्टछापके 'दूसरे सागर' परमानन्द दास जी की चर्चा की जाती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इन्हे 'लीला सागर' की उपाधि दी थी अत इन्हें सूर के समकक्ष माना गया है। खेद की बात है कि सूर और उनके साहित्य के अध्ययन के लिए जितने प्रयास हुए उनसे आधे भी परमानन्द दास जी और उनके साहित्य के लिए नही हुए। अत उनकी विस्तृत प्रामाणिक जीवनी और उनके अधिकाधिक काव्य सग्रह की आवश्यकता बनी हुई है।

कवि का जीवनवृत्त

सतों एव भक्त कवियो ने 'स्वात्म' को भी 'प्राकृत जन' की परिधि में ही रखा था। अत आत्म-चर्चा करके उन्होने कभी भी 'गिरा' को 'सिर धुनने' का अवसर नही दिया। फिर 'उष्ण भक्ति'—साधना के पावन यज्ञ-कुण्ड में गाढी त्रिविध एपणाओं की आहुति देकर 'दासोऽहम्' के प्रथम सोपान से 'सोऽहम्' के अन्तिम सोपान की ओर प्रयत्नशील भावुक भक्त कवियों को आत्म-विज्ञापन का अवकाश कहाँ था। अध्यात्म प्रधान भारतीय सस्कृति में यशोलिप्सा जैसी भौतिक वस्तु का स्थान भी नहीं है। अत 'विधि भवन' को छोडकर आने वाली हसवासिनी वीणा पाणि के श्रम के परिहार के लिए भारतीय भक्तो ने भक्ति-मदाकिनी को सदैव प्रस्तुत रखा है। कविवर परमानन्ददास जी भी उक्त सिद्धान्त के अपवाद नहीं हैं। कवि ने अपने चरम दैन्य में केवल भक्ति याचना के अतिरिक्त लेशमात्र भी आत्म-चर्चा नही की है। अत उसके काव्य पर बहुत आँख गढाने के बाद ही उनके स्वभाव एव उनकी आत्म-स्थिति के विषय में कुछ पता चलता है। यो भी कवि का जीवन घटना घटाटोपो से संकुल नहीं था। अत आत्म-चर्चा के लिए किसी प्रेरणा विशेप कारण भूता नही थी। अत उसके जीवन-वृत्त के लिए जिज्ञासु को उन्ही दो प्रकार की सामग्री पर निर्भर रहना पडता है।

(१) अन्तस्साक्ष्य—मे कवि के पद एव उसका काव्य आता है। ये पद ही उसकी सत्ता एव व्यक्तित्व के प्रमाण हैं।

(२) वाह्यस्साक्ष्य—साम्प्रदायिक-साहित्य जिसके अन्तर्गत 'वार्ता साहित्य' एव सम्प्रदायो के आचार्यो द्वारा की गई चर्चा एव सम सामयिक उल्लेखादि आते हैं।

कवि के पद अथवा काव्य जो उसकी सत्ता अथवा व्यक्तित्व के प्रमाण स्वरूप हैं, 'परमानन्द सागर' अथवा 'परमानन्ददास जी कौ पद' कहे जाते हैं। ध्यान में रखने की बात है कि कवि मुख्य रूप से कीर्तनकार था, अत. एक कीर्तनिये की भाँति उसका परिग्रह केवल एक तानपूरा ही था, लेखनी ससिपात्रादि नही। अत श्रुति परम्परा से भगवन्मन्दिरो में गाए जाने वाले पद जो 'परमानन्द सागर' के नाम से उसके भक्त एव अन्य स प्रदायी भक्तों ने लिपि बद्ध कर लिये वही उसकी साक्षी देने वाले हैं। उसके पदो के सग्रह को 'परमानन्द सागर' नाम देने वाले भी सम्प्रदाय के भक्त ही हैं। वह स्वय नही। क्योकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उसे लीला सागर' पुकारा था। अत उसकी रचना 'परमानन्द सागर' के नाम से अभिहित की गई, और यही उसकी प्रामाणिक रचना सिद्ध होती है। उसके आधार पर परमानन्ददास जी के जीवन के कतिपय तथ्य इस प्रकार उपलब्ध होते हैं —

१—प्रारम्भ में वे एक जिज्ञासु भक्त थे।[१]

---

१ माई को मिलिवै नन्द किसोरै।
- एक बार को नैन दिखावै मेरे मन के चोरै ॥१॥

२—वे महाप्रभु वल्लभ की शरण में आये और आचार्य तथा ठाकुर जी में अभेद बुद्धि रखते थे।[1]

३—माता पिता से उन्हे मोह नही था।[2]

४—उनकी आर्थिक स्थिति प्रारम्भ में अच्छी नही थी। बाद में उन्हे आर्थिक सौकर्य हो गया था।[3]

५—ब्रज के प्रति उन्हें अपार प्रेम था।[4]

६—उनका व्यक्तित्व शील सम्पन्न, सुन्दर, बलिष्ठ एव आकर्षक था।[5]

जागत जाम गिनत नहिं खूटत क्यो पाऊँगी भोरै।
सुनिरी सखी अब कैसे जीजै सुनि तमचुर खग रोरै ॥२॥
जो पै सत्य प्रीति अन्तरगति जिनि काहुऽबनिहोरै।
'परमानन्द' प्रभु आन मिलेंगे सखी सीस जिनि फोरै ॥३॥ प० सं० ५४३

१ स्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।
बह्यौ जात मोहि राखि लियो है पिय सग हाथ गहायो ॥
दु सग सग सब दूरि किये हैं, चरनन सीस नवायो ॥
'परमानन्ददास' को ठाकुर, नैनन प्रगट दिखायो ॥ प० स० ८५२

प्रात समै रसना रस पीजै।

× × ×

परमानन्ददास को ठाकुर जे वल्लभ ते सुन्दर स्याम ॥ प० स० ५७२

२ तुम तजि कौन सनेही कीजे।

× × ×

यह न होई अपनी जननी तें पिता करत नहीं ऐसी
बन्धु सहोदर सोउ न करत हैं मदन गोपाल करत हैं जैसी ॥

३ जाके दिये बहोरि नहिं जाँचे दुख दरिद्र नहिं जानै ॥ प० स० ८५६

तथा

ताहि निहाल करै परमानन्द नैकु मौज जो आवै ॥

४ जाइए वह देस जहँ नन्द नन्दन भैटिए। प० स० ८४६

तथा

यह माँगौ गोपीजन वल्लभ।
मानुष जन्म और हरि की सेवा ब्रज बसिवौ दीजै मोहि सुल्लभ ॥

५ ब्रज बसि बोल सवन के सहिए।
जो कोऊ भली बुरी कहै लाखै, नन्द नदन रस लहिए ॥ प० स० ८३५

तथा

लगै जो स्री वृन्दावन रग
देह अभिमान सबै मिटि जैहै, अरु विषयन को सग। प० स० ८३७

तथा

वाढ्यौ है माई माधौ सौं सनेहरा।
अब तो जिय ऐसी बनि आई कियौ समर्पन देहरा ॥ प० स० ५६८
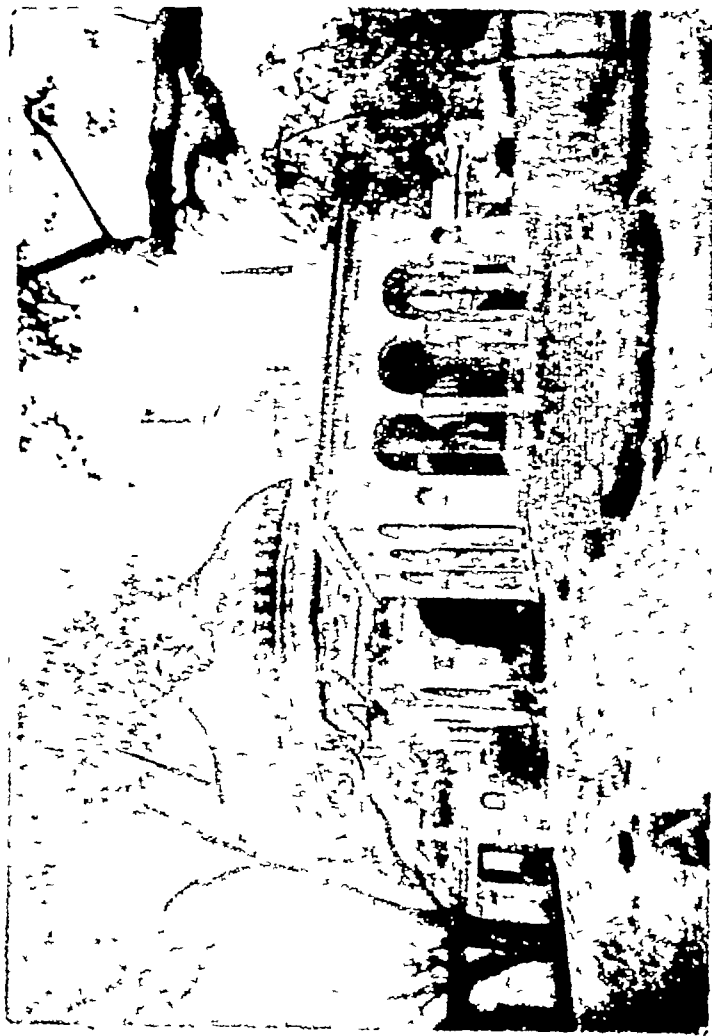
भारद्वाज आश्रम का वह भाग जहाँ भक्त कवि परमानददास जी पुष्टिमार्गीय दीक्षा से पूर्व कीर्तन किया करते थे।
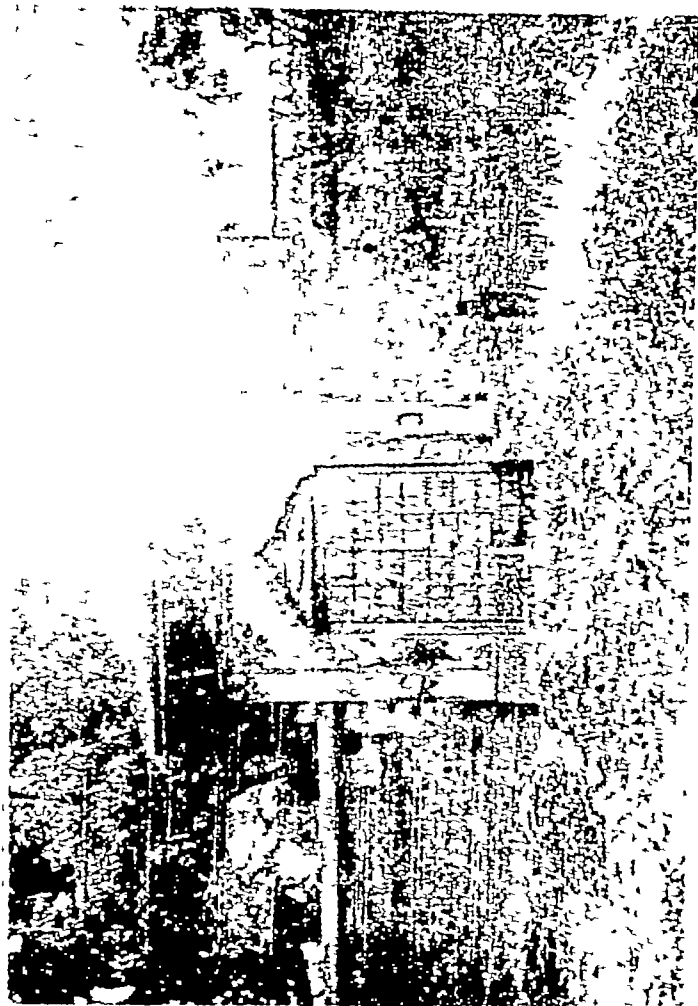
अलकंपुर (अडंल) में महाप्रभु जी की वंठक का सिंह द्वार

७—भगवान की बाल, पौगण्ड और किशोर लीला में उनकी चरम आसक्ति थी ।[1]

८—वे आचार्य के नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त तक उपस्थित थे, और उन्होने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के उपस्थिति मे अपनी इह लीला सवरण की ।[2]

९—उनकी भक्ति का आदर्श 'गोपी भाव' था ।[3]

पदो के अन्तस्साक्ष्य के आधार पर जीवनी सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्यो के अतिरिक्त और कुछ भी उपलब्ध नहीं होता ।

बाह्यस्साक्ष्य के अन्तर्गत निम्नाकित सम्प्रदाय एव सम्प्रदायेतर ग्रन्थो का समावेश किया जाता है । जिनसे परमानन्ददास जी के जीवन-वृत्त के विषय में कतिपय तथ्य उपलब्ध होते हैं । वे ग्रथ हैं—

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता ।

२—भाव प्रकाश ।

३—सस्कृत वार्ता मणिमाला ।

४—अष्टसखामृत ।

५—वल्लभ दिग्विजय ।

---

१ सुन्दर आउ नन्दजू के छगन मगनियां ।
बाल— × × ×
लाल गोपाल लाडिले मेरे सोहत चरन पैंजनियां ।
परमानन्ददास के प्रभू की, यह छवि कहत न वनियां ।। प० स० ६६
तथा
पौगंड—लाल कौं भावें गुड गांडे अरु वेर ।
और भावें याहि सेंद कचरिया लाओ ववा बन हेर ।।
और भावें याहि गैय्यन को वसिबो सग सखा सब टेर ।
परमानन्ददास कौ ठाकुर, पिल्ला लायौ घेर ।। प० स० १०३
किशोर—
कुञ्ज भवन में पौढे दोऊ ।
× × ×
रस मे मातें रसिक मुकुट मनि 'परमानन्द' सिंध द्वारे होऊ ।। प० सं० ६६४

२ प्रात समैं उठ करिये श्री लछमन सुत गान ।
× × ×
स्री घनस्याम पूरनकाम, पोथी मे ध्यान ।
पाण्डुरंग विट्ठलेस, करत वेद गान ।
परमानन्द निरख लीला थके सुर विमान । प० स० ५७१

३ गोपी प्रेम की ध्वजा ।
तथा
हरि सौं एक रस प्रीति रहीरी ।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपनो नेम ब्रत लै निवहीरी ।। प० स० ४२१
तथा
कौन रस गोपिन लीनो घूंट । प० स० ७२२

६—बैठक चरित्र ।

७—प्राकट्य सिद्धान्त ।

८—वैष्णवाह्निक पद ।

९—श्री गोकुलनाथ जी कृत स्फुट वचनामृत ।

१०—श्री द्वारकेश जी कृत चौरासी धौल ।

११—अन्य साम्प्रदायिक भक्त जैसे कृष्ण दास आदि की उक्तिया (जैसे वसन्तोत्सव वाला पद) ।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक सामग्री के अतिरिक्त निम्नाकित धार्मिक ग्रथ और है जिनमें परमानन्ददास जी की चर्चा भर मिलती है—

१—भक्तमाल, नाभादास जी कृत ।

२—भक्त नामावली—ध्रुवदास ।

३—नागर समुच्चय—नागरीदास ।

४—पद प्रसग माला ,,

५—व्यास वाणी—व्यास हरिराम जी ।

६—भक्तनामावली—भगवत रसिक ।

निम्नाकित वे आधुनिक पुस्तकें है जिन्हे इतिहास और समालोचना के अन्तर्गत रखा जाता है और जिनमे परमानन्ददास जी की चर्चा मिल जाती है ।

१—खोज-रिपोर्ट (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

२—इस्त्वाददैला लितेरात्यूर ऐन्दुवे एन्दुस्तानी (गार्साद तासी)

३—शिवसिह सरोज (शिवसिह सेंगर)

४—मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान (सर जॉर्ज ग्रियर्सन)

५—मिश्रबधु विनोद (मिश्रबधु)

६—हिन्दी साहित्य का इतिहास (प० रामचन्द्र शुक्ल)

७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डॉ० रामकुमार वर्मा)

८—हिन्दी साहित्य (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी)

उपर्युक्त ग्रथो के अतिरिक्त अष्टछाप सम्बन्धी निम्नाकित ग्रथो में परमानन्ददास जी की चर्चा की गई है—

१—अष्ट छाप (डॉ० धीरेन्द्र वर्मा)

२—अष्टसखान की वार्ता (श्री द्वारिकादास परीख)

३—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयालु गुप्त)

४—अष्टछाप परिचय (श्री द्वारकादास परीख एव प्रभुदयाल मीतल)

इनके अतिरिक्त 'वल्लभीय सुधा', तथा 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ' एव 'सरसगादि' पत्र-पत्रिकाओ मे उनकी थोडी बहुत चर्चा मिली है । इन साहित्यिक सूत्रो के अतिरिक्त कविवर परमानन्ददास जी का कही भी कैसा भी कुछ भी पता नही चलता । वे थे भी तो 'गोपी भाव' के पोषक एकान्त कवि । प्रभु गुणगान के द्वारा आत्मकल्याण और लोककल्याण ही उन्हे अभीष्ट था । कबीर या तुलसी की भाँति वे सीधे लोक कल्याण भावना को महत्व देने वाले नही थे जिससे वे जन जन के कवि हो सकते । नही, वे केशव, बिहारी, अथवा भूषण की भाँति किसी

लता वृक्षादिक से आच्छादित महाप्रभु जी की बैठक का बाह्य भाग
जो प्रकृति के सौंदर्य से भरपूर है।

के राज्याश्रित कवि किंकर थे, जिससे कोई समसामयिक साहित्यकार या इतिहासकार उनका परिचय दे सकता। वे सीधे सादे भक्त, कवि एव कीर्तनकार थे, जिन्होंने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर दिया था। 'श्री वल्लभ रतन' उन्होंने बडे जतन से पाया था। और उन्हीं के माध्यम से श्री गोवर्धननाथ जी के पावन चरणो में अपने जीवन का विनियोग कर चुके थे। अत आजीवन विविध भावनाओ एव अनेक आसक्तियो द्वारा रसमत्त होकर श्रीनाथ जी के सिंहद्वार पर पडे रहना ही उन्हे पसन्द था।[१]

उपर्युक्त ग्रथो के आधार पर उनकी जीवनी की प्रमाणिक रूप रेखा इस प्रकार निर्णीत हो पाती है—

(१) जाति—परमानन्द दास जी एक कुलीन, अकिंचन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होने स्वय जाति का उल्लेख नही किया, परन्तु वे महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आने से पूर्व सेवक बनाते थे, और यह अधिकार तपस्वी कुलीन ब्राह्मणो को ही होता है।[२]

(२) नाम—वे 'परमानन्द' 'परमानन्द स्वामी', परमानन्ददास' आदि नामो से प्रसिद्ध थे। उनके काव्य मे सर्वत्र यही नाम मिलता है।[३]

(३) स्थान—उनका स्थान कन्नौज था।[४]

(४) माता पिता—उनके माता पिता के नाम का पता नही चलता। कवि ने उनकी चर्चा भी कही नही की। पिता द्रव्यार्थी थे अत कवि के आध्यात्मिक स्वभाव से उनकी प्रवृत्तियाँ मेल नही खाती थी।

---

१ कुंज भवन मे पौढे दोऊ।

× × ×

रस में माते रसिक मुकुट मणि 'परमानन्द' सिंघ द्वारे होऊ।

२ "सो ये कन्नौज में कन्नौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। × × ×

सो कन्नौज में परमानन्ददास जी वहोत ही प्रसन्न वालपने तें रहते। पाछे ये वडे योग्य भए और कवीश्वर हू भए। वे अनेक पद वनायके गावते। सो स्वामी कहावते और सेवक हू करते।"

चौ० वै० वर्ता पृ० ७८६

३ "तासों यह पुत्र बडो भाग्यवान है। जाके जनमत ही मोको परम आनन्द भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम परमानन्ददास ही धरूँगो। पाछे जन्म नाम करन लागे तव वा ब्राह्मण ने कही जो नाम तो मैं पहले ही पुत्र को 'परमानन्द' विचारि चुक्यो हों। तव सव ब्राह्मण बोले जो तुनने विचार्यो है सोई नाम जन्म पत्रिका में आयो है।"

चौ० वै० वार्ता पृष्ठ ७८६

४ सो ये कन्नौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे।

वार्ता पृष्ठ ७८८

५ तव परमानन्ददास ने माता पिता सों कह्यो जो मेरे तो व्याह करनो नाहीं, और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य यो ही गयो। × × ×

तासों मैं तो द्रव्य को संग्रह कवहूँ नाही करूँगो और तुम खायवे लायक गोसों नित्य अन्न लेऊ। × × × तासों अव तो धन को मोह छोटो ·· ·· ।

वा० पृष्ठ ७६०

(५) जन्मकाल—वे सम्प्रदाय की मान्यता के आधार पर महाप्रभु स १५ वर्ष छोटे थे, अत उनका जन्म सम्वत् १५५० माना गया है।[1]

(६) शैशव—उनके जन्म के अवसर पर पिता को द्रव्य लाभ हुआ था उसी से उनका नाम 'परमानन्द' रक्खा गया था, अत उनका शैशव अवश्य चैन से बीता होगा।[2]

(७) शिक्षा दीक्षा—वे विद्वान् थे, सुन्दर कविता करते थे। भावप्रकाश का 'योग्य' शब्द उनकी उच्च योग्यता का परिचायक है। काव्य-रचना-नैपुण्य और उच्च सगीतज्ञता का प्रमाण उनके काव्य तथा कीर्तन से मिल जाता है। उनके अनेक पदम सूर तथा तुलसी के टक्कर के हैं।[3]

---

१ सप्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि परमानन्ददास जी महाप्रभु वल्लभाचार्य से १५ वर्ष छोटे थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्रादुर्भाव सवत् १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी को हुआ था अत परमानन्ददास जी का जन्म सम्वत् १५५० ठहरता है। उनका जन्म मास मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष एव तिथि सप्तमी मानी गई है। यही मास और तिथि श्री गुसाई विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी की है। सप्रदाय मे गोस्वामी गोकुलनाथ जी की जन्म तिथि बडी श्रद्धा और पूज्य भाव से मनाई जाती है। उसी दिन परमानन्ददासजी को भी बडे प्रेम भाव से स्मरण किया जाता है। सम्प्रदाय परमानन्ददास जी को भगवान् गोवर्द्धन-नाथ जी के अष्ट सखाओ में तो मानता ही है। अत उक्त दोनो ही पुण्यश्लोको की जन्म तिथियाँ एक होने से उसे मानने और स्मरण रखने में बडी सुविधा हो गई। इन तिथियो की खोज करने में विद्या विभाग काँकरौली ने बडी सावधानी और सतर्कता से काम लिया है।

उक्त मत इससे भी पुष्ट होते हैं कि जब परमानन्ददास जी महाप्रभु से अडेल (प्रयाग) में दीक्षित हुए तब वे युवक अथवा वयस्क होंगे क्योकि वे सगीत में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे और उनकी विवाह योग्य अवस्था आ चुकी थी। जिसे वे टालकर घर से चले आए थे। 'यदुनाथ दिग्विजय' में आचार्य से उनकी भेट सम्वत् १५७७ मे बतलाई गई है (गो० यदुनाथ कृत वल्लभ दिग्विजय पृ० ५३)

अत सम्वत् १५५० को उनका जन्म सवत् मान लिया जाय तो इस समय वे २७ वर्ष के सिद्ध होते हैं। यह समय विवाह, गुरु दीक्षा एवम् काव्य रचना सभी के लिए उपयुक्त एव उचित ठहरता है। फिर इस काल में आचार्य जी का निवास अडैल (अलर्कपुर) मे सिद्ध भी हो जाता है। यही परमानददास जी की भेंट महाप्रभु से हुई थी। अत उनका जन्म सवत् १५५० के आस पास मानना समीचीन है।

हिन्दी साहित्य के प्राय सभी इतिहास ग्रन्थो में उनका समय सम्वत् १६०६ या १६०७ दिया गया है। यह समय उनके उपस्थिति काल का है न कि जन्म का। इस समय में वे ब्रज मे स्थायी रूप से रह भी रहे थे। परन्तु इन संवतो को उनके जन्म सवत् कथमपि नही माने जा सकते क्योकि महाप्रभु वल्लभाचार्य का तिरोधान सवत् सवत् १५८७ में ही हो गया था अत वे अपने तिरोधान के २० वर्ष के बाद किसी शिष्य को दीक्षा दें ये नितान्त उपहासास्पद है।

२ वार्ता पृ० ७८९

३ "पाछें ये बडे योग्य भये और कवीश्वर हू भए। वे अनेक पद बनाय के गावते। सो 'स्वामी' कहावते और सेवकहू करते। सो परमानन्ददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनी जन सग रहते।"

—वार्ता-भावप्रकाश पृ० ७८९

(८) गृह त्याग—शैशव से ही वे आध्यात्मिक विचारों के थे, एक वार मकर पर्व पर प्रयाग गये और वहाँ अडैल मे महाप्रभु वल्लभ से भेंट हो जाने पर उनके दासानुदास हो गए। फिर घर लौट कर गृहस्थ नही वने और व्रजवास के लिए चल दिये।[1]

(९) गुरु सम्बन्धी उल्लेख— उन्होंने अपने पदो में अपने गुरु वल्लभाचार्य का अनेक स्थलो पर श्रद्धा सहित स्मरण किया है।[2]

(१०) संप्रदाय मे दीक्षा—मकर सक्रान्ति पर्व पर जव वे प्रयाग गये तव वहाँ उन्हे 'कपूरक्षत्री' द्वारा आचार्य वल्लभ से भेंट करने का अवसर मिला और तभी वे उनके शिष्य बन गये।[3]

इस प्रकार उन्होंने सदैव उनके साथ रहकर भगवान् की कीर्तन सेवा की। उनके सम्प्रदाय प्रवेश की तिथि संवत् १५७७ ही ठहरती है।

(११) विवाह—भक्तवर परमानन्ददासजी आजन्म कामिनी काचन से दूर रहे।[4]

(१२) व्रज के लिए प्रस्थान—अडैल में कुछ काल रहकर वे कन्नौज होते हुए महाप्रभु जी के साथ व्रज में पधारे वहाँ गोकुल होते हुए गिरिराज पर आए। वहाँ श्री गोवर्धननाथजी के दर्शन कर वे सदैव के लिए उन्ही के चरणो में बस गए। सुरभि कुण्ड उनका नित्य स्थायी निवास था।[5]

(१३) सवत् १६०२ में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप में उनकी स्थापना की। और वे "लीला सागर" हुए। उन्होंने सहस्त्रावधि पद बनाये।[6]

(१४) गोलोक वास—सवत् १६४१ में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की विद्यमानता में उनका नित्य लीला-प्रवेश हुआ। वे सूर, कुम्भनदास, रामदास, कृष्णदासादि के समकालीन थे। उन्होंने जन्माष्टमी के दूसरे दिन नवमी को "दधिकांदो" के महोत्सव के उपरान्त अपने पाञ्च भौतिक देह का विसर्जन किया।[7]

(१५) उनका व्यक्तित्व एव स्वभाव—उनका व्यक्तित्व अत्यन्त भावुक, गम्भीर, सत्यनिष्ठ एव त्यागमय था। उन्हे गर्व छू तक नही गया था। भगवद् विश्वास, लोकैषणा का त्याग, व्रज प्रेम, वैष्णवो में श्रद्धा आदि उनके अपने गुण थे। काव्य रचना में उनकी छाप 'सारग' थी। सत्सग मे उन्हे प्रेम था। "गोपी भाव" उनकी भक्ति का आदर्श था।[8]

---

१ (अ) इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ। प० सागर
(ब) चलिरी सखि नंदगाम जाइ वसिए, ,,
(स) जहाँ तहाँ जहाँ नंद नंदन राज करौ यह गेहरा। ,,

२ श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो। ,, पद सं० ८५२

३ श्री वल्लभ कुल को हौं चेरो वैष्णव जन को दास कहाऊँ। ,,

४ "मेरे तो व्याह करनो नाहीं है" वार्ता भावप्रकाश पृ० ७९०

५ परमानन्द सागर तथा वार्ता पृ० ८३३

६ "या प्रकार सहस्त्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किए" वार्ता भावप्रकाश पृ० ८२४

७ भाव प्रकाश पृ० ८३३।

८ 'नदकोलाल सदा वर माँगो,
गोपिन की दासी मोहि कीजै। प० सा० पद सं० ७५९

परमानन्ददास जी की जीवनी के उपर्युक्त तथ्य वार्ता साहित्य के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थो में बिना किसी फेर फार अथवा परिवर्तन के उपलब्ध हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अधिकाश ग्रन्थ एव अध्ययन के सूत्र वार्ता पर ही आधारित हैं।

परमानन्ददास की रचनाएँ

वे भक्त, गायक और कवि थे। दीक्षा से पूर्व वे भगवद् विरहपरक पद बनाकर गाते थे। महाप्रभु वल्लभ की शरण में आने के उपरान्त उन्होने भागवत के दशम स्कध की लीला को स्वरचित पदो मे निबद्ध करके कीर्तन गान आरभ किया था। उनके अधिकाश पद सुबोधिनी पर आधारित हैं। निम्नाकित ग्रन्थ उनके कहे जाते हैं। परन्तु वे प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे नही उतरते।

१—दान लीला
२—उद्धव लीला
३—ध्रुव चरित्र
४—सस्कृत रत्नमाला
५—दधि लीला
६—परमानन्ददास जी को पद
७—परमानन्द सागर

उपर्युक्त ग्रन्थो में पहले ५ ग्रन्थ अप्रमाणिक एव अनुपलब्ध हैं। छठा ग्रन्थ सातवे का ही अगमात्र है। "परमानन्द सागर" जो उनके भक्तो द्वारा उनके पदो के लिए दिया हुआ नाम है, उनकी प्रमाणिक रचना ठहरती है। इसी की ५ प्रतियाँ श्रीनाथद्वार के तिलकायित महाराज श्री के निज पुस्तकालय में तथा २ प्रतियाँ सम्प्रदाय के विद्वान् एवँ मर्मज्ञ श्री द्वारकादास जी परीख के पास हैं। पाँच प्रतियाँ विद्या विभाग काँकरौली में सुरक्षित हैं। विद्या विभाग काँकरौली की एक प्रति में[1] सर्वाधिक पद हैं। उसकी पद सख्या ११२१ है। शेष प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतिलिपि ही जान पडती हैं। प्राचीनतम प्रति का सवत् १७५४ मिलता है। इस काल में प्रभु चरण हरिराय जी उपस्थित थे।*

दीर्घकाल तक कवि का काव्य मौखिक कीर्तन-परम्परा की सीमा में ही आबद्ध रहा। खोज रिपोर्टों अथवा इतिहास ग्रथो मे कवि के जिन अन्य ग्रथो की चर्चा अथवा उल्लेख है उनकी चर्चा गड्डुलिकान्यायेन सभी लेखक महानुभावो ने कर दी है, वास्तव में वे कवि द्वारा लिखित नही। दतियाराजपुस्तकालय में अथवा अन्यत्र कवि का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। लेखक ने स्वय दतिया जाकर दतिया राजपुस्तकालय मे परमानद सागर की खोज की है किन्तु कहीं कुछ नही मिला। 'परमानन्द सागर' में कवि ने मुख्यत दशमस्कध की कृष्ण लीला का ही गान किया है। उसमें भी कवि दशमस्कध के पूर्वार्ध तक ही सीमित रहा है। लगभग ६५ विषयों पर कवि के ११०० से ऊपर पद कहे जाते हैं।

उपर्युक्त १४ हस्तलिखित प्रतियाँ जो उपलब्ध हैं उनका विवरण इस प्रकार है —

१—परमानन्द सागर [काँकरौली]

प्रथम प्रति

बध सख्या ४५ पु० १। इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' हैं। इसका साइज ८×६ इच है। इसकी अन्तिम पुष्पिका नही मिलती। अत पुस्तक अपूर्ण है।

१ तृतीय प्रति बन्ध ५७ पु० ३।

* यह प्रति श्री द्वारकादास जी परीख के पास सुरक्षित है। लेखक का प्रस्तुत पद-सग्रह लगभग इसी के आधार पर है। सपादक

परमानन्ददास जी की जीवनी के उपर्युक्त तथ्य वार्ता साहित्य के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थो में बिना किसी फेर फार अथवा परिवर्तन के उपलब्ध हो जाते है। इससे सिद्ध होता है कि अधिकाश ग्रन्थ एव अध्ययन के सूत्र वार्ता पर ही आधारित हैं।

परमानन्ददास की रचनाएँ

वे भक्त, गायक और कवि थे। दीक्षा से पूर्व वे भगवद् विरहपरक पद बनाकर गाते थे। महाप्रभु वल्लभ की शरण में आने के उपरान्त उन्होने भागवत के दशम स्कध की लीला को स्वरचित पदो में निबद्ध करके कीर्तन गान आरभ किया था। उनके अधिकाश पद सुबोधिनी पर आधारित हैं। निम्नाकित ग्रन्थ उनके कहे जाते हैं। परन्तु वे प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे नही उतरते।

१—दान लीला
२—उद्धव लीला
३—ध्रुव चरित्र
४—सस्कृत रत्नमाला
५—दधि लीला
६—परमानन्ददास जी को पद
७—परमानन्द सागर

उपर्युक्त ग्रन्थो में पहले ५ ग्रन्थ अप्रमाणिक एव अनुपलब्ध हैं। छठा ग्रन्थ सातवें का ही अगमात्र है। "परमानन्द सागर" जो उनके भक्तो द्वारा उनके पदो के लिए दिया हुआ नाम है, उनकी प्रमाणिक रचना ठहरती है। इसी की ५ प्रतियाँ श्रीनाथद्वार के तिलकायित महाराज श्री के निज पुस्तकालय में तथा २ प्रतियाँ सम्प्रदाय के विद्वान् एवँ मर्मज्ञ श्री द्वारकादास जी परीख के पास हैं। पांच प्रतियाँ विद्या विभाग कांकरौली में सुरक्षित हैं। विद्या विभाग कांकरौली की एक प्रति में[1] सर्वाधिक पद हैं। उसकी पद सख्या ११२१ है। शेष प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतिलिपि ही जान पडती हैं। प्राचीनतम प्रति का सवत् १७५४ मिलता है। इस काल में प्रभु चरण हरिराय जी उपस्थित थे।*

दीर्घकाल तक कवि का काव्य मौखिक कीर्तन-परम्परा की सीमा मे ही आबद्ध रहा। खोज रिपोर्टों अथवा इतिहास ग्रंथो मे कवि के जिन अन्य ग्रथो की चर्चा अथवा उल्लेख है उनकी चर्चा गड्डुलिकान्यायेन सभी लेखक महानुभावो ने कर दी है, वास्तव में वे कवि द्वारा लिखित नही। दतियाराजपुस्तकालय में अथवा अन्यत्र कवि का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। लेखक ने स्वय दतिया जाकर दतिया राजपुस्तकालय मे परमानद सागर की खोज की है किन्तु कही कुछ नहीं मिला। 'परमानन्द सागर' में कवि ने मुख्यत दशमस्कध की कृष्ण लीला का ही गान किया है। उसमें भी कवि दशमस्कध के पूर्वार्घ तक ही सीमित रहा है। लगभग ६५ विषयों पर कवि के ११०० से ऊपर पद कहे जाते हैं।

उपर्युक्त १४ हस्तलिखित प्रतियाँ जो उपलब्ध हैं उनका विवरण इस प्रकार है —

१—परमानन्द सागर [कांकरौली]

प्रथम प्रति

बध सख्या ४५ पु० १। इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' हैं। इसका साइज ८×६ इच है। इसकी अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती। अत पुस्तक अपूर्ण है।

१ तृतीय प्रति बन्ध ५७ पु० ३।

* यह प्रति श्री द्वारकादास जी परीख के पास सुरक्षित है। लेखक का प्रस्तुत पद-सग्रह लगभग इसी के आधार पर है। सपादक

इसमे विषय क्रम से पद लिखे गये हैं विषय क्रम के अतिरिक्त परमानन्ददास जी के और भी पद इसमें हैं। इस पुस्तक के पदो की गणना करने पर लगभग ८५० पद होते हैं।

पुस्तक की लेखन शैली—इन पुस्तक के प्रारम्भ में ७८ पृष्ठ वन्ध के पदो की प्रतीक पृष्ठ सख्या देकर लिखी गई है। लिपि सुवाच्य, सुन्दर, शुद्ध एव प्राचीन है। रागो तथा विषयो के नाम लाल गेरु से दिए हैं। ग्रन्थ में प्रत्येक नवीन विषय का प्रारम्भ अलग नए पत्र से हुआ है। पृष्ठ १ से लेकर ११४ तक पद हैं। पदों का सकलन विषय क्रम से हुआ है।

लेखन समय—इस हस्तलिखित ग्रन्थ मे "श्री गिरिधर लालो विजयतु" लिखा है। ये गिरिधरलाल जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रथम पुत्र है। इनका समय स० १५९७-१६०८ तक माना जाता है। श्री गुसाई जी के आचार्य्य पद पर रहते हुए गोस्वामी गिरिधर लाल जी का प्राधान्य नही हो सकता। वे अपने पिता के उपरान्त ही सवत् १६४२ मे आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए होंगे। अत उनके आचार्यत्व का काल १६४२ से १६८० तक का हुआ। इन्ही ३८ वर्षो के भीतर इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि हुई समझनी चाहिए।

द्वितीय प्रति

वघ स० ५७ पु० ४ इसका नाम 'परमानन्द सागर' है। इसका साइज़ १०×७ इंच है। यह ग्रथ ९ वें पत्र से प्रारम्भ होकर १५३ तक लिखा गया है।

लेखन शैली—'श्री गोपीजनवल्लभायनम.' मे प्रारम्भ होकर राम जयन्ती तक के पद उपलब्ध होते हैं। अन्य जयन्तियो के पद नही। अत पुस्तक अपूर्ण प्रतीत होती है।

लेखन समय—इसका लेखन काल प्रथम प्रति के लिपि साम्य के कारण सं० १६४२ से १६८० तक का ही स्थिर होता है। पुस्तक की दशा अच्छी नही। अन्तिम पुष्पिका भी नही मिलती, न लेखक का नाम ही मिलता है।

तृतीय प्रति

यह प्रति जैसा कि इसकी अन्तिम पुष्पिका से विदित होता है, किसी वैष्णव हरिदास की थी। अब यह वघ ५७ में तृतीय न० की पुस्तक है। आकार १०×८ इंच है। पत्र न० १ से १५४ तक है। पुस्तक का प्रारम्भ—"४ चरण कमल वन्दौ जगदीस के जे गोधन सग धाए।" वाले मगलाचरण से होता है। पुस्तक 'मथुरेशपुस्तकालय' की थी। इसमे समाप्ति के अनन्तर पत्र सख्या १५२ से १७२ तक परमानन्द दास जी के और भी पद लिखे हैं। जिनकी संख्या २० होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से सख्या ११२१ हो जाती है। इतनी विशाल सख्या अन्य किसी प्रति में नही मिलती। लिपि सुवाच्य, सुन्दर शुद्ध और आद्योपान्त एक सी है। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं।

लेखन समय—इस प्रति में स्पष्ट लिखा है गोस्वामी 'श्री व्रजनाथात्मज गोकुलनाथस्येद पुस्तकम्" ये हस्ताक्षर गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी के पुत्र गोकुलनाथ जी के हैं। ये गोकुलनाथ जी श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के तृतीय पुत्र वालकृष्ण जी के वशज एव कांकरौली निवासी थे। इनका समय स० १८८१ से १८५९ तक का है। अत निश्चय है कि यह पुस्तक स० १८५९ से पहले की लिखी हुई है। अनुमान से इस प्रति का सं० १८४० से १८५० तक होना चाहिए।

चतुर्थ प्रति

इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' है। आकार ८॥।×९ इञ्च है। इसमें अष्टछापी अन्य कवियो के कीर्तन लिखे हुए हैं। पत्र स० १ से १७९ तक हैं। पद संख्या

विषय क्रम से है, अत गणना से कुल पद ७४१ होते हैं। मगलाचरण के ३, भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १० पद हैं। लिपि सुन्दर सुवाच्य और शुद्ध है। अन्तिम पुष्पिका नही। इससे विदित होता है कि पुस्तक अपूर्ण है, लेखन काल और लेखक का पता भी नही चलता।

पचम प्रति

इसका नाम 'परमानन्ददास जी के कीर्तन' है। आकार ४×६ वध स० १६ में यह छठी पुस्तक है। पुस्तक गुटका साइज में है। लगभग ३१४ पत्र हैं। इसमें भी पुष्पिका न होने से लेखक तथा लेखनकाल का पता नही चलता। अक्षर सुन्दर और सुवाच्य है।

इनके अतिरिक्त दो प्रतियाँ और हैं। जिनमें क्रम से ८०० तथा २०० पद हैं। ये प्रतियाँ १००-१२५ वर्ष पुरानी प्रतीत होती हैं। प्रमाणिकता की दृष्टि से ये अधिक महत्त्व नही रखती।

नाथद्वार के महाराज श्री के निज पुस्तकालय मे चार हस्तलिखित प्रतियाँ और हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथम प्रति

वध ११, पुस्तक स० १ परमानन्ददास जी के कीर्तन। इसमें १००० पद है। यह प्रति स० १८७३ की लिखी हुई हैं।

द्वितीय प्रति

बध १४ पु० ९ परमानन्द सागर। इसमें ८८३ पद है। प्रारम्भ में 'चरन कमल बन्दौं जगदीश के जे गोधन सग धाये।' वाला मगलाचरण है। यह प्रति लगभग १५० वर्ष पुरानी होगी। इसमें पद स०, लगभग १००० के है। यह कांकरोली विद्या विभाग में सगृहीत तृतीय प्रति के टक्कर की है। इसमें लगभग ६५ विषय दिये हुये हैं। विद्याविभाग की तीसरी प्रति और यह प्रति सम्भवत किसी एक मूल प्रति की दो प्रतिलिपियाँ है। अत बडी महत्वपूर्ण हैं।

तृतीय प्रति

बध १४ पुस्तक २—परमानन्द सागर—इसमें ५०० पद सगृहीत है। लेखक तथा लेखन काल उपलब्ध नही।

चतुर्थ प्रति

बध १४ पुस्तक ३—परमानन्ददास जी के कीर्तन—इसमें लगभग ८०० पद है। पदो का सकलन विषय वार है। इसका लेखन काल अनुमानत १८ वी शती विदित होता है।

पचम प्रति

बध १४ पुस्तक ४—परमानन्ददास जी के कीर्तन—इसमें भी लगभग १००० पद है। पद विषय क्रम से है। लेखन काल का पता नहीं चलता।

श्रीनाथद्वार एव कांकरोली की उपर्युक्त १२ प्रतियो के अतिरिक्त ३ प्रतियो की चर्चा और है, वे क्रम से श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा, श्री जमुनादास जी कीर्तनियाँ एव जयपुर वाले श्री रामचन्द्र, इन तीन महानुभावो के पास बतलाई जाती हैं। इनमे चतुर्वेदी जी वाली प्रति तो किसी राधा बाई बाँसतल्ला कलकत्ता की बतलाई जाती है। यह प्रति सग्रहात्मक होनी चाहिये। अन्य दो प्रतियो का पता नही चलता। इनकी चर्चा भर है।

परमानन्दसागर की दो और प्रतियाँ जो लेखक को उपलब्ध हुई हैं वे सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् श्री द्वारकादास परीख के अधिकार में हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से उनमें से एक प्रति तो विद्या विभाग की प्रथम दो प्रतियो के उपरान्त रखी जानी चाहिये। इसका सवत् १७५४

स्पष्ट दिया हुआ है। और दूसरा वर्षा के कारण जीर्ण शीर्ण हो गई हैं, परन्तु पद सख्या की दृष्टि से इसका बडा महत्व है। इसमे ८०० से ऊपर पद हैं। लेखक ने इन दोनो प्रतियो का विस्तृत विवरण अपने शोध ग्रन्थ में मय फोटो के दिया है।*

इस प्रकार परमानन्द सागर की १२ प्रतियाँ देखने में, तथा तीन प्रतियाँ सुनने मे आई। हस्तलिखित प्रतियो के देखने से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

१—सभी प्रतियाँ प्रतिलिपियाँ हैं। परमानन्ददास जी का कोई स्वहस्तलिखित ग्रथ उपलब्ध नही। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कवि एक भक्त कीर्तनिया था अत. उसे मसि पात्र एव लेखनी के स्पर्श के लिए न अवकाश ही था न आवश्यकता।

२—प्राय: सभी प्रतियो मे पद विषय क्रमानुसार हैं।

३—कवि का अपना 'सागर' सूर के 'सागर' की भाँति स्कधात्मक पद्धति पर उपलब्ध नही।

४—कवि मुख्य रूप से दशमस्कध पर ही केन्द्रित रहा।

५—पदो के विषय बाल, पौगड एव किशोर लीला, गोपी भाव, विरह-भाव, युगल लीला आदि ही थे।

६—भगवान् कृष्ण की रसमयी भावात्मक लीलाओ एव दीनता, विनय के अतिरिक्त अन्य विषयो पर उसने पद रचना नहीं की।

७—परमानन्द सागर के अतिरिक्त उसकी अन्य रचनाये सदिग्ध एव अप्राप्य हैं।

परमानन्दसागर के मुद्रित पद लगभग ५३० हैं जो तीनो कीर्तन सग्रहो में आगए है। ठीक इतने ही पद राग कल्पद्रुम भाग १—२, राग रत्नाकर, अष्टसखान की वार्ता, अष्टछाप पदावली, अष्टछाप परिचय, वल्लभीय सुधा एवं पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ में कुल मिलाकर मिलते हैं। कीर्तन सग्रहो के पदो में और इन ग्रंथो के पदो में अधिकाश पुनरावृत्ति है। डॉ० दीनदयाल गुप्त अपने पास लगभग ४५० पदो का सग्रह बताते है। 'अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय' की उद्धरण सख्या भी इससे ऊपर नही जाती। उनके अधिकाश पद कीर्तन-सग्रहो से मेल खा जाते हैं। परन्तु परमानन्ददास जी का स्वतन्त्र प्रामाणिक मुद्रित सग्रह आज तक उपलब्ध नही।

उनके पदो के तीन क्रम मिलते हैं—

१—वर्षोत्सव क्रम।

२—नित्यलीला क्रम।

३—भागवत के प्रसगानुकूल पद एव प्रकीर्ण विनय आदि के पद।

कवि का काव्य विषय मुख्यत. भगवान् कृष्ण का बाल, पौगण्ड और किशोर लीला गान था। अत: इन्ही तीन लीलाओ के सर्वाधिक पद उपलब्ध होते हैं। कवि का बहुत सा साहित्य काल के कराल गाल मे समाविष्ट हो गया। वह सूर की भाँति गोवर्धननाथ जी के मदिर का कीर्तनिया था। अत कीर्तन सेवा के ७० और ७२ वर्षो मे उसने लक्षावधि पदो की रचना की होगी, परन्तु अब तो पद सख्या कुल मिलाकर लगभग १४००,१५०० तक ही कही जाती है।

शुद्धाद्वैत दर्शन और परमानन्ददास जी

अष्टछाप के कवियो का मुख्य उद्देश्य वस्तुत दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण नहीं था, वे अहर्निश कीर्तन सेवा में आसक्त रहने के कारण भगवान् के लीला गान को ही महत्त्व देते थे। उनके आराध्य जन-ताप-निवारणार्थ ही इस भूलोक में अवतीर्ण होते हैं और विविध मानवीय लीलाएँ करते हुए भक्तो के चित्तो को अनुरजित करते हुए दुष्ट दलन भी करते हैं और इस

* प्रस्तुत पद सग्रह अधिकाश मे इन्ही प्रतियो के आधार पर है। —सपादक

प्रकार भक्त मन रजनकारिणी लीला के साथ लोकानुग्रहरूप अवतार हेतु की सिद्धि करते हैं। भक्तो का उद्देश्य था कि भगवान का महत्व सासारिक जनो से विस्मृत न कर दिया जाय इसलिये बीच बीच में ये कीतनकार भक्त उनका पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अथवा पूर्ण ब्रह्मत्व भी प्रतिपादन करते चलते हैं। ससार की अनित्यता, जीव की वधन ग्रस्तता, भक्ति की स्वात्म निर्भरता, माया की असारता आदि का भी वे यथा स्थान प्रसग उठाते चलते हैं। अत उनके काव्य मे दार्शनिक प्रसग अनायास ही आ जाते हैं। परमानन्ददास जी भी मुख्य रूप से सगुण लीला गायक होते हुए भी यथा स्थान शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल दार्शनिक तत्व चिता कर बैठते हैं। उन्होने भी पूर्ण ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, जीव, माया, जगत, ससार, मोक्ष अथवा मुक्ति एव निरोध की चर्चा की है। परन्तु ये सब चर्चाएँ हैं गौण अथवा प्रसगवश ही। इन्हे मुख्यता कही भी नही दी गई है। शुद्धाद्वैत का यह सिद्धान्त मार्ग है। व्यवहार पक्ष इसका "पुष्टि" है। पुष्टि का स्वरूप 'कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टि'। यही सर्वत्र प्रतिपाद्य रहा है। आचार्य जी का यह मत कि—

"कृति साध्य साधन ज्ञान भक्ति रूप शास्त्रेण बोध्यते ताम्या विहिताभ्या मुक्तिर्मर्यादा। तद्रहितानपिस्वरूप बलेन स्व प्रापण पुष्टिरित्युच्यते।"—अणुभाष्य ३। ३। २६

तात्पर्य यह कि वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तपादि करने से मोक्ष होता है। ये साधन मोक्ष अथवा मुक्ति के साधन हैं। इन साधनो से मुक्ति प्राप्त करना मर्यादा है। परन्तु जहाँ ये साधन नही गिने जाते और इन साधनो से भी श्रेष्ठभ गवत्स्वरूप बल से ही प्रभु प्राप्ति होती है उसे ही 'पुष्टि' कहते हैं। सभी अष्टछापी भक्तो का यही आदर्श था। अत उन्होने दार्शनिक पक्ष के निरूपण करने अथवा उसे अधिक महत्ता देने की चेष्टा नही की। पुष्टि भक्ति ही उनका लक्ष्य था। वही उनकी प्रतिपाद्य थी। अत दार्शनिक चर्चा मे उलझना उन्हे अभीष्ट नही था, फिर भी प्रसगवश जहाँ उन्हे पूर्ण ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष, निरोधादि की चर्चा उठानी पडी है वहाँ वे आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल ही चले है।

परमानन्ददास जी ने भी आचार्य के मतानुसार ब्रह्म को "सर्वधर्मपितश्च" के अनुसार सर्व धर्ममय माना है। उसमे विरुद्ध धर्माश्रयत्व' स्थापित किया है, उसे आनन्द रूप, रस रूप, निस्सीम परिपूर्ण रसमय, नित्य धर्ममय कहा है। वह न्यायोपबृहित, सर्व 'वेदान्त प्रतिपाद्य, निखिल धर्ममय, अनवगाह्य माहात्म्य एव सर्व भवन समर्थ है। जब उसका इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, तब उसके प्रतिनिस्सीम भक्ति की प्राप्ति होती है।[1]

अक्षर ब्रह्म—परमानन्ददास जी ने अक्षर ब्रह्म की चर्चा विस्तृत रूप मे न करके अनादि, सनातन, अनुपम, अव्यक्त, निर्गुण ब्रह्म को लीला हेतु सगुण माना है।

जीव—परमानन्ददास जी ने ब्रह्मवाद के अनुकूल जीव की अशाशी भाव के अनुसार की बडी सुन्दर चर्चा की है। वे जीव की स्थिति भक्ति के लिये ही मानते है अन्यथा जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही।

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहो।
× × ×
जीव ब्रह्म अनन्तर नही, मणि कचन जैसे।
जल तरब, प्रतिमा सिला, कहिबै को ऐसे॥

---

१ सहज प्रीति गोपालहिं भावै—प० स० प० स० २८५
तथा
तत प्रेम तथाभक्तिर्व्यमनञ्च यदा भवेत्। भ० व० ३

आरति जुगलकिसोरजी की अष्ट तन मन धन न्यौछावरि

कीजै ।। रविससि कोटि बदन की सोभा जाहि निरषि मेरो लोचन

मो ।। ओढे नील पीत पट सारी कुंज बिहारन कुंज बिहारी ।।

श्रीपरसोत्तम गिरवरधारी आरति करति सकल ब्रजनारी

मोरमुकट पीतंबर सोहै नटवर कला देषि मन मोहै ।। फूलन

की सेज फूलन बनमाला रत्न सिंघासन बैठे नंदलाला ।। मन

वच करम करि आरति गावै । वसि बैकुंठ परम पद पावै ।। १ ।। मीरा प्रभु

नंदनंदन ब्रषभानकिसोरी परमानंद स्वामी अविचल जोरी ।।

प० यादवनाथ शुक्ल के सग्रह से प्राप्त हुई प्रति जिसे दीमकें चट कर गईं हैं ।

जीव ब्रह्म में मणिकंचन की भाँति कोई अन्तर नहीं है। जल और उसकी तरंग तत्वत. एक है, केवल षडैश्वर्यादि का अभाव अथवा आनंदांश के तिरोहित हो जाने के कारण उसकी जीव संज्ञा हुई। नाम रूप का भेद मात्र है। जीव अविद्या ग्रस्त है।

'परमानन्द भजन बिन नावैं बध्यौ अविद्या कूटैं।'

अविद्या से ही यह जीव माया, ममता में फँसा हुआ आत्म स्वरूप किंवा भगवत्स्वरूप को भूला हुआ है। अन्यथा तत्वत है ब्रह्म ही।

जगत्—जगत् ब्रह्मवाद में ब्रह्म का कार्य रूप है।

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर ॥ —भाग०

परमानन्ददास जी ने उसे "मोहन रूप जगत केरो।" कहा है। संसार को उन्होंने जगत् से पृथक् माना है। जहाँ 'जगत हरिस्वरूप ठहरात' है वहाँ संसार सागर है। जिसमें जीव बेठिकाने बहा जा रहा है।

बह्यौ जात मोहि राखि लियौ है।
लिय मग हाथ गहायो ॥

इस अपार भवसागर से तरने के लिए गुरु के पादपद्म ही पोत स्वरूप है'

गुरु कौ निहारि पोत पद अम्बुज भव सागर तरिवैं के हेत।

अत. संसार जगत् से पृथक् दुखों का मूल ममता अहंता अज्ञान स्वरूप क्लेशदायक है। और जगत् कार्य रूप ब्रह्म का स्वरूप ही है

माया—इसके दो स्वरूप है।

१—या जगत्कारण भूताभगवच्छक्ति सा योगमाया।

यह योगमाया ऐश्वर्यादि षड्धर्मों से युक्त है किन्तु—

२—दूसरी अविद्या अथवा व्यामोहिका माया है।[3]

ऋतेर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो माया यथाभासो यथातम ॥

भागवत २।९।३३

परमानन्ददास जी ने अविद्या माया की बलवत्ता की खूब चर्चा की है। उसका प्रभाव ब्रह्मा और मार्कण्डेय पर तक बताया है

'बच्छहरण अपराधते कीनौहतौ अपमान।
मारकंड ते को बड़ो मुनि ज्ञान प्रवीन ॥
माया उदधि ता नग मैं कीने मति लीन ॥ आदि

यदि भगवत्कृपा से भगवद् भक्ति का रंग चढ़ जाता है और देहाध्यास छूट जाता है, तो इस माया से छुटकारा मिल जाता है।

लगैं जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सर्व मिटि जैहै अरु विषयन को संग ॥

---

१ मोहन नन्द राय कुमार—परमानन्द सागर।

२ निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीना ताहि सब सुत करिमानो। स० न०

३ दैवी ह्येषा गुणमयी मममाया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतांस्तरंति ॥ श्रीमद्भगवद् गीता ७। १४

इस प्रकार परमानद दास जी ने भगवच्छरण और नाम स्मरण इन दो अमोघ यत्नो से माया की व्यामोहिका शक्ति से जीव की मुक्ति बताई है।

मुक्ति—परमानददास जी ने मुक्ति के नाम पर स्वरूपानद मुक्ति बताई है। सांख्यादि में जहाँ साधक को ज्ञान द्वारा देहाध्याम, अन्त करणाध्यास और प्राणाध्यामो से मुक्ति बताई है वहाँ भक्ति-पथ के पथिको के लिए भजनानद में मग्न रहकर सम्प्रदाय ने स्वरूपानद मुक्ति बताई है। भक्त के लिए गोलोक लीला का आनदानुभव ही सब कुछ है। स्वरूपानद मुक्ति से विरहित साधक सालोक्य, सामीप्यादि मुक्तियो को भी नही चाहता अत परमानन्ददास जी स्पष्ट कहते हैं

'मुक्ति देहु सन्यासिन कौ हरि, कामिन देहु काम की रास।'

इसलिए योग प्राप्ति को परमानन्द की गोपियाँ अपराध के अन्तर्गत गिनती हैं

किहि अपराध जोग लिखि पठयौ,
प्रेम भजन ते करत उदासी।
परमानन्द वैमी को विरहिन,
माँगे मुक्ति पुनराती॥

इसलिए परमानन्द मोक्ष अथवा बैकुण्ठादि गमन की वासना भी नहीं रखते

वहा करूँ बैकुण्ठहि जाय।

इसी स्वरूपानन्द मे उन्हे "निरोध" की प्राप्ति होती है।

निरोध—आचार्य वल्लभ ने अपने निरोध लक्षण ग्रन्थ मे "भगवद्विरहानुभूति" को निरोध-स्थिति बतलाया है। अन्ततोगत्वा उनके निरोध की परिभाषा पातजल योग सूत्रकार की परिभाषा 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' से मेल खा जाती है क्योंकि प्रेम की चरमानुभूति में निखिल चित्तवृतियो का अटकाव प्राणाधिक प्रियतम में हो जाता है और इस प्रकार पातजल योग सूत्र की परिभाषा भी वहाँ सही बैठ जाती है परन्तु भागवत धर्म का अवलम्बन लेने वाले भक्तो का निरोध साधन मार्ग की रूक्षता, क्लिष्टता से भिन्न सौदर्य माधुर्य प्रेमानुभूतियो से तन्मय सयोग वियोगो की दशाओ से परिपूर्ण होता है।

"कृष्णे निरुद्ध करणात् भक्ता मुक्ता भवति। — निबध

भक्त प्रवर परमानन्ददास जी ने साम्प्रदायिक निरोध तत्त्व को ही अङ्गीकार किया है। उन्होने भगवल्लीला शक्ति को ही निरोध स्थिति मानी है। आचार्य द्वारा दशमस्कध की अनुक्रमणिका श्रवण कर उसी के अनुचिंतन मे रत होकर अपनी मानसभूमि को वह कृष्ण लीलामय ही देखा करते थे और उसी स्थिति में वे वाह्य जगत से उपरत होकर अपने मनोराज्य में विचरण करते हुए कभी प्यारे कृष्ण के साथ मिलन सुख का अनुभव करते थे और कभी उनके वियोग में "क्वासि क्वासि" चिल्ला उठते थे। 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे" मे उनका वही मन्तव्य है जो आचार्य का निरोध लक्षण में "यच्च दु ख यशोदाया" के कथन करने में हैं। एक प्रकार से भगवल्लीला ही निरोध रूपा है। यही आचार्य के शिष्य सूरदास और परमानन्ददास आदि के कथन का लक्ष्य था। इसीलिए दशमस्कध का विषय "निरोध" अथवा जीव का लय रखा है। इसी को आचार्यों ने अपने शिष्यो के हृदय में स्थापित किया था। भगवान् की बाल लीला निरोध कारिणी है। बाल लीला मे मानवमन बडी शीघ्रता के साथ लय होता है। यही स्वरूपासक्ति है। परमानन्ददास जी मे स्वरूपासक्ति जन्य निरोध लीला परक निरोध और विप्रयोग जन्य निरोध तीनो प्रकार की निरोध स्थिति के उदाहरण मिल जाते है।

परमानन्ददास जी की भक्ति

परमानन्ददास जी सर्वोपरि भक्त हैं, कवि गायक अथवा कीर्तनकार पीछे। उन्होंने भारतीय तत्व चिंता के अन्तर्गत भक्ति मार्ग की सुगम व्यावहारिकता को ही पसन्द किया और उसे ही अपनाकर उसी को अपना लक्ष्य बनाया था।

भारतीय साधना क्षेत्र में प्रेम साधना या भक्ति साधना उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव स्वयम्। आर्य सभ्यता का उष काल भक्ति-साधना की ही अरुणिमा से रक्ताभ था वही रक्तिमा ज्ञान, कर्म और उपासना सभी के लिये प्रेरणादात्री बनी। अत: भक्ति साधना उतनी ही पुरातन है जितनी कि मानव की अन्य भावनायें। इसी भक्ति के विकसित रूप को लेकर परवर्ती उपासकों ने साहित्य को भावापन्न बना दिया और साहित्य को 'सहित' का भाव दे दिया। वेद उपनिषद्, ब्राह्मण आरण्यक और बाद के श्रुति स्मृति पुराणादि सभी ने भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन एक स्वर से किया।[1] भागवत जो सबसे अन्तिम और विकसितम पुराण है इसीलिए भक्तिमय है। उसका लक्ष्य नितान्त भक्ति प्रतिपादन करना है, अत आचार्य वल्लभ ने उसे 'समाधि भाषा' के नाम से अभिहित किया है। उनका सम्पूर्ण पुष्टि मार्ग भागवत पर ही आधारित है। भागवत को आधार मान कर चलने वाले निखिल भारतीय भागवत धर्म भक्ति तत्व प्रधान है। भक्ति के आगे वे जप, तप, तीर्थाटन आचार विचार व्यवहारादि को कुछ नहीं समझते। केवल निष्केवल प्रेम स्वरूपा भक्ति को महत्ता देते है। इसके दो रूप हैं

१—वैधी भक्ति।

२—प्रेम लक्षणा रागानुगा भक्ति।

वैधी भक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति आती है और प्रेम लक्षणा अथवा रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत 'गोपी भाव' का समावेश है।

परमानन्द दास जी ने 'ताते नवधा भगति भली' कह कर वैधी भक्ति का सम्मान किया अवश्य है किन्तु उनका लक्ष्य रागानुगा प्रेमलक्षणा भक्ति ही था। उसी की प्राप्ति के लिए उनका चरम उद्योग था। आचार्य ने उसे ही एक मात्र प्राप्य बताया है और उसकी अधिकारिणी गोपियो को अपना 'गुरू' बताया है।[2] 'गोपी भाव' वाले विरले भक्त जनो को उन्होंने शुद्ध पुष्ट जीवों की अन्यतम कोटि में रखकर अन्य सभी प्रवाही, मर्यादामार्गी, पुष्टि-पुष्ट जीवों को उनसे निम्न भूमि पर स्थित बतलाया है। यही भक्त 'प्रियतम सगम सजात हास्य रूप सलिल' में अवगाहन करता है और प्रिय के चर्वित तांबूल का अधिकारी बन कर "करुणाकृतस्मितावलोकन" का भाजन बन जाता है। परमाराध्य के चरणों में उसकी निस्सीम प्रणति और प्रकृष्ट दैन्य ही उसकी मध्यादि उपासना है। रस ही इस भक्त का जीवन, रस ही प्राण और रस ही इसकी संपत्ति है। इसी की स्थिति को लक्ष्य कर भागवतकार ने कहा है

"त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्"

परमानन्ददास जी ने जहाँ वैधी भक्ति की चर्चा की है वहाँ गोपी भाव[3] की भी चर्चा की है। 'अन्यपूर्वा गोपी इसी कोटि की भावुक भक्ताये हैं। उन्ही को लक्ष्य कर परमानन्द दास जी कहते हैं:

'परमानन्द स्वामी मन मोहन, श्रुति मरजादा पेली।'

---

१ वेदा श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैवहि।
गमाधिभाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम्॥

२ गोप्यस्तु अस्माक गुरू.—आचार्य वल्लभ।

३ सहज भाव।

यहाँ लोक वेद से परे प्रेमलक्षणा भक्ति निरोध रूपा है। इसी गोपी प्रेम की प्रशमा ज्ञानी भक्त शुक और व्यास जैसे भक्त किया करते है।

परमानन्ददास गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कही री।

यही उष्ण भक्ति है

जो रस निगम नेति नित भाख्यौ।
ताकौं तें अधरामृत चाख्यौ।।

अत गोपिकायें प्रेम के क्षेत्र में सर्वोच्च हैं

"गोपी प्रेम की धुजा"

भक्ति के दोनो रूप वैधी एव रागानुगा के अतिरिक्त परमानन्ददास जी में षड्विधा शरणागति द्विविध आसक्तियाँ— स्वरूपासक्ति एव लीलासक्ति के भी दर्शन होते हैं। भक्ति की सातो भूमिकायें, दीनता, मानमर्षिता, भय दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, विचारणा सभी के दर्शन हो जाते हैं। इसी प्रकार तीनो प्रकार की प्रपत्तियाँ—

१—भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार।

२—भक्तकृत भगवान् का स्वीकार।

३—भक्त और भगवान् दोनो का परस्पर स्वीकार आदि के उनमें उदाहरण मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त।

आनुकूल्यस्य सकल्प प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षयिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरण तथा।
आत्म निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागति ।।

के सभी स्वरूपो के उदाहरण मिल जाते है।

परमानन्ददास जी के काव्य में भक्ति, पपत्ति के सभी स्वरूपों के अतिरिक्त नारदीय भक्ति सूत्रोक्त एकादश आसक्तियो के भी दर्शन होते हैं। यद्यपि प्रेमस्वरूपासक्ति एक तथा अखण्ड हैं तथापि गुण माहात्म्यसक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति आत्म निवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति, आदि सभी के उदाहरण उनके काव्य में मौजूद है।

भक्ति तत्व के निरूपण में कवि ने उसके सभी पोषक अङ्गो को यथा स्थान समाविष्ट किया है। अत नाम माहात्म्य, गुरू महिमा, अनन्यता सम्प्रदाय के प्रति चरम आस्था, गुरूमन्त्र मे अगाध विश्वास, सत्सग और षडग-सेवा-साधना, सभी को परमानन्ददास जी ने मुख्यता दी है। उन्होने भगवन्नाम को सर्वोपरि, सर्व समर्थ- सर्वकल्मपापह माना है।

'काम धेनु हरिनाम लियौ।' आदि। भक्ति की पोषिका 'सेवा' को भी कवि भूला नही। उसने सेवा पर बडा महत्त्व दिया है। स्वय वह श्रीगोवर्धननाथ जी की कीर्तन सेवा में अहर्निश तत्पर रहता था। सेवा भक्ति के प्रथम सोपान 'दैन्य' की जननी है और सेव्य के प्रति चित्त को केन्द्रित रखती है 'चेतस्तत्प्रवणम्' के अनुसार सेवा से ही चित्त की प्रवणता या तदाकार परिणति होती है। सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचार्य जी ने भक्ति वर्द्धिनी में कहा है

सेवाया वा कथाया वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीव तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम।।

भक्तिवर्द्धिनी ६

अत. अष्टयाम सेवा सम्प्रदाय की अष्टदर्शन विधि वाली नित्य सेवा के नित्य कीर्तन परमानन्ददास जी ने प्रस्तुत किए हैं। इन आठो दर्शन के तत्व श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध में निहित है।

साथ ही नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मो का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण कमलो का चिंतन एव लीला कथा का श्रवण आदि पञ्च सेवा का निर्वाह भी परमानददास जी के पदो में उपलब्ध है।

साराश यह कि भक्ति के सम्पूर्ण साधनो को अपने भक्ति-सिद्धात में समाविष्ट कर परमानददास जी ने 'गोपीभाव' को ही अपना आदर्श माना है। यह 'गोपी भाव' उनकी भक्ति का 'बीज भाव' है। इस भाव से जीव कभी भी विनाश को प्राप्त नही होता।[1] यह 'गोपीभाव' राधा वल्लभीय अथवा चैतन्य के सखीभाव से भिन्न है। उन दोनो सम्प्रदायो के सखी भाव का स्वरूप राधा का कैंकर्य या राधा का दास्य भाव है। "यह भाव सर्वथा संगोप्य है और साधक इसे यदि प्रकाश में ले आवे तो उसे नरक की प्राप्त होती है।"[2] आदि

परन्तु परमानददास जी का 'गोपीभाव' वह पुष्टिशिखर वाला गोपीभाव है जिसमें 'अस बाहु' देकर परिरंभण आलिंगन पूर्वक चर्व्वित ताबूल दिया जाता है।[3] जिसमे क्षण मात्र का विलब भी असह्य है। एक चुटकी का समय युग जैसा विदित होता है।

'गोपीभाव' वाली रागानुगा किंवा प्रेम लक्षणा एकान्त भक्ति के परम पोषक होते हुए भी परमानददास जी ने वैधी भक्ति का तिरस्कार किया हो ऐसी बात नहीं। उन्होंने अधिकारी भेद से दोनो ही प्रकार की भक्ति को साध्य बताया है। वैधी भक्ति को वे भवताप पीडित-मानव के लिए भली अथवा सुगम बताते है।[4] प्रभु चरण हरिराय जी ने अपने भक्ति द्वैविध्य निरूपण नामक ग्रथ में इसको प्रथमा कहकर शीतला बतलाया है तथा रागानुगा को दुर्लभ अथवा ऊष्ण कहकर गोप सीमन्तिनियो द्वारा ही साध्य बतलाया है।[5] परमानददास

---

१ बीज दाढ्य प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मत —भ व २

× × × ×

यावज्जीव तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम—भ व ६

२ सखी भाव विनानैव स्मरणे गुण कीर्तने।
पूजने वा तयोर्देवि ! कथञ्चिदधिकारिता॥
सगोपयेन्निज भाव न परेभ्य प्रकाशयेत्।
प्रकाशे सिद्धि हानि स्यान्नरक चापि गच्छति॥
आत्मान चिन्तयेत्तस्मात्किशोरीं प्रमदाकृतिम्।
राधिकानुचरी भूता राधा दास्यैकतत्पराम्॥
रुद्रयामले—अष्टयाम सेवाविधि।

३ तत्रैकासगत बाहु कृष्णस्योत्पल सौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह॥
कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम्
गण्डगण्डे सन्दधत्या अदात्ताबूल चर्वितम्॥ भाग १०, ३३, १२-१३

४. ताते नवधा भगति भली। प० सा०

५ प्रथमा शीतला भक्तिर्यत. श्रवण कीर्तनात्।
तत्रैव मुख्य सम्बन्ध सुलभा नारदादिषु॥
द्वितीया दुर्लभा यस्मादधरामृत सेवनात्।
तद्भाव भावना रूपा विरहानुभवात्मिका।
गोप सीमन्तिनीनाच सा दत्ता हरिणा स्वत.॥ भ० द्वै, निरू०—२—३

जी ने भक्ति के किसी भी स्वरूप को छोडा नही है। उनके पद आचार्य द्वारा निर्दिष्ट प्रेम के तीनो ही सोपान—स्नेह, आसक्ति और व्यसन के महाभाष्य स्वरूप ही हैं। उनके पदो में तीनो प्रकार की आसक्तियो के दर्शन होते हैं—

(१) स्वरूपासक्ति (२) लीलासक्ति (३) भावासक्ति। (१) स्वरूपासक्ति परक पदो में भगवान् कृष्ण के दिव्य सौंदर्य का चित्रण है। (२) लीला परक पदो में उनकी लीलासक्ति तथा भावासक्ति में गहन विरहानुभूति के दर्शन होते हैं। आत्मनिवेदन परक पदो में अनन्यता, गुरु गोविंद में अभेद दृष्टि, सत्सग में श्रद्धा एव भगवत्सेवा में तन्मयता के साथ उनकी उच्चकोटि की भक्ति भावना पदे पदे प्रकट होती है।

भगवल्लीला

भक्ति निरूपण के उपरान्त जीव की निरोध दात्री भगवल्लीला पर परमानन्ददास जी ने बडा महत्व दिया है। आचार्य महाप्रभु जी से भागवत दशमस्कध की अनुक्रमणिका श्रवण कर वे पद रचना मे प्रवृत्त हो गए थे। सुबोधिनी के अनुसरण का उन्हे व्यसन था। दशमस्कध में भी उन्हे 'तामस प्रकरण' ही अतिशय प्रिय था। तामस जीवो की निरोधस्थति दशमस्कध के श्रवण से ही होती है अत कवि को भागवत के वे ही प्रसग अतिशय प्रिय लगे जिनमें भगवान् ने तामसजीवो का उद्धार किया है। भगवान् की अहैतुकी कृपा और महीयसी महिमा के अनवरत चिंतन के कारण कवि के विशाल मानस मे लीलाब्धि अहर्निश तरगायित रहता था। उसने अपने भाव-लोक में भगवल्लीला के प्रत्यक्ष दर्शन किए थे। अत लीला-गान उसका भावोद्गार था। स्वय लीला रसात्मक एव आनन्दात्मक है। वह पूर्ण निरपेक्ष एव स्वतत्र है और वह निताात प्रभु इच्छा है। लीला में और प्रभु-भक्ति में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अर्थात् लीला में चरम आसक्ति ही प्रेम का चरम स्वरूप है। दोनों अपने अन्तिम बिन्दु पर एक हैं। लीला निरोधलक्ष्यैका है। इसीलिए 'लीला वस्तु कैवल्यम्' कहा गया है। सुबोध रत्नाकर कार ने इसे "अनायास हर्षपूर्वक[1] की गई चेष्टा" कहा है। इसी कारण व्रज के निस्साधन तामस भक्तो का भगवान ने अपनी विविध लीलाओ द्वारा निरोध किया है। ये लीलाएँ व्रज भक्तो को आनन्द देने वाली अथवा निरोध प्राप्ति कराने वाली थी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददास जी ने अपने लीला विषयक पदों में मुख्य रूप से दशमस्कध और उसमें भी पूर्वार्द्ध ही को लिया है। वे पुरुषोत्तम परब्रह्म को लीला नायक सगुण अवतारी कृष्ण रूप में भूभार के हरण करने वाले बतला करके भी यशोदोत्सगलालित व्रज-जन-पालक, क्रीडा नायक सिद्ध करते हैं। इस 'चारु क्रीडा' का उद्देश्य वही आनन्दमय भक्त-मन-रजन है, जो ज्ञानी समाधि द्वारा प्राप्त करता है। परमानन्द ने अपना लीला वर्णन दोनो ही प्रकार का भागवत सापेक्ष और भागवत निरपेक्ष रखा है। लीला विषयक अनेक पद भागवत की कथा प्रसग को अक्षुण्ण रूप में प्रस्तुत करते हैं और अनेक पदो में कवि की मौलिक कल्पना भी है। जिसमें भगवन्माहात्म्य, भक्त की दीनता भगवान की अतुलित सामर्थ्य और कृपावत्सलता की चर्चा है। इस प्रकार कही तो कवि ने तत्परता के साथ भागवत का अनुसरण किया है और कहीं वह स्वतत्र हो गया है। राधा की चर्चा, के अतिरिक्त उद्धव प्रसगादि में कुछ ऐसे प्रकरण हैं जो नितान्त भागवत निरपेक्ष हैं।

---

१ अनायासेन हर्षात्क्रियमाणा चेष्टा लीला। सु० र० का० ६ पृ० २

परमानन्द सागर मे कृष्ण, राधा, गोपियाँ और रास

परमानददास जी का सपूर्ण काव्य पुष्टि सप्रदाय की परम मर्यादा लिए हुए है। आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेने के उपरान्त वे सप्रदाय मे इतने अभिभूत हो गए थे कि उनके राजमार्ग को छोडकर वे एक इच भी इधर उधर नही भटकते थे। अत कृष्ण, राधा, गोपी, रास, मुरली आदि सभी के विषय मे उनकी सम्प्रदायानुकूल मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं।

कृष्ण—परमानन्ददास जी के कृष्ण सप्रदाय की मान्यताओ के अनुकूल परमात्मा, रसेश, भावनिधि, परमकारुणिक विरुद्धधर्माश्रयी ब्रह्म हैं जो निकुञ्ज लीला नायक हैं जिनके विषय मे श्रीमद्भागवत का कथन है—'एते चाशकला प्रोक्ता कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इधर परमानन्ददास जी भी कहते हैं :

"वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म वैकुण्ठ निवासी।"

अत वह भुवन-चतुर्दश-नायक लीलावतारी निकुञ्ज नायक है।

राधा—परमानन्द दास जी ने कृष्ण की भाँति राधा की भी वधाई गाई है और राधा को कृष्ण की प्रिया, स्वामिनी, स्वकीया एव ह्लादिनी शक्ति माना है। राधा तत्व उन्होंने आचार्य चरण से ही ग्रहण किया है। भागवत के 'अनयाराधितोनूनम्' मे राधा की खीचतान है। राधा की चर्चा श्रीमद्भागवत को छोडकर ब्रह्मवैवर्त पुराण, भविष्य पुराण, पद्म पुराण, स्कद पुराण, देवी भागवत, नारद पाचरात्र, निर्वाण तत्र राधा तत्र आदि मे मिलती है। इनमें बहुत से ग्रथ आचार्य वल्लभ के पूर्व के हैं। अत आचार्य ने 'गोपी भाव' को श्रीमद्भागवत से तथा राधातत्व अन्यान्य पुराणो से लिया है। राधा विषयक आचार्य का प्रभाव उनके दोनो शिष्यो अथवा 'सागरो' पर भी स्पष्ट है। 'राधा तत्व' इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक है कि परिवृढाष्टक में आचार्य ने एक 'पशुपजा' अथवा गोपकन्या की चर्चा की है। वह अन्य कोई नही, भगवान् कृष्ण की आद्याशक्ति राधा ही हैं। परमानन्द दास जी ने राधा को भी कृष्ण की भाँति रसेश्वरी एव रासेश्वरी माना है।

'रसिकिनी राधा पलना झूले' से लेकर
धन धन लाडिली के चरन।
"नन्द सुत मन मोद कारी सुरत सागर तरन"

तक उन्होंने राधा कृष्ण की युगल-लीला के शताधिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन सब के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी राधा स्वकीया है। राधा की प्रीति अलौकिक है। वे साक्षात् आद्याशक्ति और लक्ष्मी का अवतार है। अवस्था मे वे कृष्ण से दो वर्ष बडी है। वे अतिशय कष्ट सहिष्णु, मौन, रूपमुग्धा मानवती, विदग्धा एव सुरत दक्षा है। उनका प्रणय क्रम क्रम से विकसित होकर परिणय मे पर्यवसित हुआ है।

गोपी—परमानन्ददास जी ने 'गोपी भाव' अथवा गोपी तत्व श्रीमद्भागवत तत्पश्चात् आचार्य वल्लभ से पाया। यह गोपीभाव भागवतोक्त भक्ति का लक्ष्य है। परमानन्ददास जी ने गोपियो को 'प्रेम की धुजा' कह कर स्मरण किया है। 'गोपी भाव' एक भाव है. यह प्रेम की उच्चतम स्थिति का ही नाम है जो लोक-वेद मर्यादा से परे है। यो तो परमानन्ददास जी ने सभी प्रकार की गोपियो की चर्चा की है किन्तु उनका प्रतिपाद्य गोपी भाव' 'अन्यपूर्वा गोपी भाव' है। इसी को 'स्त्रीभाव' या गूढभाव पुकारा गया है।

मुरली—इसका मूल स्रोत भी अन्य प्रसगो के मूल स्रोत की भाँति भागवत का वेणु गीत है। यह वेणु प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतीक स्वरूप है। परमानन्ददास जी ने इसमे

---

१ सहज भाव।

(

जी ने भक्ति के किसी भी स्वरूप को छोडा न
तीनो ही सोपान—स्नेह, आसक्ति और व्यसन
प्रकार की आसक्तियो के दर्शन होते हैं—

(१) स्वरूपासक्ति (२) लीलासक्ति
में भगवान् कृष्ण के दिव्य सौंदर्य का चित्रण है
तथा भावासक्ति में गहन विरहानुभूति के दर्शन
गुरु गोविंद मे अभेद दृष्टि, सत्सग में श्रद्धा एव
की भक्ति भावना पदे पदे प्रकट होती है ।

भगवल्ल

भक्ति निरूपण के उपरान्त जीव की निर
ने बडा महत्व दिया है । आचार्य महाप्रभु जी से
कर वे पद रचना में प्रवृत्त हो गए थे । सुबो
दशमस्कध में भी उन्हें 'तामस प्रकरण' ही अतिशय
दशमस्कध के श्रवण से ही होती है अत कवि को
जिनमें भगवान् ने तामसजीवो का उद्धार किया है ।
महिमा के अनवरत चिंतन के कारण कवि के विशार
रहता था । उसने अपने भाव-लोक में भगवल्लीला
गान उसका भावोद्गार था । स्वय लीला रसात्मक
एव स्वतत्र है और वह नितात प्रभु इच्छा है । लीला
सम्बन्ध है । अर्थात् लीला में चरम आसक्ति ही प्रे
अन्तिम बिन्दु पर एक हैं । लीला निरोधलक्ष्यैका
कहा गया है । सुबोध रत्नाकर कार ने इसे "अनायास
इसी कारण ब्रज के निस्साधन तामस भक्तो का भग
निरोध किया है । ये लीलाएँ ब्रज भक्तो को आनन्द
वाली थी ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददास
मुख्य रूप से दशमस्कध और उसमें भी पूर्वार्द्ध ही
को लीला नायक सगुण अवतारी कृष्ण रूप में भूभार वे
यशोदोत्सगलालित ब्रज-जन-पालक, क्रीडा नायक सिद्ध
उद्देश्य वही आनन्दमय भक्त-मन-रजन है, जो ज्ञानी समा
ने अपना लीला वर्णन दोनो ही प्रकार का भागवत सापेक्ष
लीला विषयक अनेक पद भागवत की कथा प्रसग को अक्षुण्ण
पदों में कवि की मौलिक कल्पना भी है । जिसमे भगवन्माहा
अतुलित सामर्थ्य और कृपावत्सलता की चर्चा है । इस
के साथ भागवत का अनुसरण किया है और कही वह स्व
के अतिरिक्त उद्धव प्रसगादि में कुछ ऐसे प्रकरण हैं जो नितात

१ अनायासेन हर्षात्क्रियमाणा चेष्टा लीला । सु० र

काव्य पक्ष

अष्टछाप के कवियो का मुख्य उद्देश्य कविता करना नही अपितु भगवान् की कीर्तन सेवा करना था। अत वे मुख्य रूप से भक्त एव कीर्तनकार हैं, कवि नही। फिर भी सहस्रावधि गेय पदो की रचना करने से उनका कवि रूप स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है और भगवान् की लोकपावनी लीला गान के कारण उनका कवि स्वरूप सहज सभाव्य हो जाता है। अपनी मधुरतम काव्य वस्तु के कारण वे भक्त, सगीतज्ञ एव कवि तीनो ही रूपो में जनता के समक्ष आते हैं। जहाँ उनकी भक्ति का स्वरूप उनके लीलापरक पदो से प्रकट होता है, वहाँ उनका कवि रूप भी उनके पदो से झलकता है। अष्टछाप के सभी कवि महानुभाव मुक्तक गेय शैली के कवि हैं। इस शैली मे स्वभावत भावो का उद्गार, वर्णन की सक्षिप्तता, सगीत की मधुरता, कोमल कातपदावली की सरसता, भावपूर्ण कोमल प्रसगो की योजना रहती है। रसेश्वर भगवान् कृष्ण की व्रज लीलाएँ मुक्तक गेय पद शैली के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त हैं। सभी अष्टछापी कवियो ने इसी गेय शैली को भगवल्लीला गान के लिए अपनाया है। इस शैली में परमानददास जी ने निम्नाकित भगवल्लीलाओ का गान किया है।

(१) श्रीकृष्ण स्तुति।
(२) श्रीकृष्ण जन्म, बधाई छठी, पलना, करवट, उलूखल, देहली उल्लघन आदि।
(३) बाल लीला, मृत्तिका भक्षण, विश्वदर्शन।
(४) राधाजन्म बधाई।
(५) भगवान् के पालने के पद।
(६) गोदोहन, गोचारण, माखन चोरी आदि।
(७) गोपियो का उपालम्भ यशोदा का प्रत्युत्तर आदि।
(८) राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति प्रेमालाप हास्य विनोद आदि।
(९) राधा कृष्ण मिलन, गोपी प्रेम, वन-लीला आदि।
(१०) दान-लीला, पनघट, प्रसग, गोपियो की स्वरूपासक्ति आदि।
(११) गोवर्धन लीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।
(१२) वन से प्रत्यागमन, गोपियो की उत्कठा।
(१३) राधा-मान, का दूती कार्य।
(१४) गोपियो की आसक्ति, राधा, कृष्ण-सौदर्य-वर्णन।
(१५) रास निकुञ्ज लीला, मुरली, राधा कृष्ण की युगल लीला वन विहार, सुरतान्त शृङ्गार।
(१६) खडिता के पद, गोपियो का उपालम्भ।
(१७) वसन्त, होली, चॉचर, धमार, फूलडोल, आदि के पद।
(१८) कृष्ण का मथुरा गमन।
(१९) गोपियो का विरह।
(२०) उद्धव का व्रज में आगमन भँवर गीत।
(२१) व्रज माहात्म्य, व्रज भक्तो का माहात्म्य।

आधिदैविकत्व का आरोप किया है। मुरली रव मे समाधि दात्री शक्ति की उन्होने चर्चा की है। मुरली स्वभाव से रस स्वरूपा है। कोई-कोई गोपी अपन को उसकी 'चेरी' बताती है।

"हों तो या बनेउ की चेरी"

परमानन्ददास जी ने उसे भगवान् की दिव्य शक्ति माना है। भक्तो का उससे निरोध होता है। इसका अद्भुत प्रभाव चराचर पर व्याप्त है।

यमुना—सप्रदाय मे यमुना का बडा महत्त्व है वे कृष्ण की 'तुर्यप्रिया है' है। उनके दो रूप हैं। स्त्री रूप में वे चतुर्थ यूथकी स्वामिनी है और यह उनका आधिदैविक रूप है। दूसरा उनका जल प्रवाह रूप है यह उनका आधिभौतिक रूप है। परमानन्ददास जी ने यमुना विषयक अनेक पद लिखे हैं जिनमे उन्होने यमुना का साम्प्रदायिक रूप अक्षुण्ण रखा है। इस प्रकार यमुना के आधिदैविक एव आधि भौतिक दोनो ही रूपो की भावना की है। यह माहात्म्य उन्होने जगद्गुरू वल्लभाचार्य से पाया है।

'तीर्थ माहात्म्य जग जगतगुरू सौ परमानन्ददास लही।"

रास—भागवत में रास लीला प्रसग पर पाँच अध्याय है। इस 'चारु क्रीडा' का आध्यात्मिक रहस्य है। परमानन्ददास जी ने रास क्रीडा का वर्णन भागवत के आधार पर किया है। अत रास के अलौकिकत्व की उन्होंने चर्चा की है।

यह तो स्पष्ट ही है कि परमानन्ददास जी के लीला विषयक पद मुख्यत श्रीमद्भागवत के आधार पर है। उन्होने भगवान् कृष्ण के बाल, पौगड और किशोर लीला का ही मुख्य रूप से वर्णन किया है। अपने लीला विषयक पदो में मे वे अपनी स्वाभाविक कल्पना, मौलिकता के साथ आचार्यकृत सुबोधिनी पर समाश्रित है।

महारास मे उन्होने अन्यपूर्वा अनन्यपूर्वी दोनो ही प्रकार की गोपिकाओ का समावेश किया है। सभी गोपिया कान्ताभाव में लीन हैं। उस 'चारू क्रीडा' को देखकर नभ मे देवगण भी अपने विमान सचालन को भूल गए हैं—

"सूर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्ददास।"

ब्रज—गोपिकाएँ 'लोक वेद की कानि' भुलाकर महारास मे सम्मिलित हुई हैं। भागवत कार कहते हैं कि जो लोग इस कृष्ण क्रीडा का गान करेंगे उन्हे परा भक्ति की प्राप्त होगी[२] परमानन्ददास जी ने भी रास-वर्णन पराभक्ति के प्राप्त करने की दृष्टि से ही लिखा है। उनके दो ही प्रसग अत्यन्त महत्वपूर्ण है - रासक्रीडा तथा गोवर्धन धारण। रसात्मा, रसेश श्रीकृष्ण की यह चारु क्रीडा' उन्होने कही भागवत सापेक्षा और कही भागवत निरपेक्ष होकर प्रस्तुत की है। ललिता चन्द्रावली राधादि सहचरियो की चर्चा उन्होने भागवत से पूर्ण स्वतत्र होकर की है। उनका रास लीला वर्णन दिव्य है। और कृष्ण की पूर्णत काम पर विजय है।

चदन मिटत सरस उर चदन देखत मदन महीपति भूल।'

सक्षेप मे वे भागवतकार के मूल भावो की सुरक्षा के साथ अपनी मौलिकता नही भूले है,

---

१ सहजभाव

२ विक्रीडित व्रजवधूभिरिद च विष्णो ।
श्रद्धान्वितोऽनुश्रणुयादथ वर्णयेद्य ।।
भक्ति परा भगवति प्रतिलभ्य काम ।
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर ।।
भाग० १०।३३।४०

काव्य पक्ष

अष्टछाप के कवियों का मुख्य उद्देश्य कविता करना नहीं अपितु भगवान की कीर्तन सेवा करना था। अतः वे मुख्य रूप से भक्त एवं कीर्तनकार हैं, कवि नहीं। फिर भी सहस्त्रावधि गेय पदों की रचना करने से उनका कवि रूप स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है और भगवान् की लोकपावनी लीला गान के कारण उनका कवि स्वरूप सहज संभाव्य हो जाता है। अपनी मधुरतम काव्य वस्तु के कारण वे भक्त, संगीतज्ञ एवं कवि तीनों ही रूपों में जनता के समक्ष आते हैं। जहाँ उनकी भक्ति का स्वरूप उनके लीलापरक पदों से प्रकट होता है, वहाँ उनका कवि रूप भी उनके पदों से झलकता है। अष्टछाप के सभी कवि महानुभाव मुक्तक गेय शैली के कवि हैं। इस शैली में स्वभावतः भावों का उद्गार. वर्णन की संक्षिप्तता, संगीत की मधुरता, कोमल कांतपदावली की सरसता, भावपूर्ण कोमल प्रसंगों की योजना रहती है। रसेश्वर भगवान् कृष्ण की व्रज लीलाएँ मुक्तक गेय पद शैली के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त हैं। सभी अष्टछापी कवियों ने इसी गेय शैली को भगवल्लीला गान के लिए अपनाया है। इस शैली में परमानन्ददास जी ने निम्नांकित भगवल्लीलाओं का गान किया है।

(१) श्रीकृष्ण स्तुति।

(२) श्रीकृष्ण जन्म, बधाई छठी, पलना, करवट, उलूखल, देहली उल्लंघन आदि।

(३) बाल लीला, मृत्तिका भक्षण, विश्वदर्शन।

(४) राधाजन्म बधाई।

(५) भगवान् के पालने के पद।

(६) गोदोहन, गोचारण, माखन चोरी आदि।

(७) गोपियों का उपालम्भ यशोदा का प्रत्युत्तर आदि।

(८) राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति प्रेमालाप हास्य विनोद आदि।

(९) राधा कृष्ण मिलन, गोपी प्रेम, वन-लीला आदि।

(१०) दान-लीला, पनघट, प्रसंग, गोपियों की स्वरूपासक्ति आदि।

(११) गोवर्धन लीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।

(१२) वन से प्रत्यागमन, गोपियों की उत्कंठा।

(१३) राधा-मान, का दूती कार्य।

(१४) गोपियों की आसक्ति, राधा, कृष्ण-सौंदर्य-वर्णन।

(१५) रास निकुञ्ज लीला, मुरली, राधा कृष्ण की युगल लीला वन विहार, सुरतान्त शृङ्गार।

(१६) खंडिता के पद, गोपियों का उपालम्भ।

(१७) वसन्त, होली, चाँचर, धमार, फूलडोल, आदि के पद।

(१८) कृष्ण का मथुरा गमन।

(१९) गोपियों का विरह।

(२०) उद्धव का व्रज में आगमन भँवर गीत।

(२१) व्रज माहात्म्य, व्रज भक्तों का माहात्म्य।

(२२) श्री यमुना जी का माहात्म्य, गगा जी का माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य, भक्ति का माहात्म्य, गुरू महिमा ।

(२३) स्वसमर्पण, दैन्य, विनय, आत्म प्रबोध ।

(२४) महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा उनके सात पुत्रो की बधाई ।

(२५) नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती, रामनवमी आदि के पद ।

इन प्रसगो के अन्तर्गत वर्षभर के उत्सव, तथा नित्य सेवा में गाए जाने वाले पद, आदि सभी का समावेश है । इसका तात्पर्य यही है कि परमानन्ददास जी का काव्य विषय दशम स्कध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है । इन्ही सरस, कोमल, रमणीय प्रसगो को लेकर कवि अपने काव्य जगत् में रमता रहा है । इन प्रसगो में उसकी गेय शैली मे जिस उच्च कोटि की भावुकता अवतीर्ण हुई है, उसके कारण वह 'सूर के टक्कर' का कहा जाने लगा । गेय शैली की लम्बी परम्परा इन अष्टछापी कवियो मे और विशेषकर सूर परमानन्द मे जितनी निखरी उतनी न इनसे पूर्व न पश्चात् । परमानन्ददास जी मे दोनो शैलियो—

(१) कथात्मक गेय पद शैली ।

(२) प्रसगात्मक गेय पद शैली ।

के दर्शन होते हैं । इन्ही में कवि ने कृष्ण लीला के लोक मगल और लोकरजक दोनो ही पक्षो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है ।

गेय शैली की इस प्रधानता के कारण यह न समझना चाहिए कि इन कवियो में प्रबन्ध काव्य लिखने की भावना या क्षमता ही नही थी । कृष्ण लीला को मुक्तक गेय पदो में प्रस्तुत करने का प्रधान कारण था—आचार्य का कीर्तन-सेवा का आदेश । भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष राग सेवा करते हुए लीलात्मक अनन्त पद इनके मुख से निस्सृत होते थे, उन्हे स्वान्त सुखाय से पहले भगवत्सुखाय गान करना ही इनका लक्ष्य था । साहित्यिक दृष्टिकोण अथवा प्रबधात्मक भगवच्चरित वर्णन परम्परा को आगे न बढ़ाकर इन्हे लीलात्मक कीर्तन परम्परा को ही आगे बढाना था । दूसरे, ये लोग सख्य भाव के उपासक थे । तीसरे, कृष्ण चरित जितना मुक्तक गेय शैली के अनुकूल पडता है उतना प्रबन्ध शैली के लिए नही । इसलिए ये 'दोनों सागर' भगवत्प्रसगो को एक स्वतन्त्र मुक्त पद में निबद्ध कर सगीतात्मकता के साथ श्रीनाथ जी के चरणो मे भाव-विनियोग के रूप में कर दिया करते थे ।

पदो का भाव पक्ष—कवि मुख्यत शृङ्गार—सयोग एव विप्रलम्भ—का ही कवि है । परन्तु भगवान् की बाल किशोर एव पौगण्ड लीला भी उसका प्रियविषय रही हैं । अत. उसके पदो मे वात्सल्य भाव का भी उच्च कोटि का चित्रण हुआ है । बाल चेष्टा, बाल स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा उसने वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है । बाल-दशा के वर्णन में कवि की उच्च कोटि की चित्रोपमता सूर के कोटि की है । बाल मनोविज्ञान मे वह सूर की भाँति पण्डित है । प्रत्येक वर्णन मे उच्च कोटि की सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता के साथ पाठक को तन्मय कर देने की क्षमता है । यदि अन्तिम पक्ति में से कवि का नाम हटा लिया जाय तो उसके पदो में और सूर के बाल लीला के पदो में कोई स्पष्ट अन्तर ही नही रह जाता है । साथ ही कवि ने पाँच से सात वर्ष तक की अवस्था के

इतने मधुर मनोहर सरस चित्रोपम प्रसग प्रस्तुत किए हैं कि पाठक रसमय होकर एक निराले भाव-लोक में विचरने लगता है[1]। माता की ममता के इतने सरस मधुर चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

रस व्यजना—भाव चित्रण के उपरान्त परमानन्ददास जी ने शृङ्गार के उभय पक्षो को लिया है। भगवान् की किशोर लीला राधा के साथ प्रथम परिचय तदुपरान्त अनुदिन वृद्धिगत प्रेम के क्रमिक विकास का जो मोहक चित्र कवि ने दिया है वह साहित्य की अनुपम निधि तो है ही, रसमय अनुभूतियो की पराकाष्ठा भी है। प्रेम के विविध रूपो एव अनुभूतियो के नाना मार्मिक पक्षो के उद्घाटन में कवि की वृत्ति जितनी रमी है उतनी अन्य किसी रस में नहीं। सयोग के चरम और सुरतान्त वर्णन के उपरान्त मानजनित, प्रवासजनित आदि सभी प्रकार के विरह वर्णन में कवि ने मानो हृदय निकाल कर रख दिया है। यहाँ रसराज शृङ्गार के दोनो पक्षो सयोग और वियोग के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

संयोग पक्ष

१— आज तुम ह्याँ ही रहो कान्हर प्यारे।
निसि अँधियारी भवन दूर है चलत सकल धो हारे।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरवरै की छाँह।
नन्द के लाल तुम निकट रहौंगी देहुँगी उसीसे बाँह।
सग के सखा सब घर कौं बिदा करो हम तुम रहेंगे दोऊ।
'परमानन्द' प्रभु मन राधा भावै अनख करो मति कोऊ॥

२— मदन गोपाल बलैया लैहो।
वृन्दाविपिन तरनितनया तट चलि ब्रज नाथ अलिंगन देहौं।
सघन निकुञ्ज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं।
त्रिगुण समीर पथ जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली एहौं।
'परमानन्द' प्रभु चारु वदन को उचित उगार मुदित ह्वै खैहो॥

३— कुज भवन में पौढे दोऊ।
× × ×

४— मारग छोडि अब देहु कमल नयन मन मोहना।
× × ×
सुरत समागम रमि रह्यौ नदी जमुना के रेत।

५— राधा भाग सौं रस रीति बढी।
सादर करि भेंटी नद नदन दूने चाऊ चढी॥
वृन्दावन में क्रीडत दोऊ जैसे कुजर क्रीडत करनी।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहना ताहु को मन हरनी।

तात्पर्य यह है कि प्रेम की सयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्द दास जी ने बडी सफलता के साथ प्रस्तुत किए हैं। उनकी प्रेम-व्यजना अत्यन्त अकृत्रिम व्यावहारिक और मोहक है। लोक मर्य्यादा की चिन्ता ने कवि के हृदय की स्वाभाविक

---

१ पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नागो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर काँधे परयो न तागो॥

(२२) श्री यमुना जी का माहात्म्य, गगा जी का माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य, भक्ति का माहात्म्य, गुरू महिमा ।

(२३) स्वसमर्पण, दैन्य, विनय, आत्म प्रबोध ।

(२४) महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा उनके सात पुत्रो की वधाई।

(२५) नृसिह जयन्ती, वामन जयन्ती, रामनवमी आदि के पद ।

इन प्रसगो के अन्तर्गत वर्षभर के उत्सव, तथा नित्य सेवा में गाए जाने वाले पद, आदि सभी का समावेश है । इसका तात्पर्य यही है कि परमानन्ददास जी का काव्य विषय दशम स्कध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है । इन्ही सरस, कोमल, रमणीय प्रसगो को लेकर कवि अपने काव्य जगत् मे रमता रहा है । इन प्रसगो में उसकी गेय शैली मे जिस उच्च कोटि की भावुकता अवतीर्ण हुई है, उसके कारण वह 'सूर के टक्कर' का कहा जाने लगा । गेय शैली की लम्वी परम्परा इन अष्टछापी कवियो में और विशेषकर सूर परमानन्द में जितनी निखरी उतनी न इनसे पूर्व न पश्चात् । परमानन्ददास जी मे दोनो शैलियो—

(१) कथात्मक गेय पद शैली ।

(२) प्रसगात्मक गेय पद शैली ।

के दर्शन होते हैं । इन्ही में कवि ने कृष्ण लीला के लोक मगल और लोकरजक दोनो ही पक्षो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है ।

गेय शैली की इस प्रधानता के कारण यह न समझना चाहिए कि इन कवियो में प्रबन्ध काव्य लिखने की भावना या क्षमता ही नही थी । कृष्ण लीला को मुक्तक गेय पदो में प्रस्तुत करने का प्रधान कारण था—आचार्य का कीर्तन-सेवा का आदेश । भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष राग सेवा करते हुए लीलात्मक अनन्त पद इनके मुख से निस्सृत होते थे, उन्हे स्वान्त सुखाय से पहले भगवत्सुखाय गान करना ही इनका लक्ष्य था । साहित्यिक दृष्टिकोण अथवा प्रबधात्मक भगवच्चरित वर्णन परम्परा को आगे न बढाकर इन्हे लीलात्मक कीर्तन परम्परा को ही आगे बढाना था । दूसरे, ये लोग सख्य भाव के उपासक थे । तीसरे, कृष्ण चरित जितना मुक्तक गेय शैली के अनुकूल पडता है उतना प्रबन्ध शैली के लिए नही । इसलिए ये 'दोनो सागर' भगवत्प्रसगो को एक स्वतन्त्र मुक्त पद में निबद्ध कर सगीतात्मकता के साथ श्रीनाथ जी के चरणो मे भाव-विनियोग के रूप में कर दिया करते थे ।

पदो का भाव पक्ष—कवि मुख्यत शृङ्गार—सयोग एव विप्रलम्भ—का ही कवि है । परन्तु भगवान् की बाल किशोर एव पौगण्ड लीला भी उसका प्रियविषय रही हैं । अत उसके पदो में वात्सल्य भाव का भी उच्च कोटि का चित्रण हुआ है । बाल चेष्टा, बाल स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा उसने वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है । बाल-दशा के वर्णन में कवि की उच्च कोटि की चित्रोपमता सूर के कोटि की है । बाल मनोविज्ञान में वह सूर की भाँति पण्डित है । प्रत्येक वर्णन में उच्च कोटि की सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता के साथ पाठक को तन्मय कर देने की क्षमता है । यदि अन्तिम पक्ति में से कवि का नाम हटा लिया जाय तो उसके पदो में और सूर के बाल लीला के पदो में कोई स्पष्ट अन्तर ही नही रह जाता है । साथ ही कवि ने पाँच से सात वर्ष तक की अवस्था के

इतने मधुर मनोहर सरस चित्रोपम प्रसग प्रस्तुत किए हैं कि पाठक रसमय होकर एक निराले भाव-लोक में विचरने लगता है[1]। माता की ममता के इतने सरस मधुर चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

रस व्यजना—भाव चित्रण के उपरान्त परमानन्ददास जी ने शृङ्गार के उभय पक्षो को लिया है। भगवान् की किशोर लीला राधा के साथ प्रथम परिचय तदुपरान्त अनुदिन वृद्धिगत प्रेम के क्रमिक विकास का जो मोहक चित्र कवि ने दिया है वह साहित्य की अनुपम निधि तो है ही, रसमय अनुभूतियो की पराकाष्ठा भी है। प्रेम के विविध रूपो एव अनुभूतियो के नाना मार्मिक पक्षो के उद्‌घाटन में कवि की वृत्ति जितनी रमी है उतनी अन्य किसी रस में नही। सयोग के चरम और सुरतान्त वर्णन के उपरान्त मानजनित, प्रवासजनित आदि सभी प्रकार के विरह वर्णन में कवि ने मानो हृदय निकाल कर रख दिया है। यहाँ रसराज शृङ्गार के दोनो पक्षो सयोग और वियोग के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

संयोग पक्ष

१— आज तुम ह्याँ ही रहो कान्हर प्यारे।
निसि अँधियारी भवन दूर है चलत सकल धौ हारे।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरवरै की छाँह।
नन्द के लाल तुम निकट रहौंगी देहुँगी उसीसे बाँह।
सग के सखा सब घर कौं बिदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ।
'परमानन्द' प्रभु मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ॥

२— मदन गोपाल बलैया लैहो।
वृन्दाविपिन तरनितनया तट चलि ब्रज नाथ अलिंगन दैहौं।
सघन निकुञ्ज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं।
त्रिगुण समीर पथ जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली एहौं।
'परमानन्द' प्रभु चारु वदन को उचित उगार मुदित ह्वै खैहो॥

३— कुज भवन में पौढे दोऊ।
× × ×

४— मारग छोडि अब देहु कमल नयन मन मोहना।
× × ×
सुरत समागम रमि रह्यौ नदी जमुना के रेत।

५— राधा भाग सौ रस रीति बढी।
सादर करि भेंटी नद नदन दूने चाऊ चढी॥
वृन्दावन में क्रीडत दोऊ जैसे कुजर क्रीडत करनी।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहना ताहु को मन हरनी।

तात्पर्य यह है कि प्रेम की सयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्द दास जी ने बडी सफलता के साथ प्रस्तुत किए हैं। उनकी प्रेम-व्यजना अत्यन्त अकृत्रिम व्यावहारिक और मोहक है। लोक मर्य्यादा की चिन्ता ने कवि के हृदय की स्वाभाविक

१ पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नागो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर काँधे परयो न तागो॥

(२२) श्री यमुना जी का माहात्म्य, गगा जी का माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य, भक्ति का माहात्म्य, गुरू महिमा ।

(२३) स्वसमर्पण, दैन्य, विनय, आत्म प्रबोध ।

(२४) महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा उनके सात पुत्रो की वधाई ।

(२५) नृसिह जयन्ती, वामन जयन्ती, रामनवमी आदि के पद ।

इन प्रसगो के अन्तर्गत वर्षभर के उत्सव, तथा नित्य सेवा में गाए जाने वाले पद, आदि सभी का समावेश है। इसका तात्पर्य यही है कि परमानन्ददास जी का काव्य विषय दशम स्कध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है। इन्ही सरस, कोमल, रमणीय प्रसगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत् में रमता रहा है। इन प्रसगो में उसकी गेय शैली मे जिस उन्च कोटि की भावुकता अवतीर्ण हुई है, उसके कारण वह 'सूर के टक्कर' का कहा जाने लगा। गेय शैली की लम्बी परम्परा इन अष्टछापी कवियो मे और विशेषकर सूर परमानन्द मे जितनी निखरी उतनी न इनसे पूर्व न पश्चात्। परमानन्ददास जी मे दोनो शैलियो—

(१) कथात्मक गेय पद शैली ।

(२) प्रसगात्मक गेय पद शैली ।

के दर्शन होते हैं। इन्ही में कवि ने कृष्ण लीला के लोक मगल और लोकरजक दोनो ही पक्षो का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

गेय शैली की इस प्रधानता के कारण यह न समझना चाहिए कि इन कवियो में प्रबन्ध काव्य लिखने की भावना या क्षमता ही नही थी। कृष्ण लीला को मुक्तक गेय पदो में प्रस्तुत करने का प्रधान कारण था—आचार्य का कीर्तन-सेवा का आदेश। भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष राग सेवा करते हुए लीलात्मक अनन्त पद इनके मुख से निस्सृत होते थे, उन्हे स्वान्त सुखाय से पहले भगवत्सुखाय गान करना ही इनका लक्ष्य था। साहित्यिक दृष्टिकोण अथवा प्रबधात्मक भगवच्चरित वर्णन परम्परा को आगे न बढाकर इन्हे लीलात्मक कीर्तन परम्परा को ही आगे बढाना था। दूसरे, ये लोग सख्य भाव के उपासक थे। तीसरे, कृष्ण चरित जितना मुक्तक गेय शैली के अनुकूल पडता है उतना प्रबन्ध शैली के लिए नही। इसलिए ये 'दोनो सागर' भगवत्प्रसगो को एक स्वतन्त्र मुक्त पद मे निबद्ध कर सगीतात्मकता के साथ श्रीनाथ जी के चरणो मे भाव-विनियोग के रूप मे कर दिया करते थे।

पदो का भाव पक्ष—कवि मुख्यत श्रृङ्गार—सयोग एव विप्रलम्भ—का ही कवि है। परन्तु भगवान् की बाल किशोर एव पौगण्ड लीला भी उसका प्रियविषय रही हैं। अत उसके पदो मे वात्सल्य भाव का भी उच्च कोटि का चित्रण हुआ है। बाल चेष्टा, बाल स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा उसने वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है। बाल-दशा के वर्णन में कवि की उच्च कोटि की चित्रोपमता सूर के कोटि की है। बाल मनोविज्ञान मे वह सूर की भाँति पण्डित है। प्रत्येक वर्णन में उच्च कोटि की सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता के साथ पाठक को तन्मय कर देने की क्षमता है। यदि अन्तिम पक्ति में से कवि का नाम हटा लिया जाय तो उसके पदो में और सूर के बाल लीला के पदो में कोई स्पष्ट अन्तर ही नही रह जाता है। साथ ही कवि ने पाँच से सात वर्ष तक की अवस्था के

इतने मधुर मनोहर सरस चित्रोपम प्रसग प्रस्तुत किए हैं कि पाठक रसमय होकर एक निराले भाव-लोक में विचरने लगता है[१]। माता की ममता के इतने सरस मधुर चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

रस व्यजना—भाव चित्रण के उपरान्त परमानन्ददास जी ने शृङ्गार के उभय पक्षो को लिया है। भगवान् की किशोर लीला राधा के साथ प्रथम परिचय तदुपरान्त अनुदिन वृद्धिगत प्रेम के क्रमिक विकास का जो मोहक चित्र कवि ने दिया है वह साहित्य की अनुपम निधि तो है ही, रसमय अनुभूतियो की पराकाष्ठा भी है। प्रेम के विविध रूपों एव अनुभूतियो के नाना मार्मिक पक्षो के उद्घाटन में कवि की वृत्ति जितनी रमी है उतनी अन्य किसी रस में नहीं। सयोग के चरम और सुरतान्त वर्णन के उपरान्त मानजनित, प्रवासजनित आदि सभी प्रकार के विरह वर्णन में कवि ने मानो हृदय निकाल कर रख दिया है। यहाँ रसराज शृङ्गार के दोनो पक्षो सयोग और वियोग के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

संयोग पक्ष

१— आज तुम ह्याँ ही रहो कान्हर प्यारे।
निसि अँधियारी भवन दूर है चलत सकल धौं हारे।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरवरै की छाँह।
नन्द के लाल तुम निकट रहौंगी देहुँगी उसीसे बाँह।
सग के सखा सब घर कौं बिदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ।
'परमानन्द' प्रभु मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ॥

२— मदन गोपाल बलैया लैहो।
वृन्दाविपिन तरनितनया तट चलि ब्रज नाथ अलिंगन दैहो।
सघन निकुञ्ज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं।
त्रिगुण समीर पथ जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली एहौं।
'परमानन्द' प्रभु चारु बदन कौ उचित उगार मुदित ह्वै खैहो॥

३— कुज भवन में पौढे दोऊ।
× × ×

४— मारग छोडि अब देहु कमल नयन मन मोहना।
× × ×
सुरत समागम रमि रह्यौ नदी जमुना के रेत।

५— राधा भाग सौं रस रीति बढी।
सादर करि भैंटी नद नदन दूने चाऊ चढी॥
वृन्दावन में क्रीडत दोऊ जैसे कुजर क्रीडत करनी।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहना ताहु को मन हरनी।

तात्पर्य यह है कि प्रेम की सयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्द दास जी ने बडी सफलता के साथ प्रस्तुत किए हैं। उनकी प्रेम-व्यजना अत्यन्त अकृत्रिम व्यावहारिक और मोहक है। लोक मर्य्यादा की चिन्ता ने कवि के हृदय की स्वाभाविक

१ पाँच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नांगो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर काँधे परयो न तागो॥

उमंग को दबाया नही है। प्रेम के गहन लवणार्णव मे लोक लाज मर्य्यादा, गुरूजन सकोच, और वेद मर्यादा आदि गल चुके है। केवल चरम लावण्य और प्रेम तत्व की ही प्रधानता रह गई है। सयोग के बाद वे वियोग शृङ्गार का चित्रण भी बडी सफलता के साथ करते हैं—

१—ब्रज जन देखे ही जियत।
मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दृष्टि पियत।
तुम अक्रूर चलै लै मधुवन हरि मेरे प्राण आधार॥
राम कृष्ण गोकुल के लोचन सुन्दर नन्द कुमार।
इतनी करौ पांइ लागति हौ बेगि घोख लै आवहु।
'परमानन्द स्वामी' है लरिका कान लागि समझावहु॥

२— चलत न देखत पाए लाल।
नीके करि न विलोक्यौ हरिमुख इतनोई रह्यौ जिय साल॥

× × ×

३— जिय की साध जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी॥

४— कमल नयन बिन और न भावै।

५— हरि बिन बैरिन रैंन बढी। इत्यादि

परमानन्ददास जी में वात्सल्य-वियोग और विप्रलम्भ शृङ्गार दोनों ही के मार्मिक चित्रण मिलते हैं। शृगार के उभय पक्षो के सफल चित्रण के उपरान्त अन्य रसो का भी सफल समावेश मिलता है—

करुण विप्रलम्भ—

गोपालै मधुवन जिन लैजाउ।

× × ×

कहत जसोदा सुन सुफलक सुत हरि मेरे प्राण अधार।
'परमानन्ददास' की जीवनि छाँडि जाहु इहि बार॥

वीर—

नन्द ! गोवर्धन पूजो आज।
जातै गोप ग्वाल गोपिका सुखी सबनको राज।
जाकौं रुचि रुचि बलिहि बनावत कहा शक्र सौं काज॥
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज॥
मेरो कह्यौ मान अब लीजै भर-भर सकटन साज।
'परमानन्द' आन के अर्पन व्रथा करत कत नाज॥

रौद्र—

काहे को मारग में अघ छेड़त !
नन्दराय को मातौ हाथी आवत असुर लपेटत।
कहत ग्वाल सब सखा नन्द के गल गरजत भुज ठोंकत॥
कस वस को परिचित करिहें कौन भरोसे रोकत।
नाहिन सुनी पूतना मारी तृणावर्त अघ केसी॥
'परमानन्ददास' को ठाकुर यह गोपाल पैरेमी।

अद्भुत—

कसो माई अचरज उपजै भारो !
पर्वत लियौ उठाइ अंक लै सात बरस को बारो ।
सात द्यौस निसि इक टक ही याने वाम पानि कर धार्यौ ।।
अति सुकुमार नद को नदन कैसे बोझ सहार्यो ।
बरखे मेघ महाप्रलय के तिनते घोष उबार्यो ।।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुमिरत गर्व प्रहार्यो ।
भक्त हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होइ युग गार्यो ।।
'परमानन्द प्रभु' के बल जीवियै जिन गोवर्धन धार्यो ।।

भयानक तथा वीभत्स के उदाहरण परमानन्ददास जी के उपलब्ध पदो में नही मिलते । वे कोमल सरस पवित्र भावों के कवि थे । अत उनमें इन रसो का अभाव प्रतीत होता है ।

शान्त—

परमानन्ददास जी के भक्ति और दैन्य परक पदों में शात रस ओत प्रोत है । संसार की असारता, जीवन की नश्वरता के साथ भक्ति की एक मात्र सत्यता उनमें पदे-पदे छलकती है—

१— करत है भक्तन की सहाय ।
दीन दयाल देवकी नदन समरथ जादौं राय ।
हस्त कमल की छाया राखैं जगत निसान बजाय ।।
दुष्ट भवन भय हरन घोख पति गोवर्धन जु लियौ उठाय ।।
× × × ×
'परमानन्ददास' प्रति पालक वेद विमल जस बाय ।

२— गई न आस पापिनी जैहै—
तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की नीच लोग मग रहे है । आदि

इस प्रकार सक्षेप में शृङ्गार (सयोग-वियोग) हास्य, करुण (विप्रलभ) वीर, आदि सभी रसो के उदाहरण उनके काव्यों में मिल जाते है। आत्मनिवेदन एव भक्ति के अन्तर्गत शान्त रस की प्रधानता हो गई है । वीभत्स भयानक का अभाव है । शृङ्गार का रस राजत्व कवि के द्वारा अच्छा निरूपित हुआ है । युगल-क्रीडा में उमने सुरतांत वर्णन तक में सकोच नहीं किया है । इसी कारण उममें नायिका भेद के अन्तर्गत आने वाली सभी प्रकार की नायिकाओ की अवस्था का वर्णन मिल जाता है । उसी प्रकार सभी सचारियो के उदाहरण उनके पदो में उपलब्ध हो जाते हैं । कवि की उच्च कोटि की रस व्यजना के कारण उमका स्थान हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवियो में निस्सकोच निर्धारित किया जा सकता है ।

उसके काव्य में चित्रोपमता मनोवैज्ञानिक वर्णन, सौंदर्य वर्णन, सूक्ष्म निरीक्षण पदे-पदे मिलते हैं । प्रकृति चित्रण में व्रज के निसर्ग रमणीय स्थानो की चर्चा में वन, वृक्ष, लता, पुष्प, सर, सरोवर, यमुना पुलिन, कछार, शैलराज गोवर्धन, चन्द्र-ज्योत्स्ना आदि से समन्वित प्रकृति के सुन्दरतम अङ्क में रसराज रसेश श्रीकृष्ण की सुन्दरतम लीलाओ की रमणीय व्रज भूमि का कवि ने अत्यन्त नयनाभिराम चित्र प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार पशु पालन के सूक्ष्म निरीक्षण में कवि का पाडित्य दर्शनीय है । गौओं की विविध चेष्टाएं और गोप वृन्द के गो

चारण के प्रसग कवि के प्रिय विषय रहे हैं। उसी प्रकार रास क्रीडा और उत्फुल्ल मल्लिका वाली शारदीय ज्यत्स्नामयी राका के सौंदर्य को लेकर कवि ने बडे दिव्य वातावरण को सजीवता के साथ प्रस्तुत करने की पूरी पूरी चेष्टा की है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उनकी प्रकृति के चित्र आलम्बन और उद्दीपन—दोनों ही प्रकार के मिल जाते हैं। वे शृगार और प्रेम के भावुक कवि हैं अत. प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के रूप में भी पर्याप्त रूप से आया है। विप्रलम्भ शृगार के अन्तर्गन उन्होंने अपनी समसामयिक परम्पराओ का निर्वाह किया हैं। कवि ने लीला गान का लक्ष्य ही मुख्य रखा है अत प्रकृति चित्रण को अन्य कवियो की अपेक्षा कम महत्त्व दिया है। परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण अति रजित कहीं भी नही हुआ है। भावोद्रेक, स्वरूप बोधन तथा रस परिपाक की दृष्टि से बाह्य प्रकृति का उपयोग परम्परागत उपमानो के लिए भी कवि ने किया है।

कला पक्ष—परमानन्ददास जी के पदो मे वस्तु का भाव-गाम्भीर्य एव भाव-सौंदर्य जहाँ सूर के टक्कर का विद्यमान है वहाँ उनका कलापक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट है। कलापक्ष में हम प्राय तीन बातें लेते हैं

(१) परमानन्ददास जी के काव्य में अलकार विधान।
(२) परमानन्ददास जी के काव्य में छन्द विधान।
(३) परमानन्ददास जी के काव्य में भाषा-सौष्ठव।

काव्य में अलकारों का बडा महत्त्व है। भाव-गहनता की स्थिति में यद्यपि इन भक्त कवियो ने अलकार, छन्द, गुण, दोषादि की परवाह नही की है तथापि इनकी रचना में ये सब अनायास ही आगए हैं बरवस ठूसे नही गये हैं। उनमें शब्दालकार अर्थालकार दोनो ही प्रकार के अलकारो के उदाहरण पाये जाते हैं। अत शब्दालकारो के अन्तर्गत अनुप्रास, वीप्सा, यमक, श्लेषादि के उदाहरण मौजूद हैं। अर्थालकारो के अन्तर्गत उपमा, अन्वय, उदाहरण, प्रतीप, सांग, निरग, व्यस्त एव परपरित रूपक, स्मरण, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, परिकरालकार, परिकुराकुर, विशेषोक्ति, विषम, काव्यार्थापत्ति, काव्यालिग, अर्थान्तिरन्यास, पर्यायोक्ति अन्योक्ति अतिशयोक्ति, लोकोक्ति, स्वभावोक्ति आदि के उदाहरण उपलव्ध हो जाते हैं।[1]

---

१ अलकारो के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

अनुप्रास—

(अ) बदौं सुखद स्री बल्लभ चरन,
अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन।
(ब) तरनि तनया तट बसीवट निकट बृन्दावन बीथिन बहायौ।
(स) चचल चपल चोर चिन्तामनि कथा न परति कही।

वीप्सा—

(अ) परम सनेह बढावत मातनि रवकि रबकि बैठत चढि गोद।
(ब) दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैय्या।

यमक—

तिल भर सग तजत नही निजजन गान करत मनमोहन जस को।
तिल तिल भोग भरत मन भावत परमानन्द सुख लै यह रस को॥

श्लेष—

ह्यांतो कोऊ हरि की भाँति बजावत गौरी।

उपमा—

(अ) धन धन लाडिली के चरन ।
अति ही मृदुल सुगध सीतल कमल के से बरन ॥

(ब) हिंडोरे भूलत हैं भामिनी
कमल नयन हरि वे मृगनयनी चचल नयन बिसाला ।

उदाहरण—

१ घन में छिपी रही ज्यो दामिनी ।
नद कुमार के पाछे ठाडी सोहत राधा भामिनी ।

२ निरखत नेह भरी अखियाँ सो ज्यों निसिचद चकोरी ।

प्रतीप—

१ सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चद लजाया है ।

२ गमन करत तब हस लजावत अरक धरक धुनि न्यारी ।

साग रूपक—

साग—सोहै सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे ।
मणि मोतिन को सेहरा सौहै बसियो मन मेरे ॥
मुख पून्यौ को चदा है मुक्ताहल तारे ।
उनके नयन चकोर हैं सब देखन हारे ।
× × ×
नदलाल को सेहरा परमानन्द प्रभु गायौ ।

निरंग—

आज मदन महोत्सव राधा ।
× × ×
मन्मथ राज सिंहासन बैठे तिलक पितामह दीन्हौ ।
छत्र चवर तूणीर शखधुनि विकट चाप कर लीन्हौं ।

व्यस्त—

गोपी प्रेम की धुजा ।

परंपरित—

१ तरुण तमाल नद के नंदन प्रिया कनक की वेलि ।

२ कंस तुषार त्रास तन दुर्बल, नलिन देवकी दुख निवारन ।

स्मरण—

१ जमुना जल खेवत हैं हरि नाव ।
वेगि चलौ वृखभान नंदिनी अब खेलन को दाव ।
नीर गम्भीर देख कालिंदी पुन पुन सुरत करावै ।
वार वार तुव पथ निहारत नैनन में अकुलावै ।

२ पून्यौ चद देखि मृग नैनी माधौ को मुख सुरति करै ॥

उत्प्रेक्षा—

१ अरुन अधर धृत मधुर मुरलिका तैसिए चदन तिलक निकाई ।
मनो द्वितिया दिन उदित अर्धससि निकसि जलद में देत दिखाई ॥

चारण के प्रसग कवि के प्रिय विषय रहे हैं। उसी प्रकार
वाली शारदीय ज्यत्स्नामयी राका के सौंदर्य को लेकर कवि
के साथ प्रस्तुत करने की पूरी पूरी चेष्टा की है। सक्षेप ं
प्रकृति के चित्र आलम्बन और उद्दीपन—दोनो ही प्रकार ह
प्रेम के भावुक कवि हैं अत. प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव
है। विप्रलम्भ शृ गार के अन्तर्गत उन्होने अपनी समसामयि
कवि ने लीला गान का लक्ष्य ही मुख्य रखा है अत प्रकृति ि
कम महत्त्व दिया है। परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण अ
भावोद्रेक, स्वरूप बोधन तथा रस परिपाक की दृष्टि से वा
उपमानो के लिए भी कवि ने किया है।

कला पक्ष—परमानन्ददास जी के पदो में वस्तु का
सूर के टक्कर का विद्यमान है वहाँ उनका कलापक्ष भी उत
हम प्राय तीन बातें लेते हैं

(१) परमानन्ददास जी के काव्य में अलकार विधान
(२) परमानन्ददास जी के काव्य में छन्द विधान।
(३) परमानन्ददास जी के काव्य में भाषा-सौष्ठव।

काव्य में अलकारो का बडा महत्त्व है। भाव-गहनता की ि
ने अलकार, छन्द, गुण, दोषादि की परवाह नहीं की है तथाि
ही आगए हैं बरबस ठूसे नही गये हैं। उनमें शब्दालकार अर्थाि
के उदाहरण पाये जाते हैं। अत शब्दालकारो के अन्तर्गत अ
उदाहरण मौजूद हैं। अर्थालकारो के अन्तर्गत उपमा, अन्वय
व्यस्त एव परपरित रूपक, स्मरण, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, प्रतिव
परिकुराकुर, विशेषोक्ति, विषम, काव्यार्थापत्ति, काव्यालिग,
अतिशयोक्ति, लोकोक्ति, स्वभावोक्ति आदि के उदाहरण उप

१ अलकारो के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

अनुप्रास—

(अ) बदौ सुखद स्री बल्लभ चरन,
अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन।
(ब) तरनि तनया तट बसीवट निकट बृन्दावन बीथि
(स) चचल चपल चोर चिन्तामनि कथा न परति क

वीप्सा—

(अ) परम सनेह बढावत मातनि रवकि रबकि बैठत
(ब) दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैय्या।

यमक—

तिल भर सग तजत नही निजजन गान करत मनमोह
तिल तिल भोग भरत मन भावत परमानन्द सुख लै र

श्लेष—

ह्यांतो कोऊ हरि की भाँति बजावत गौरी।

लावनी—

तू वनि आई नन्द जू के द्वारे, तेरी बात चलाई री।
खान पान सब तज्यौ साँवरे लै सब लियौ चुराई री॥
कौन नन्द काको सुत सजनी, मैं देख्यौ सुन्यौ न माई री।
फूँकि फूँकि हौ पाई धरत मेरे पैंडे परै जुगाई री॥

सखी—

चलहु तौ ब्रज मैं जैये।
जहाँ राधा कृष्ण रिझैये।
व्रखभान रजा घर आए।
तहँ अति रस न्यौति जिवाए।

उर्दू बहरों की सी शैली—

बने माधौ के महल।
जेठ मास अति जडात।
माघ मास कहल।
दूर भए देखियत बादर कैसे पहल।

हंसाल—

माई साँवरी गोविन्द लीला।
ग्वालि ठाडी हँसै, प्राण हरि मैं बसै कामधौ बावरी चारु बोला।
आयरी, ग्वालिनी, मेलदे बाछरी, आन दै दोहनी दै हाथ मेरे।

विजया—

अति मंजुल जलप्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरिनि नंदिनी।
स्याम वरन झलकत रूप, लोल लहर वर सेवित, संतत मनसिज वाय मंदिनी॥

ताटंक (रसिया शैली)—

आरति जुगल किशोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर कीजै॥

(१) उन्होने अपने समय मे प्रचलित सभी सम-विषम मात्रिक छन्दो के प्रयोग किये हैं।

(२) छन्दो में मात्राओ की अपेक्षा उन्होने गति और सगीतात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा है।

(३) रसिए, लावनी, चौबोले आदि ब्रज के प्रसिद्ध गाये जाने वाले पदो को ही वे अधिक पसद करते हैं।

(४) वे समसामयिक वैष्णव भक्त जैसे सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास आदि का भी पूरा पूरा प्रभाव ग्रहण किए हुये हैं।

(५) कही कही वे उर्दू फारसी छन्द शैली को भी अपनाए हुए हैं।

रोला—

हरि रस ओपी सब गोप तियन ते न्यारी।
कमल नयन गोविंद चद का आनन प्यारी॥

विलास—

क्रोटिऊ ते कठिन भृकुटि की ओट।
सराहू ते सरस सब्द की चोट॥

गीतिका—

आवति आनन्द कद दुलारी।
विधु बदनी मृगनयनी राधा दामोदर की प्यारी।

झूलना—

मदन गोपाल बल्लैये लैहौं।
वृन्दा विपिन तरनि तनया तट चलि ब्रजनाथ आलिंगन दैहो।
सघन निकुज सुखद रति आलय नवकुसुमन की सैज बिछैहौं॥

चौपाई—

सुनि मेरौ बचन छबीली राधा।
तै पायौ रस सिंधु अगाधा॥
जो रस निगम नेति नित भाख्यौ।
ताको तें अधरामृत चाख्यौ॥

चौपई—

कालिंदी तीर कलोल लोल।
मधु रितु माधौ मधुर बोल॥

दोहा—

राधे तू बड भागिनी, कौन तपस्या कीन।
तीन लोक के नाथ हरि, सो तेरे आधीन॥

रोला—

घर घर मगल होत कहा है आज तुम्हारे।
वहुत बिध करत रसोई, हूँ मध्य गयो सकारे॥

रूपमाला—

मोही देख सब कोई, कह्यौ यहा जिन आवौ लाल।
देव जग्य हम करत हैं, कर पकवान रसाल॥

लावनी—

तू बनि आई नन्द जू के द्वारे, तेरी बात चलाई री।
खान पान सब तज्यौ साँवरे लै सब लियौ चुराई री।।
कौन नन्द काको सुत सजनी, मैं देख्यौ सुन्यौ न माई री।
फूंकि फूंकि हौ पाई धरत मेरे पैंडे परै जुगाई री।।

सखी—

चलहु तौ ब्रज में जैये।
जहाँ राधा कृष्ण रिझैये।
व्रखभान रजा घर आए।
तहँ अति रस न्यौति जिवाए।

उर्दू बहरों की सी शैली—

बने माधौ के महल।
जेठ मास अति जडात।
माघ मास कहल।
दूर भए देखियत बादर केसे पहल।

हसाल—

भाई साँवरी गोविन्द लीला।
ग्वालि ठाडी हँसै, प्राण हरि में बसै कामधौ बावरी चारू बोला।
आयरी, ग्वालिनी, मेलदे बाछरी, आन दै दोहनी दै हाथ मेरे।

विजया—

अति मजुल जलप्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरिनि नदिनी।
श्याम वरन झलकत रूप, लोल लहर वर सेवित, सतन मनसिज वाय मंदिनी।।

ताटंक (रसिया शैली)—

आरति जुगल किशोर की कीजे।
तन मन धन न्यौछावर कीजे।।

कीर्तनकार परमानन्ददास जी

भक्ति अथवा उपासना का सगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव बुद्धि ने जब से किसी उपास्य की भावना की युगपत् उसका भाव-सागर भी अपने उपास्य की स्तुति में सगीतात्मक होकर उद्वेलित हो उठा था और उस उपास्य के अप्रत्यक्ष होने पर भी वह भाव-दशा में लयात्मक होकर गा उठा था—'कस्मै देवाय हविषा विधेम।' अत भक्ति और सगीत का आत्मा और शरीर जैसा परस्पर गाढ़ सम्बन्ध है। सगुण भक्ति में तो कीर्तन भक्ति का दूसरा स्थान है। अत सभी भक्तों ने कीर्तन पर अत्यधिक महत्त्व दिया है। इस कीर्तन भक्ति के दो स्वरूप पाये जाते हैं

१—नाम-कीर्तन अथवा ध्वनि गान।

२—पद-सकीर्तन अथवा लीला गान।

पुष्टि सम्प्रदाय में दोनो ही प्रकार के कीर्तन प्रचलित हैं। अष्टछापी भक्तगण मुख्यत लीला गायक है अत. इन भक्तो में सगीत की उच्चकोटि की साधना मिलती है। भगवान् गोवर्धननाथ जी के समक्ष जब कीर्तन की नियमित व्यवस्था हुई तो रागो की शास्त्रीयता को भी पूरा-पूरा महत्त्व दिया जाने लगा और इस प्रकार सम्प्रदाय में शुद्ध शास्त्रीय सगीत की परम्परा प्रारम्भ हुई। उस परम्परा को चरम विकास भी इन अष्टछापी कवियो ने अपनी विशिष्ट कीर्तन पद्धति द्वारा दिया। जिसमें सम्प्रदाय के कतिपय अपने विधि—निषेध भी स्वीकृत हुए। उन सब विधि विधानो के साथ आज भी सम्प्रदाय में कीर्तन पद्धति प्रचलित है और उन्ही अष्ट सखाओ के कीर्तन सम्प्रदाय के भगवन्मन्दिरो में आज तक गाए जाते हैं।

परमानन्ददास जी उच्चकोटि के सगीतज्ञ थे। उनमें भारत की पुरातन शास्त्रीय शैली के—जो ध्रुपद धमार शैली कही जाती है—दर्शन होते हैं। वे सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही उच्चकोटि के गायक थे। महाप्रभु जी से दीक्षित होने के उपरान्त वे श्री नवनीतप्रिय जी के समक्ष कीर्तन करते थे। व्रज में आने के उपरान्त और श्री गिरिराज पर गोवर्धननाथ जी के मन्दिर के कीर्तन सेवा ग्रहण करने पर वे अहर्निश भगवद् गुणगान ही करते रहते थे, परन्तु उनका विशिष्ट समय अथवा 'ओसरा'—मगला, राजभोग, उत्थापन और भोग था। कवि इन समयो पर तो प्रभु के समक्ष कीर्तन सेवा करता ही था, वैसे भी वह अहर्निश कीर्तन गान में रत रहता था। सम्प्रदाय-कीर्तन क्षेत्र में उनका अपना विशिष्ट स्थान है, उनके पदो को विशेष अवसरो पर, विशिष्ट पर्वों पर गाया जाता है। अत सभी अष्टछापी कवियो के कीर्तन वैदिक मत्रो की सी मान्यता प्राप्त किये हुए हैं, जो श्रीनाथ जी के समक्ष विशिष्ट अवसरो पर नैत्यिक अथवा वार्षिक गाये जाते हैं। परमानददास जी ने लगभग ४० रागो[१] में अपने पदो को प्रस्तुत किया है।

---

१ परमानन्ददास जी द्वारा प्रयुक्त राग—

गौरी—मोहन नेकु सुनहुगे गौरी।

आसावरी—आजु नीको बन्यौ राग आसावरी।

मलार—ठाडे हसत राधिका मोहन राग मलार जमायो

सारग—गावत मुदित खिरक में गोरी सारग मोहिली

केदारा—मधुरे सुर गावत केदारो परमानन्द निजदासी।

इनके अतिरिक्त—देवगाधार, रामकली, बिलावल, जैतश्री, धनाश्री, भैरव, मुलतानी, मालश्री, कानडा, नट, अडाना, मालकोस, विहाग, पूर्वी, सूहा, मलार पूर्वी, कल्याण, विभास, जैजैवती वसत, चर्चरी, टोडी, काफी, यगन, मालव, सोरठ, ललित, नूरसारग, नायकी, गूजरी, मारू, बिहागरो, गौडमलार, मेघमलार शुद्ध मलार आदि।

उनकी अपनी 'सारग' छाप थी। सारग मध्याह्न का राग है। कवि का कीर्तन सेवा का समय विशेषकर मध्याह्न अर्थात् राजभोग का था। उन्होंने गायन, वादन[1] एव नृत्य[2] की पूरी-पूरी प्रामाणिक चर्चा की है। अनेक वाद्यो के नाम गिनाये हैं। नृत्यो के विविध भावो और उत्तरी भारत की सगीत शैली की भरपूर चर्चा की है।

परमानन्ददास और ब्रज संस्कृति

लोक जीवन की सर्वमान्य, सर्व अभ्यस्त एवं सर्वव्यवहृत परिमार्जित परम्पराओ को संस्कृति नाम दिया जाता है। इसके कई रूप हैं—राष्ट्रीय सस्कृति, सामाजिक संस्कृति, प्रादेशिक संस्कृति आदि। पुष्टि सप्रदाय का केन्द्र स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि ब्रज प्रदेश रहा है। अत सभी अष्टछापी महात्माओ के अमर काव्य में ब्रज-सस्कृति का ही आनुषगिक चित्रण हुआ है। इन ब्रज-भक्तो की काव्य-साधना में ब्रज-संस्कृति स्पष्ट प्रतिबिंबित हुई है।

सस्कृति सामाजिक परम्परागत व्यवहार है और समाज व्यक्तियो से निर्मित होता है अत. समाज की सर्वमान्य परम्परागत मान्यताओ का अनुगामी होने के लिए व्यक्ति वाध्य है। अत ब्रज भक्तो का अमर काव्य स्वात सुखाय होते हुए भी लोक-वाह्य नही है न उसे नितान्त ऐकान्तिक कहा जा सकता है। उसमें मर्यादामय एक भावुक समाज की दिव्य परम्पराओ का अनुकथन है, जिसमें हमें उसके आचार, विचार, व्यवहार, सस्कार, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज पर्व-उत्सव, कला-कौशल-दर्शन-विज्ञान और उपासना आदि सभी का सश्लिष्ट चित्रण मिल जाता है।

विशाल भारत के आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त प्रदेश मे गगा-यमुना के मध्य के भू-भाग को अन्तर्वेद पुकारा जाता था। उसी की पश्चिमी सस्कृति का नाम ब्रज-सस्कृति है। यह आर्यों का सनातन देश रहा है। इसी में पूर्ण पुरुषोत्तम, मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुषोत्तम राम और कृष्ण के अवतार हुए हैं।

इसी प्रदेश के ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म तथा कला-कौशल आदि ने सभ्य मानव की विकसिततम अवस्था का प्रतिनिधित्व किया है और इसी कारण इसे विश्व-गुरुत्व का गौरवपूर्ण आसन प्रदान किया गया था। इसी मानव-संस्कृति ने अरण्यो में जन्म लेकर भी वडे-वडे विशाल राष्ट्रो की चरम नागरिकता को चुनौती दी थी।

सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से दीप्त मुक्त गगन के नीचे और निसर्ग रमणीय लता वृक्षादि मे सकुल शस्य श्यामला उर्वरा वसुन्धरा के वृक्ष पर शैल सरिताओ से आवृत ब्रज प्रदेश में

१ **वाद्य चर्चा—**

वाजत चग मृदंग अघोटी।
परह झाँझि झालरी सुर घोरी।
ताल रवाव मुरलिका बीना मधुर सब्द उघटत धुनि थोरी
ताल किन्नरी, ढोल दमामो भेरि मृदग वजायो।

२ **नृत्य चर्चा—**

नर्तन मण्डल मध्य नन्दलाल।
(१) ताल मृदंग सगीत वाजत हैं ततथेई वोलत वाल।
उरप तिरप तान लेत नटनागर गावत गन्धर्व गुनी रसाल।
(२) ततथेई, ततथेई थेई करत गोपीनाथ नीकी भाँति।
(३) रास मण्डल मध्य मण्डित मोहन अधिक मोहत लाडिली रूप निधान।

प्राकृतिक जीवनयापन करते हुए, भूतदया का दिव्यतम आदर्श लिए हुए गोप सभ्यता में पले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा आचरित संस्कृति का मूल मन्त्र लोक कल्याण और "आत्मन. प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" था। सुरसरि की जीवन धारा की भाँति यही निर्मलतम संस्कृति समूचे विश्व की सिरमौर संस्कृतियो मे समझी जाती थी।

रागानुगा भक्ति के परम पोषक आचार्य वल्लभ ने गोप सभ्यता में पली ब्रज गोपांगनाओ को ही अपना आदर्श माना था, और इन्ही की प्रभु भक्ति को एकमात्र आदर्श मानकर इन्ही की संस्कृति को अपनाया था। अत अष्ट सखाओ को भी यही संस्कृति मान्य थी। इसी की सम्पूर्ण झलक उनके काव्य में सर्वत्र पाई जाती है। इसी प्रदेश के आचार-विचार व्यवहार और संस्कारो का वर्णन उनके काव्य मे मिलता है। परमानन्ददास जी ने भी लोक जीवन का कोई ऐसा अङ्ग अछूता नही छोडा है जिसमे ब्रज-संस्कृति के दर्शन नहीं हो जाते। कृष्ण लीला गान के मिष से जन्म[१], छटी[२], नामकरण[३] से लेकर विवाह[४] तक के समस्त

---

१ जन्म—

(अ) सुनोरी आज मगल नवल बधायो है।

× × ×

वेदोक्त गोदन द्विजन को अनगिन द्यायो है
गरग परासर अन्वाचार्य मुनि जात कर्म करायो है

(आ) वर्ष ग्रन्थि—

सुनियत आज सुदिन सुभ गाई।
बरस गाँठ गिरिधरनलाल की बहोरि कुसल में आई।

निछावर दानादि—

नन्द महोच्छव हो बड कीजै।

× × ×

कचन कलस अलकृत रतनन विप्रन दान दिखाई।

नेग वितरण—

नन्द बधाई दीजै ग्वालन।

२ (क) छठी पूजन—

मगल द्यौस छटी को आयौ।

(ख) अन्न प्राशन—

अन्न प्रासन दिन नन्दराय को करत जसोदा माय।

(ग) कर्ण वेध—

गोपाल के वेध करन को कीजै।

३ नाम करण—

जहाँ गगन गति गर्ग कह्यौ
यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यौ।

करवट

करवट लई प्रथम नन्द नन्दन।

भूमि उपवेशन

करतें उतारि भूमि पै राखे,

सस्कार ब्रज की रीतियाँ, वेप भूपा, ज्योतिप सम्बन्धी विचार, धार्मिक परम्पराएँ व्रत, उत्सव, पर्व खेल, क्रीडा, खान-पान भोजन की विविध सामग्री एव पकवान आदि से लेकर राजीनित राजस्व की चर्चा करके धार्मिक परम्परा मूर्ति पूजादि मव की चर्चा की है। इस प्रकार व्रज सस्कृति और व्रज प्रदेश की महत्ता को उन्होंने अपने काव्य में यत्रतत्र प्रदर्शित किया है। यही प्रदेश उन्हें अपनी साधना के लिए अत्यन्त उपयोगी जान पडा और इसी के प्रेम मे अभिभूत होकर वे वैकुण्ठ तक को तुच्छ समझते हैं—कहा करूँ वैकुण्ठहि जाय।

परमानन्ददास जी की भाषा

परमानन्ददास जी व्रज भापा के रस सिद्ध कवि हैं। उनकी भापा के सौष्ठव, माधुर्य एव वैभव को देखकर पाठक न केवल आनन्द विभोर ही हो जाता है, अपितु विस्मय विमुग्ध होकर आश्चर्य के सागर में गोते खाने लगता है। अभिव्यक्ति की कुशलता, वर्णध्वनि की मधुरता, चमत्कृति की चारुता, चित्रोपमता, आलकारिक सजीवता के साथ साथ समन्वय की साधना परमानन्ददास जी की विशेषता थी। परमनन्ददास जी कन्नौज निवासी थे। अत. उनकी भापा कन्नौजीपन को लिए हुए है। कन्नौजी स्वय व्रज का एक परिवर्तित रूप है। अत. उनकी व्रज भापा पुष्ट, प्राजल व्यवहार्य और सवल है जिसमे तत्सम तद्भव, देशज शब्दो के प्रयोगो के साथ-साथ लोकोक्तियो, वाग्धाराओ. (मुहावरो) के उपयोगो के साथ अन्य प्रान्तीय शब्दो का सुष्ठु प्रयोग मिल जाता है। उनकी भापा में पाठको को भावमग्न और रसनिमज्जित करने की अपूर्व क्षमता है। उसमें उच्च कोटि की व्यजकता, लाक्षणिक वक्रता तथा सक्षिप्तता भी है। साथ ही उसमें मध्यकालीन व्रजभापा का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होने के साथ साथ खडी वोली के युगारम्भ होने के दर्शन होने लगते हैं। बुन्देली के शब्दो एव क्रियापदो के प्रयोग के साथ राजस्थानी, मालवी के भी प्रयोग मिल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त सस्कृत तत्सम शब्दो की प्रयोग वहुलता के साथ समास शब्दो के एव समासान्त पदावलियो के अनायास प्रयोग और श्रुति मधुर शब्दावलियों के साथ नाद-सौंदर्य और सगीतात्मकता के पुष्कल उदाहरण भी उनकी भापा में मिल जाते हैं। तद्भव, देशज, ठेट व्रज के शब्दो के साथ मुहावरो का प्रयोग देखते ही वनता है। सक्षेप में उनका उच्च कोटि का भापा-वैभव उन्हे महात्मा सूर के समकक्ष स्थापित कर देता है।

निम्नाकित पाद-टिप्पणी के कतिपय उदाहरणों से हम परमानददास जी की भापा के सम्वन्ध मे इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

(१) उनकी भापा मे व्रजभापा का विकसिततम रूप मिल जाता है।

(२) उनकी व्रजभापा शुद्ध, पुष्ट, प्राजल और सस्कृत मय है।

यज्ञोपवीत

परमानन्ददास को ठाकुर काँधे पर्यो न तागो

वाग्दान

आज ललन की होत सगाई।

× × ×

वृपभान गोप टीका दै पठयो सुन्दर जान कन्हाई।

विवाह

व्याह की वात चलावन आए।

सजनी री गाओ मगलचार।

भामर लेत प्रिय और प्रियतम तन मन दीजै वारी —आदि

(३) तत्सम[1], तद्भव[2] एव देशज[3] शब्दो के अतिरिक्त अरबी[4] फारसी[5] शब्दो का भी प्रयोग मिलता है।

१ तत्सम

अन्तर, अक्षत, अनुराग, अमित, अभ्यग, अलकृत, आचमन इक्षुदण्ड, इन्द्रनीलमनि, उच्छलित, उत्थापन, उपदेश, उत्सग, उपहार, उलूखल, अँगुष्ठ, कृशोदरि, कुसुमायुध, कु चित, कु तल, गोरज, ग्रथित, त्रिभुवनपति, निर्मत्सर, नराकृति, प्रतिबिब, परिरभण, महोत्सव, महाकाय, वेदोक्त, विरचि, विषमासन, वल्लभ सभापण, त्रिपदभूमि। आदि

समास शब्द एव समास-पदावली

आनन्द-ह्लद-कल्लोल, उदरदाम विश्वभर, भुवमडल, पद्मनाभ, गोपवेश, रसन दशन, जानुपाणि, रतन जटित, धूरि-धूसर-बपु, नील-वसन, श्रमजल, बदन-सुधा-निधि भाग्य-पुरुष, कुन्तल अलिमाल, जलद कठ, पीतवसनदामिनी मडित तारागण, मत्तकरिणीवत्, महापतित द्विज, दीप-अपेक्षा, वेणी चलित खसित कुसुमाकर, कटिकिकणी कलराव मनोहर क्वासि क्वासि, सघन निकु ज सुखद रति आलय, हेम लता तमाल अवलबित, भाव-समागम, जग्य पुरुष आदि।

नाद-सौंदर्य

झनक मनक, खनक खनक, तनक तनक, कनक, कटि किकिन कलराव मनोहर, कुण्डल झलक परत गडनिपर, छगन-मगन, दोहन, मडन, खडन लेपन, चचल चपल चोर चिंतामणि, बाहुदड कर अम्बुज पल्लव आदि।

सगीतात्मकता

माखन चोरत भाजन फोरत, अलकावलि मधुपनि की पाँति, मुक्तामणि राजत उर ऊपर, चचल अचपलकुचहारावलि सघन निकु ज सुखद रति आलय, कुसुम माल राजत उर अन्तर, कटि किकणी कुणित कछनी आदि।

२ तद्भव

अकाथ, अचभा, नागस, असाध, अनत, असीम, अमरत, अन्तरगति, इच्छ, उछग, उनमद, अकु स, कुनित, ग्रह कारज चौगुनो, धोख, धौस, पूत, न्यौति, बघनखना, वतरस, भान्यौ, भीतर, महोच्छव, हरिनाछी, राजधानी, लौलीन, पौन, वेग। आदि

३ देशज

बीथिन, बैंटो, बिहाल, बिन्दुका, डिठौना, मीडे, राती, रनिर्थां, रिंगना, अघात, आरोगत सोह, हुलसौ, अलार, अनेरो, अथाई, अधाउँ, उराहनौ, उबकत, एतो, एथत, ओट, ओसर, होडाहोडी, कहानी किवार, कौधति, चौधा, गाजि, गीधि, छाक, जेवरी, झोटा, झाँपन, झूमकरा, टोल, ठगौरी, ढोटा, त्यौहार, निहोर, नाज, पुरई, पाहुनी, बिजुकानी, मनुहार, रागत, उबरो, लरिका, हटरी, हवतबा, हिलग साँट आदि

अवधी

अनत, अनुहरत, उगार, उबर्यो, ओल, ओभा, ओसर, काँखासोती, खवासी, खुभी, गहक जाचक, झीनी, टकुटकु, दोहिलो, पेसि, वरिस, नकबान्यौ, विलुग, वेग, वटाऊ, मोट, रहसि, लटुवा, लरिका, सचुपाई, सरवरि, सुवन वसीठ। आदि

खडी बोली

किवाड, कीच, खिलौना, खटको, गद, जजाल तोल, टहल, दहल, दाँव, वेखट, विदेस, ददला, झगडो, तुम्हारे, त्यौहार, तमक, दरेर, पनी, बानिक, वहुत, सलूनौ, सिरताज, मोल, कहानी, पूँजो, भिखारी।

(४) कवि की भाषा मे प्रवाह के साथ माधुर्य, ओज एव प्रसाद गुण मिलते हैं।

(५) भावाभिव्यक्ति के साथ कवि के पाण्डित्य एव बहुज्ञता के दर्शन होते हैं।

विदेशी

आब, इजार, उयाल, एलान, ओझल, गनी, खासा, खुनस' खसम, खवासी, जसन (जश्न) जासूस, जगी, तागो, तापता, तमासो, दरखत (दरख्त) दमामा, दगा, दाग, दफ्तर, दहल, दीवान, दाद, दर, नाहक, नाज, निहाल, वदिम, बला, बेहाल, मैदान, महक, मखतूल, मौज, मवासी, लायक शहनाई, सोर (शोर) सेहरा, सहल सौदा, सिरताज, हयाली आदि।

मुहावरे

फूले फिरत, कुल दीपक, पूजे मन के काम, फूली अङ्ग न समाई, चन्द्र लजाया है, कल न परत, टेढी दृष्टि, कहे सो थोरी, अखियन तारो, गढि गढि छोल बनावत, भाग-दशा, हाथ बिकानो, कहा रक कहा रानो ! डगर बताई, मन खटको, लाज कुआ मे पटको, मिलो निसान बजाई, फूंकि-फूंकि हौं पाइ परत, सोवत सिंह जगायौ, पूंजी सी खोए, देख दाहिनो बायो, आदि।

लाक्षणिक प्रयोग

जमुना थाह भई, पूतना सोखी, तिहूँ लोक को खभ, देवता जाको करत किवार; एक टक बरस्यौ मेह, दृष्टि भई कलिकाल।

शब्दों का मनमाना प्रयोग

कुल कालक, अद्‌भूत, बरीसो, बनियाँ, घतन, वाछी, रनियाँ, सखोद, सुर्य, पान्यौ, नकवान्यौ, मग, (मग) मुसकि, सलक (शलाका), अवतीर, बेरी (विलंब), भदैया (भाद्रपद), खिच (खिचडी) इन्छ (इच्छा) रहसि (हरपि) आदि।

च्युत संस्कृति

शोधना (शोध ही पर्य्याप्त था) पवन (पुल्लिग) कृपा स्त्रीलिंग है परन्तु कवि ने 'पवन कृपा कैसो की', लिखा है।

कतिपय क्रियापदो के उदाहरण

ब्रज मे वर्तमान काल में क्रिया ह्रस्व अकारात हो जाती है—

भजत, फिरत, मनावत, देत, होत आदि। स्त्रीलिंग में वही ह्रस्व इकारान्त हो जाती हैं—

निहारति, बूझति, देति, कहति आदि। कहीं-कहीं एकारान्त क्रियाएँ वर्तमान काल मे प्रयुक्त हुई हैं—

आवै, भावै, बिलोवै, जावै, खोवै। आदि

ओकारान्त

वारौं, आवौं, लागौ आदि

खडी बोली

जाया है लजाया है, लै गए, देखे, मारेगी, जियाऊँगी।

ब्रज के भविष्यत् के प्रयोग—

बोलेगो, डोलेगो, किलोलेगो आदि

अवधी के भविष्यत् के प्रयोग—

दैहौं, जैहौ, परिहौं, पूजिहैं, जाउब, खाउब, पाउब आदि

बुदेली—

जैहैं, फगुवा लै गारी न दैहैं, कँगना मांझ बँधैहैं। आदि

(६) परमानन्ददास जी में शब्द चित्र प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता है। अष्टछाप में सूर के उपरान्त यदि किसी को भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो परमानन्ददास जी को ही।

(७) उनमें खडी बोली सर्वाधिक सुप्रयुक्त पाई जाती है। उन्हे खडी बोली का वेताल कहा जा सकता है।

(८) सौंदर्य, माधुर्य, भक्ति और दर्शन आदि के पदो में उनकी भाषा उच्चकोटि की सुसस्कृत हो गई है।

कवि की बहुज्ञता

परमानन्ददास जी के काव्य का गभीर अनुशीलन करने पर हम दो तथ्यो पर पहुँचते हैं—

१—कवि का उद्देश्य, कविता न होकर लीलागान द्वारा भक्ति-रस का आस्वादन और भगवन्माहात्म्य का प्रतिपादन करना था।

२—कवि उच्चकोटि का विद्वान्, काव्य मर्मज्ञ, सगीतज्ञ एव बहुज्ञ था।

उसके दार्शनिक सिद्धान्त आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुकूल थे। अत वह दार्शनिक सिद्धान्तो के पचडे मे अधिक नही पडा। उसके गुरु ने उसे 'कृष्ण भजन' का सीधा सा राज डगर बता दिया था जिस पर वह आजीवन चलता रहा। भक्ति-भावना की निष्पत्ति के लिए उसने गुरु वचन मे असीम आस्था रखकर भागवत का मनन, अनुशीलन एव सुबोधिनी का श्रवण एव अनुसरण किया और उसी के अनुसार भगवल्लीला के रहस्यो को वह अपने पदो मे निबद्ध करता रहा। भगवल्लीला-गान मे ही उसकी सम्पूर्ण रसिकता, कवि सुलभ कोमलता, भावुकता और एक सगीतज्ञ की कलात्मकता का समावेश हो गया है। उसी काव्य-सागर मे उसकी बहुज्ञता के भी दर्शन हो जाते है।

कवि ने ज्योतिष[१], न्याय[२], सगीत, पाकशास्त्र[3] आदि के ज्ञान का स्थान-स्थान पर परिचय दिया है। वेशभूषादि[४] की भी अनेक स्थलो पर चर्चा की है।

परमानन्ददास जी का पौराणिक ज्ञान भी अच्छा था। उनके अनेक पदो मे अनेक पौराणिक आख्यानो की चर्चा है[५] भागवत और पद्मपुराण की तो स्पष्ट चर्चा की है। पद्म पुराण भागवत के उपरान्त सबसे अधिक भक्ति प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। भागवत माहात्म्य के प्रारम्भिक ६ अध्याय पद्म पुराण से ही लिए गए है। अत पद्म पुराण से उसने यमुनादि तीर्थों का माहात्म्य और जगद्‌गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य से भागवत को श्रवण किया और भागवत के बीज भाग-गोपी भाव की यावज्जीवन साधना करता रहा।

अष्टछाप के कवियो मे परमानन्ददास जी का स्थान

महाप्रभु आचार्य वल्लभ एव गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के ये आठो शिष्य ब्रजभाषा काव्य एव कृष्ण भक्ति मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यो तो किन्ही भी दो भक्त

१ देखो परमानन्द सागर
२ ,,
३ ,,
४ ,,
५ ,,

कवियो की तुलना परस्पर करना कठिन होता है, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से विद्वज्जन स्वान्त सुखाय कभी-कभी इन भक्त कवियो का तारतम्य से साहित्य मे स्थान निर्धारण करने का प्रयत्न किया करते हैं जिससे अन्य साहित्यिको अथवा आलोचको को कुछ मार्ग दर्शन मिले। इसमे उन विद्वानो का उद्देश्य केवल आत्मसुख ही होता है, और कुछ नहीं। इस प्रकार किसी आलोचक के द्वारा मन पूतं ऊँची नीची भूमि पर विठा देने से इन भक्त कवियो के महत्व में कोई बाधा नही पडती। अत कतिपय आलोचको[1] ने काव्य-परिमाण की दृष्टि से इन आठो महानुभावो का क्रम इस प्रकार रखा है—

१—सूरदास
२—नंददास
३—परमानन्ददास
४—कृष्णदास
५—कुम्भनदास
६—गोविंद स्वामी
७—चतुर्भुजदास
८—छीत स्वामी

काव्य कला और भावानुभूति की दृष्टि से इनका क्रम इस प्रकार रखा जाता है—

१—महात्मा सूरदास
२—परमानन्ददास
३—नंददास
४—कुम्भनदास
५—चतुर्भुजदास
६—कृष्णदास
७—छीत स्वामी
८—गोविंद स्वामी

इस प्रकार का क्रम निर्धारण अपनी व्यक्तिगत रुचि का भी परिचायक हो सकता है। फिर अभी आठो ही महानुभावो का पूरा-पूरा काव्य साहित्य-जगत मे आया भी नहीं है अत उपर्युक्त क्रम अन्तिम नहीं कहा जा सकता। अब तक के साहित्य के आधार पर सूर के उपरान्त परमानंददास जी का ही नाम आता है। इनके पश्चात् कुम्भनदास कृष्णदास आदि का।

अब तक के उपलब्ध काव्य-परिमाण की दृष्टि से भले ही किसी कवि को कही रख दिया जाय परन्तु सभी का अपना एक विशिष्ट क्षेत्र है जिसमें वह अद्वितीय और अप्रतिम है। उदाहरणार्थ—सूर बाल लीला, मान लीला और विप्रलभ के लिए प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में उनकी टक्कर का दूसरा कवि नही। इसी प्रकार परमानददास जी बाल, पौगड और किशोर लीला के सरस चित्रण मे अनन्य और अद्वितीय हैं। विप्रलभ में भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वे सूर के समकक्ष ठहरते हैं। यदि प्रज्ञाचक्षु सूर ने अन्तरग उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति में और मानवती राधा के मनोवैज्ञानिक चित्रण में साहित्य को सजीव सम्पत्ति प्रदान की है तो भक्त प्रवर परमानददास ने भी किशोर लीला मे यौवन के वासन्तिक उन्माद मे चिरवसन्त का संदेश

---

१ देखिये अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दी० द० गुप्त

दिया है। दिव्य प्रेम की अमरता और सौंदर्य-साहचर्य की गहरी प्रणयानुभूति को कवि ने बडी सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। युगल-लीला की मादकता में कवि स्वय इतना आत्म-विभोर हो गया था कि उसे बाह्य-जगत् अथवा लोक मर्य्यादा का भान ही नही रह गया था। उसका किशोर लीलात्मक काव्य एक दम ऐकान्तिक, रागानुगा भक्ति-सम्पन्न केवल ब्रज भक्तो के काम का हो गया है। उसके प्रेम-प्रवाह में मर्य्यादा के विशाल प्रस्तर खण्ड सहज ही लुढ़क गये और 'लोक वेद की कानि' की सुदृढ प्राचीर शिथिल सैकत राशि की भाँति ढह गई। भावुक कवि ने कृष्ण के प्रति एक अनायाम आसक्ति मे 'सर्वस बार' देने की मनोवृत्ति का परिचय दिया है। युगल लीला के रसाब्धि मे कवि चूडान्त अवगाहन करके जिस आनन्द सुमेरु पर विचरण करता था वह इस पार्थिव जगत् की कल्पना से सर्वथा परे है। इसकी गहराई अथवा आनन्द की अभ्र लिह ऊँचाई अनुभूति की वस्तु है, शब्दो की नही। इस क्षेत्र में परमानददास जी अष्टछापी कवियो मे मूर्द्धन्य हैं। अपनी अलौकिक रसमयता के कारण उन्हे ऐन्द्रिक कथमपि नही कहा जा सकता। वे भाव-क्षेत्र के एकान्त भावुक कवि हैं। उनकी स्वर्गीय काव्य मदाकिनी मे अवगाहन करने वाला पाठक तन्मय होकर देहानुसधान खो बैठता है। उनकी काव्य शक्ति अप्रतिम है।

हिन्दी साहित्य को परमानददास जी को देन

राधा-कृष्ण की सरस प्रणय लीलासुरसरि के भागीरथ भक्तवर परमानददास मुख्यत विप्रलभ की अपेक्षा सयोग शृङ्गार के ही गायक है। उनके काव्य मे भगवान् की त्रिविध लीला बाल, पौगड और किशोर के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त रागानुगा-प्रेम लक्षणा भक्ति का जो दिव्य चित्रण उन्होने किया है वह अन्य ब्रज-भक्त कवियो में तो क्या अष्टछापी महात्माओ मे भी दुर्लभ है।

पुष्टिमार्ग की निखिल मान्यताओ को सरलता और सुगमता के साथ अपने काव्य मे लाकर साम्प्रदायिक मर्य्यादाओ के स्वरूप स्पष्ट करने में वे अतुलनीय हैं। आचार्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्य और सुबोधिनी के कट्टर उपासक होने के नाते वे सुबोधिनी के गहन से गहन रहस्यो को अपने सरस मधुर सक्षिप्त पदो में व्यक्त कर देने मे अत्यन्त कुशल हैं। उनके पदो को यदि सुबोधिनी का भाष्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। लीलावतारी भगवान् की प्रणय लीलाओ को इतनी पवित्रता के साथ हिन्दी साहित्य मे प्रस्तुत करने वाला उनके अतिरिक्त कोई दूसरा कवि नही। भगवान् के माहात्म्य का ज्ञान कराकर अपने पदो के माध्यम से जन-मन को सासारिकता से खीचकर भगवच्चरणारविंद में लगा देने में उनकी सफलता अपूर्व है। परमानन्ददास जी से अधिक भागवत का अनुसरण करने वाला शायद ही कोई अन्य कवि हो। सूर के उपरान्त ब्रज-सस्कृति का पूरा-पूरा चित्र उनके पदो में मिल जाता है।

सक्षेप में वे 'निर्गुण-प्रीति' के अमर गायक भाव-क्षेत्र के अद्वितीय कवि हैं। उनका सूक्ष्म निरीक्षण, भाव-प्रवणता, कल्पना, अनुभूति, सगीतात्मकता तथा भाषा की सजीवता, मधुरता, सरलता सुबोधता एवं रसात्मकता सभी कुछ हिन्दी साहित्य की अमर सम्पत्ति है।

गोवर्धननाथ शुक्ल

———

श्री परमानंददास जी के दीक्षा गुरू

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य

[श्री परीख जी के सौजन्य से]

परमानन्द-स्तवन

१. सूर सूर जस हृदय प्रकासत।
परमानन्द आनंद बढ़ावत॥

२. कुंभनदास महारस कन्द।
प्रेम भरे निज परमानन्द॥

३. सर्वोपरि दास परमानन्द रे।
गाया गुणनिधि बालमुकुंद रे॥

द्वारकेश

४. पौगंड बाल कैशोर, गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ, पहिलौ जसु गाई॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद् गद् गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यौ तन॥
'सारंग' छाप ताकी भई स्रवन सुनत आवेस देत।
ब्रज बधू रीति कलियुगविषे परमानंद भयो प्रेम केत॥

नाभादास

५. परमानंद और सूर मिल गाई सब ब्रज रीति।
भूलि जात विधि भजन की, सुन गोपिन की प्रीति।

ध्रुवदास

❀ श्रीहरि ❀

परमानन्द सागर

[पद-संग्रह]

विषयक्रमानुसार पद सूची

अष्टछाप के संस्थापक

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी

[श्री परीख जी के सौजन्य से]

❀ श्रीहरि ❀

परमानन्द सागर

[पद-संग्रह]

विषयक्रमानुसार पद सूची

(४) छठो पूजन

(५) पलना के पद

(६) अन्नप्राशन

(२८) श्री वामन जी के पद

(२९) विजयादसमी के पद

(१३) दशहरे के पद

[३३] धनतेरस के पद

[३४] रूप चतुर्दशी के पद

[३५] गाय खिलायबे के पद

[५४] स्वामिनी जी की उत्कृष्टता

[५५] मानापनोदन

[५६] अभिसार

श्री हरि

२

अथ

नित्य सेवा
के
कीर्तन

[परमानन्द सागर]

[६०] श्री आचार्य जी महाप्रभु स्मरण

[६१] श्री यमुना जी के पद

[६२] श्री गंगाजी के पद

[७३] आवनी के पद

[७४] राजभोग के पद

श्री हरिः

३

प्रकीर्ण-पद

विनय, महात्म्य शरणागति

[परमानन्द सागर]

४

परिशिष्ट

[परमानन्द सागर]

पद संग्रह

[१२४] डोल के पद

॥ श्रीहरिः ॥

अथ परमानन्द सागर

॥ मंगलाचरण ॥

[१]

चरन कमल बन्दौ जगदीस के जे गोधन संग धाए ।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए ॥
जे पद कमल युधिष्ठिर पूजित राजसूय मे चलि आए ।
जे पद कमल पितामह भीषम भारत मे देखन पाए ॥
जे पद कमल संभु चतुरानन हृदै कमल अंतर राखे ।
जे पद कमल रमाउर भूषन वेद भागवत मुनि भाखे ॥
जे पद कमल लोकत्रय पावन बलि राजा के पीठ धरे ।
सो पद कमल 'दासपरमानन्द' गावत प्रेम पीयूष भरे ॥

श्री जन्माष्टमी की बधाई

देवगांधार

[२]

जनमफल मानत जसोदा माय ।
जब नंद लाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाय ।।
गोद बैठि गहि चिबुक मनोहर बातें कहत तुतराय ।।
अति आनन्द प्रेम पुलकति तन मुख चुंबत न अघाय ।
आरति चित बिलोकि बदन बिधु पुनि पुनि लेत बलाय ।।
'परमानन्द' मोद छिन छिनको मोपै कह्यो न जाय ।।

[३]

आज गोकुल में बजत बधाई ।
नंद महर के पुत्र भयो है आनन्द मंगल गाई ।
गाम गाम ते जाति आपनी घर घरतें सब[१] आईं ।।
उदय भयो जादौं कुल दीपक आनन्द की निधि छाईं ।।
हरदी तेल फुलेल अच्छत[२] दधि बंदनवार बँधाई ।।
बंदी सूत नंदराय घर घर सबहिन देत बधाई ।
आज लाल को जनम द्यौस है मंगलचार सुहाई ।
'परमानन्ददास' को जीवन तीन लोक सचुपाई ।।

[४]

ब्रज में फूले फिरत अहीर ।
ढोटा भयो नंद बाबाकें सुखनिधि स्याम सरीर ।।
मंगल कलस दूब दधि अच्छत वेद पढत द्विज धीर ।
फूले नंदराय पहरावत छिरकत कुमकुम नीर ।।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट्यो जादों बीर ।।

---

१ न्यौति बुलाई ।
२ सुवासित ।

[५]

आज अति बाढ़्यौ है अनुराग ।
पूत भयौरी नंद महरकें बड़ी बैस बड़भाग ।।
दई सुबच्छ लच्छ द्वै गैयाँ नंद बढायो त्याग ।
गुनी गनक[१] बंदीजन मागध पायो अपनो लाग ।।
फूले[२] ग्वाल मानों रनजीते आनंद फूले बाग ।
हरद दूब दधि माखन छिरकें मच्यो भदैया[३] फाग ।।
गोपी गोप ओप सब के मुख गावत मंगल राग ।
'परमानंददास' भक्तन कौ अब भयौ परम सुहाग ।।

राग रामकली

[६]

सुनोरी आज [मंगल] नवल वधायो है ।
नंदमहर घर रानी जसोदा ढोटा जायो है ।।
घोख-घोख प्रति गलिन-गलिन प्रति आनंद दरसायो है ।
घर घरतें नर-नारी मुदित जुरि जूथन धायो है ।
लै लै साज समाज सबै ब्रजराज पैं आयो है ।
गावत गीत पुनीत परम रुचि लगत सुहायो है ।।
धरति साथिये, तोरन बांधति दधि छिरकायो है ।
नाचत कूदत करत कुलाहल मुरज बजायो है ।।
नंदराय सतकार सबन को कियो मन भायो है ।
वेदोक्ति गोदान द्विजनको अनगन द्यायौ है ।।
गरग परासर अन्वाचार्य मुनि जात कर्म करायो है ।
वासुदेव श्रीकृष्ण सुवन कौ नाम धरायो है ।।
ब्रजवासिन पांय परत सब सीस नवायौ है ।
वारंवार निहार कमल मुख हियो सिरायो है ।।

---

१ गन ।

२ कूदे ।

३ वर्षैय्या अथवा भादों मास को फाग ।

श्री जन्माष्टमी की बधाई

देवगांधार

[२]

जनमफल मानत जसोदा माय ।
जब नंद लाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाय ।।
गोद बैठि गहि चिबुक मनोहर बातें कहत तुतराय ।।
अति आनन्द प्रेम पुलकति तन मुख चुंबत न अघाय ।
आरति चित बिलोकि बदन बिधु पुनि पुनि लेत बलाय ।।
'परमानन्द' मोद छिन छिनको मोपै कह्यो न जाय ।।

[३]

आज गोकुल में बजत बधाई ।
नंद महर के पुत्र भयो है आनन्द मंगल गाई ।
गाम गाम ते जाति आपनी घर घरतें सब[१] आईं ।।
उदय भयो जादौं कुल दीपक आनन्द की निधि छाईं ।।
हरदी तेल फुलेल अच्छत[२] दधि बंदनवार बँधाई ।।
बंदी सूत नंदराय घर घर सबहिन देत बधाई ।
आज लाल को जनम द्यौस है मंगलचार सुहाई ।
'परमानन्ददास' को जीवन तीन लोक सचुपाई ।।

[४]

ब्रज में फूले फिरत अहीर ।
ढोटा भयो नंद बाबाकें सुखनिधि स्याम सरीर ।।
मंगल कलस दूब दधि अच्छत वेद पढत द्विज धीर ।
फूले नंदराय पहरावत छिरकत कुमकुम नीर ।।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट्यो जादो बीर ।।

---

१ न्यौति बुलाई ।
२ सुवासित ।

[५]

आज अति बाढ़्यौ है अनुराग ।
पूत भयौरी नंद महरकें बड़ी बैस बड़भाग ॥
दई सुबच्छ लच्छ द्वै गैयाँ नंद बढायो त्याग ।
गुनी गनक[1] बंदीजन मागध पायो अपनो लाग ॥
फूले[2] ग्वाल मानों रनजीते आनंद फूले बाग ।
हरद दूब दधि माखन छिरकें मच्यो भदैया[3] फाग ॥
गोपी गोप ओप सब के मुख गावत मंगल राग ।
'परमानंददास' भक्तन कौ अब भयौ परम सुहाग ॥

राग रामकली

[६]

सुनोरी आज [मंगल] नवल बधायो है ।
नंदमहर घर रानी जसोदा ढोटा जायो है ॥
घोख-घोख प्रति गलिन-गलिन प्रति आनंद दरसायो है ।
घर घरतें नर-नारी मुदित जुरि जूथन धायो है ।
लै लै साज समाज सबै ब्रजराज पै आयो है ।
गावत गीत पुनीत परम रुचि लगत सुहायो है ॥
धरति साथिये, तोरन बांधति दधि छिरकायो है ।
नाचत कूदत करत कुलाहल मुरज बजायो है ॥
नंदराय सतकार सबन को कियो मन भायो है ।
वेदोक्ति गोदान द्विजनको अनगन द्यायो है ॥
गरग परासर अन्वाचार्य मुनि जात कर्म करायो है ।
वासुदेव श्रीकृष्ण सुवन कौ नाम धरायो है ॥
ब्रजवासिन पांय परत सव सीस नवायौ है ।
वारंवार निहार कमल मुख हियो सिरायो है ॥

---

१ गन ।

२ कूदे ।

३ बधैय्या अथवा भादौं मास को फाग ।

[४]

धनि धनि रानी जसोमति तुम ब्रज सुबस बसायो है।
बहुत दिनन की आसा पूजी वांछित फल पायौ है॥
दिन दिन अधिक तिहारे गृह उत्सव आयो है।
मनि मानिक के भूषन अंबर जाचक जन लुटायो है॥
हरखे देव सुमन बरखे नभ निसान बजायो है।
'परमानंद' नन्द नन्दन सुजस सुनायो है॥

[७]

राग बिलावल

सो गोविन्द तिहारे बालक।
प्रगट भये घनस्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल कालक॥
कमलापति त्रिभुवनपति नायक भुवन चतुर्दस नायक सोई।
उतपति प्रलय कालकौ कर्ता जाके किये सबै कछु होई॥
सुनों नन्द उपनन्द कथा यह आयो छीर समुद्र को बासी।
बसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुण्ठ निवासी॥
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाये।
'परमानन्ददास' को ठाकुर बिहरत पुन्य तप के फल पाए॥

[८]

सोभा सिंधुन अनत रहीरी।
नंद भवन भरि उपटि सखीरी ब्रज की बीथनि फिरतबहीरी॥
देखन आज गईं हुती सजनी बेचन गोकुल मांझ दहीरी।
कहा कहि कहौं चतुर सखीरी कहत न मुख ससिहु न लहीरी॥
जसुमति उदर अगाधि उदधितें यहजु बात कहीरी।
'परमानन्द' प्रभु इन्द्र नीलमनि ब्रजजुवतिन उर लाय लईरी॥

[९]

प्रगट भये हरि स्त्री गोकुल मे।
नाचत गोपी गोप परस्पर आनन्द प्रेम भरे हैं मन मे॥
गृह गृह से गोपी सब निकसी कंचन थार धरे हाथन मे।
'परमानन्ददास' को ठाकुर प्रगटे नन्द जसोदा के घर मे॥

[१०]

राग जैतश्री

सुनियत आज सुदिन सुभरे गाई ।
बरस गांठ गिरिधरनलाल की बहोरि कुसल मे आई ॥
गोपी सब मिल मंगल गावत मोतिन चौक पुराई ।
विविध सुगंध उबटनो करिकें कुंवर कान्हहि अन्हवाई ॥
पीतांवर आभूषन सखियन कर सिंगार बनाई ।
निरखि निरखि फूलत ललतादिक आनन्द उर न समाई ॥
तिलक करत अच्छत दै जसुमति सुत की लेत वलाई ।
'परमानन्द' प्रभु सब मन भायो नन्द सुवन सुखदाई ॥

[११]

राग धनाश्री

सबै मिलि मंगल गावो माई ।
आज लालको जन्मद्यौस है बाजत रंग बधाई ॥
आँगन लीपो चौक पुरावो विप्र पढ़न लागे वेद ।
करो सिंगार स्याम सुन्दर कौं चोवा चन्दन मेद ॥
आनन्द भरी नन्द जू की रानी फूली अँग न समाई ।
'परमानन्ददास' तिहि औसर वौहोत न्यौछावर पाई ॥

[१२]

रानीजू आपुन मंगल गावै ।
आज लाल को जन्मद्यौस है मोतिन चौक पुरावै ॥
गाम गाम ते जाति आपुनी गोपिन न्यौति बुलावै ।
अन्वाचारज मुनि गरग परासर तिनपै वेद पढ़ावै ॥
हरदी तेल सुगंध सुवासित लालै उवटि न्हवावै ।
हरि तन ऊपर वारि न्यौछावर 'परमानन्द' पावै ॥

[१३]

जसोदा रानी सुबन फूलें फूली ।
तुम्हरे पुत्र भयो कुल मंडन वासुदेव समतूली ।।
देति असीस विरध दे ग्वालिन गाम गाम ते आईं ।
लैलै भेंट सबै मिल निकसी मांगलचार बधाई ।।
ऐसे दसक होंईं जो औरे सब कोउ सचुपावै ।
बाढ़ौ बंस नंद बाबा कौ 'परमानन्द' जिय भावै ।।

[१४]

नन्द महोत्सव

नन्द महोच्छ[१] मची बढ़ कीचै ।
अपने लाल पर वार न्यौछावर सब काहू कों दीजै ।।
विप्रन देहु गाय और सोनों माटन रूपो दाम ।
ब्रज जुबतिन पाटंबर भूखन पूजें मन के काम ।।
नाचो गावो करो बधाई अजनम जनम हरि लीनों ।
यह अवतार बाललीला रस 'परमानन्दहि' भीनो ।।

राग सारंग

[१५]

आज नंदराय के आनन्द भयो ।
नाचत गोपी करत कुलाहल मंगल चार ठयो ।।
राती पीरी चोली पहरें नौतन झूमक सारी ।
चोबा चन्दन अंग लगाये सेंदुर माँग सँभारी ।।
माखन दूध दह्यो भरि भाजन सकल ग्वाल लै आये ।
बाजत बैनु पखावज मनोहर गावत गीत सुहाए ।।
हरद दूब अच्छत दधि कुमकुम आँगन बाढ़ी कीच ।
हँसत परसपर प्रेम मुदित मन लागि लागि भुज वीच ।।
चहुँ वेद ध्वनि करत महामुनि पंच सवद ढपढोल ।
'परमानंद' वाढ्यौ गोकुल मे आनंद-हृद[२] कलोल ।।

---

१ महो ।
२ हृदं ।

[१६]

गोकुल में बाजत कहाँ बधाई।
भीर भई है नंदजू के द्वारें अष्ट महासिद्धि आई ॥
ब्रह्मादिक रुद्रादिक जाकी चरन रेनु नहीं पाई।
सोई नंदजू को पूत कहावै कौतिक सुनो मेरी माई ॥
ध्रुव अंबरीस प्रहलाद बिभीसन नित नित महिमा गाई।
सो हरि 'परमानंद' को ठाकुर ब्रज जन केलि कराई ॥

[१७]

नंदजू तुम्हारें जायो पूत।
खोलि भंडार अब देहु बधाई तुम्हारे भागि अद्भूत ॥
लै लै दधि घृत देहरी पखारो तोरन माल बँधाई।
कंचन कलस अलंकृत रतनन विप्रन दान दिवाई ॥
विप्र सबै मिलि करत वेद ध्वनि हरखित मंगल गाये।
सब दूख दूरि गये 'परमानंद' आनंद प्रेम बढ़ाये ॥

[१८]

नंद बधाई दीजे ग्वालन।
तुम्हारे स्याम मनोहर आये गोकुल के प्रति पालन ॥
जुवतिन बहु विधि भूखन दीजै विप्रन कों गोदान।
गोकुल मंगल महोच्छव कमल नैन घनश्याम ॥
नाचत देव विमल गंधरव मुनि गावैं गीत रसाल।
'परमानंद' प्रभु तुम चिर जीयो नंद गोप के लाल ॥

[१९]

तुम जो मनावत सोई दिन आयो।
अपने बोल करो किन जसुमति लाल घुटुरुवन धायो ॥
अब चलि हैं पायन ठाड़े ह्वै महरि बजाय बधायो।
घर घर आनंद होत सवन के दिन दिन बढ़त सवायो ॥

इतनों बचन सुनत नंद रानी मोतिन चौक पुरायो ।
बाजत तूर बरना[1] मिलि गावत लाल पटा बैठायो ।।
'परमानंद' रानी धन खरचत ज्यों विधि बेद बतायो ।
जा दिन को तरसत मेरी सजनी गहि अँगुरियन लायो ।।

[२०]

आज बधाई को दिन नीको ।
नंद घरनि जसुमति जायो है लाल भामतौ जीको ।।
पंच सबद बाजे बाजत घर घरतें आयो टीको ।
मंगल कलस लिये ब्रज सुन्दरि ग्वाल बनावत छींको ।।
देत असीस सकल गोपी जन चिरजीवौ कोटि बरीसो ।
'परमानंददास' को ठाकुर गोप भेस मे दीसो ।।[2] ।।

[२१]

घर घर ग्वाल देत हैं हेरी ।
बाजत ताल[3] मृदंग बांसुरी ढोल दमामा भेरी ।।
लूटत झपटत खात मिठाई कहि न सकत कोउ फेरी ।
उनमद ग्वाल करत कोलाहल ब्रज बनिता सब घेरी ।।
धुजा पताका तोरन माला सबै सिंगारी सेरी ।
जय जय कृष्न कहत 'परमानन्द' प्रकट्यो कंस को बैरी ।।

[२३]

नाचत हम गोपाल भरोसे ।
गावत बाल विनोद ग्वाल के नारद के उपदेसे ।।
संतन कौ सरबसु सुख सागर नागर नंद कुमार ।
परम कृपाल जसोदा नंदन जीवन प्रान आधार ।।
ब्रह रुद्र इन्द्रादि देवता जाकी करत किवार[4] ।
पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह लीला अबतार ।।
सरग नरक को अब डर नाहीं विधि निसेध नहीं आस ।
चरन कमल मन राखि स्याम के बलि 'परमानन्ददास' ।।

---

१ (वन्ना गाना), सबन ।
२ जगदीसो ।
३ पचवाद्य ।
४ ताके करत बिचार ।

[२३]

गह्यो नंद सब गोपिन मिलिकै देहु हमारी बधाई।
अखिल भुंवन की जो है महा सिद्धि सो तुम्हरे गृह[१] आई।
बाजत तूर करत कोलाहल मंगल चार सुहाई।
कंचुकि ऊपर कचतर लटकत ये छवि बरनि न जाई॥
दै दै कनिक पाटंबर भूखन ग्वाल सबै पहराई।
'परमानन्द' नंद के आंगन गोपी महानिधि पाई॥

[२४]

गोकुल आज कुलाहल पाई।
ना जानौं यह अस्ट महा सिधि कहो कहाँ ते आई।
बोले नामकरन के कारन गर्ग विमल जस गाई।
'परमानन्द' सन्तन हित कारन गोकुल आये माई॥

[२५]

ब्रज मे होत कुलाहल भारी।
आनन्द मगन ग्वाल सव नाचत देत परस्पर तारी॥
नन्दराय के भवन में आवत आनन्दित ब्रज नारी।
पुत्र जनम सुनि हरख भयौ है 'परमानन्द' वलिहारी॥

[२६]

धन्य यह कूख जन्म जहां लीनो गिरि गोवर्द्धनधारी।
लरिका कहा वहुत सुत जाये जो न होय उपकारी॥
एक सो लाख वरावर गिनियै करै जो कुल रखवारी।
अति आनन्द कहत गोपी जन मन क्रम वचन विचारी॥
इन्द्र कोप कीनो ब्रज ऊपर मघवा[२] गरव निवारी।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गो वृन्दावन[३] चारी॥

---

१ घर।

२ वृष्टि।

३ भुज बल गर्व प्रहारी।

[२७]

चलो भैया आनन्द[१] राय मे जैये ।
जसुमति लाल लाडिलो जनम्यो कछुक बधाई पैये ।।
जाचक जन आवत माँगन को सुरभी हेम पर दीने ।
दुख दारिद नसे सबहिन के जन्म अजाचिक कीने ।।
घुरत निसान सबद सहनाई बाजत है जो बधाई ।
भामिनी सब मिलि मंगल गावति मोतिन चौक पुराई ।।
कौन पुन्य तप कीने नंदजू कहे न आवै पार ।
'परमानन्द' प्रभु बैकुण्ठ जाके, ब्रज लीनो अवतार ।।

[२८]

नंद गृह बाजत कहूँ बधाई ।
जुरि आईं सब भीर आँगन में जन्मे कुंवर कन्हाई ।।
सुनत चली सब ब्रज की सुन्दरि कर लिये कंचन थाल ।
कुमकुम केसरि अच्छत स्री फल चलत चलित गति चाल ।।
आज मैया यह भली भई है नंदजू तुम घर ढोटा जायो ।
हृदै कमल फूल्यो जो हमारो सुनत बहौत सुख पायो ।।
दान करन विप्रन बहु दीने सब की लेत असीस ।
पुहुप होय वृष्टि करत 'परमानंद' सुर जो कोटि तेतीस ।।

[२९]

आनन्द की निधि नंद कुमार ।
प्रगट[२] ब्रह्म नर[३] भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार ।।
स्रवनन[४] आनन्द लोचन आनंद[५] मन मे आनंद आनंद मूरति ।
गोकुल आनंद गाइन[६] आनंद नंद जसोदा आनंद पूरति[७] ।।

---

१ राजगृह ।
२ परब्रह्म ।
३ नट भेस ।
४ श्रवणनि ।
५ मन में आनन्द, लोचन आनन्द, आनन्द पूर्ति ।
६ गोपी ।
७ मूरति ।

[२९]

सब दिन आनंद धेनु चरावत वेनु बजावत आनंद कंद ।
खेलत हँसत[1] कुतूहल आनंद राधापति वृन्दावन चंद ।।
सुक[2] मुनि आनंद भक्तन[3] आनंद निसि दिन आनंद विलास ।
चरन[4] कमल अनुहरत निरन्तर अति आनंद 'परमानन्ददास' ।।

[३०]

वदन निहारति है नंदरानी ।
कोटि काम सतकोटि चंद्रमा, कोटिक रवि वारति जिय जानी ।।
सिव विरंचि जाकी पार न पावत सेष सहस गावत रसना री ।
गोद खिलावति महरि जसोदा 'परमानंद' किए बलिहारी ।।

[३१]

पद्म धर्‌यो जन ताप निवारन ।
चक्र सुदसन धर्‌यो कमल कर भगतन की रच्छा के कारन ।।
संख धर्‌यो रिपु उदर विदारन गदा धरी दुस्टन सिंघारन ।
चारों भुजा चारो आयुध धरे नरायन भुव भार उतारन ।।
दीनानाथ दयाल जगत गुरू आरति हरत भक्त चिन्तामन ।
'परमानंददास' को ठाकुर यह औसर मो छांड़ौ जनि ।।

[३२]

आठें भादौं की अँधियारी ।
गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारी ।।
सेस सहस्र फन बूंद निवारत सेत छत्र सिर तान्यौ ।
वसुदेव अंक मध्य जगजीवन कहा करैगौ पान्यौ ।।
जमुना थाह भई तिहि औसर आवत जात न जान्यौ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर देव मुनिन मन मान्यौ ।।

---

१ नृतत ।
२ सुरमुनि ।
३ भक्तन ।
४ चरण कमल मकरद पान के अलि मानन्द परमानन्ददास ।

[३३]

यह धन धर्म ही तें पायौ ।
नीकें राखि जसोदा मैया नारायन ब्रज आयौ ।।
या धन कों मुनि जप तप खोजत बेद हू पार न पायौ ।
सो धन धर‍्यो छीर सागर मँह ब्रह्मा जाय जगायौ ।।
जा धन तें गोकुल सुख लहियत सगरे काज सँवारें ।
सो धन बार बार उर अन्तर 'परमानन्द' बिचारें ।।

[३४]

हरि जनमत ही आनन्द भयौ ।
सब विधि प्रगट भई नंद द्वारे सब दुख दूरि गयौ ।।
वासुदेव देवकी मतो उपायो पलना माँझ लयौ ।
कमला कंत दियौ हुँकारौ जमुना पार दयौ ।।
नन्द जसोदा के मन आनंद गर्ग बुलाय लयौ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोकुल प्रगट भयौ ।।

[३५]

रानीजु तिहारो घर सुबस बसो ।
सुनिरी जसोदा या ढोटा कौ न्हातहि जनि बार खसो ।।
कोऊ करत बेद धुनि मंगल कोऊ अति आनन्द लसो ।
निरखि निरखि मुख कमल नैन कौ आनन्द प्रेम हिए हुलसो ।।
देत असीस सकल गोपी जन कोऊ गावो कोऊ बिहसों ।
'परमानन्द' नन्द घर आनन्द पुत्र जनम भयो जगत जसों ।

[३६]

जनम लियो सुभ लगन विचार ।
कृष्ण पच्छ भादो निसि आठैं नच्छत्र रोहिनि और बुधवार ।।
संख चक्र गदा पद्म बिराजत कुण्डल मनि उजियार ।
मुदित भये वसुदेव देवकी 'परमानन्ददास' वलिहार ।।

[३७] राग भैरव

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, देखत चन्द लजाया है॥
पूरन अखिल अलख अविनासी, प्रकट नन्द घर आया है।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, केसरि तिलक लगाया है॥
कानन कुंडल गल बिच माला कोटि भानु छवि छाया है।
संख चक्र गदा पदम बिराजे, चतुर्भुज रूप बनाया है॥
परमेस्वर पुरुषोत्तम स्वामी, जसुमति सुत कहलाया है।
मच्छ, कच्छ, बराह और बामन, राम रूप दरसाया है॥
खंभ फारि प्रगटे नरहरि वपु जन प्रहलाद छुड़ाया है।
परसुराम वपु निकलंक होय भुव का भार मिटाया है॥
काली मरदन कंस निकन्दन गोपीनाथ कहाया है।
मधुसूदन माधव निकंद प्रभु भगत वछल पद पाया है॥
दामोदर गिरधर गोपाल हरि त्रिभुवनपति मन भाया है॥
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेस सहस मुख गाया है।
सुर नर मुनि के ध्यान न आवत अद्भुत जाकी माया है॥
सो पारब्रह्म प्रगट होय ब्रज में लूटि-लूटि दधि खाया है।
'परमानन्द' कृष्ण मन मोहन चरन कमल चितलाया है॥*

[३८] राग सारंग

छठी पूजन

मंगल द्यौस छठी कौ आयो।
आनन्द ब्रजराज जसोदा मनहुँ अधन धन पायौ।
कुंवर न्हवाय जसोदा रानी कुल देवी कौ पांय परायौ।
वहु प्रकार विजन धरि चौगन सब विधि भलौ मनायौ॥
सब ब्रज नारी बधावन आईं सुतको तिलक करायौ।
जय जय कार होत गोकुल मे 'परमानन्द' जस गायौ॥

---

* प्रस्तुत पद की भाषा से परमानन्ददास जी के उपस्थिति-काल पर प्रकाश पड़ता है।—सेपा०

[४७] राग आसावरी

मात[1] जसोदा दह्यौ बिलोवै प्रमुदित बाल गोपाल जस गावैं।
मन्द मन्द अम्बर घन घोरै रई घघर[2] कै लावै॥
नूपुर कनक छुद्रघंटिका रजु आकरषित बाजै।
मिस्रित धुनि उपजत तिहि औसर देखि सचीपति लाजै॥
मंगल द्यौस सदा कौतूहल अजनम जनम हरि लीनो।
नन्द जसोदा को सुकृत फल बपु दिखाय सुख दीनों॥
सिव बिरंचि जाके पद बंदत सो गोकुल के बासी।
'परमानन्ददास' को ठाकुर पलना झूले सुख रासी॥

[४८] राग आसावरी

झुलावै सुत को महरि पलना कर लिये नवनीत।
नैनन अंजन गाल मसी बिंदुका तन ओढे पटपीत॥
बेनु देखत मंद हँसत हैं कबहुँक होत भयभीत।
दे करतार नचावत गोपी गावत मधुरे गीत॥
राई लौन उतारति बारति है होत सकल अग प्रीति।
पूरन ब्रह्म गोकुल मे झूले 'परमानन्द' पुनीत॥

[४९] राग रामकली

लाल कौ मुख देखन को हौं आई।
काल्हि मुख देख गई दधि बेचन जातहि गयौ बिकाई॥
दिन तें दूनों लाभ भयौ घर काजरि बछिया जाई।
आई हौं गाय थमाय साथ की मोहन देहौं जाई॥
सुन तिय[3] बचन विहँसि उठि बैठे नागर निकट बुलाई।
'परमानन्द' सयानी ग्वालिनि सैन संकेत बताई॥[4]

---

१ गोरी गुजरिया दही विलोवे
२ घमर
३ प्रिय
४ नित्य सेवा का पद

रामकली

अन्नप्राशन

[५०]

अनप्रासन दिन नँदलाल कौ करत जसोदा माय ।
ब्राह्मन देव पूजि कुल देवी वहोत दच्छिना पाय ॥
कुटुम जिमाय पटंवर दीने भवन आपुने आय ।
मागध भाट सूत सनमाने सव हित हरख वढ़ाय ॥
जेहि जेहि जाच्यौ सो तिन पायौ नंदराय वड़दानी ।
भगत हेतु प्रगटे जग[१] जीवन 'परमानन्द' गुन गानी ॥

रामकली

[५१]

यह मेरे लाल कौ अनप्रासन ।
भोजन दच्छना वहुत प्रियजनकौ देहू मनिमय आसन ॥
पायस भरि हर[२] पल्लव लैहो सव गुरुजन अनुसासन ।
'परमानंद' अभिलाख जसोदा वेगि वढ़ै खटमासन ॥

रामकली

[५२]

सुदिन सवारो सोधिके लालजू भोजन कीजै ।
कुल देवता मनहरख सो यहै माँगि मन लीजै ॥
ब्राह्मन भोजन और दच्छना अति आदर सों दीजै ।
आसीरवाद देत सवै मिल मन इच्छित फल लीजै ॥
यह वाढ़ो वेलि लाल कहे तें लोचन पुर[३] अमृत रस पीजै ।
'परमानंद' कहत नंद रानी देखि देखि मुख जीजै ॥

---

१ जन

२ फर

३ पुट

रामकली

[५३]

कनछेदन

गोपाल के बेधकरन को कीजै ।
गुरुबल तिथिबल नच्छत्र वार बलि सुभघरी बिचार लीजै ।।
गनिक निपुन द्वै चारि बैठिके मतो बिचारयो नीको ।
मुहूरत जामें दोस रहित सुख सागर है जीको ।।
दियो मनोरथ सब सुख दाता चीते मनोरथ पाये ।
नारि सीमंतनि गीत गवाए दिये भूखन मन भाये ।।
जसुमति माई गोद लै बैठी लाल देखि मन हरखे ।
सुची[१] माता के गोद बैठिके मूंदि स्रवन मन करखे ।।
कनिक सूचि लै स्रवन कों दीनी बेधत बार न लागी ।
बाल रुदन जब करन लग्यो रोहिनी मातु लै भागी ।।
पुचकारत चुंबत चांपत हिय लेहु बलैया तेरी ।
देत दान नंदराय विप्रन को कहे 'परमानंद' हेरी ।।

रामकली

[५४]

सूचो पढ़ि दीनी द्विजवर देवा ।
जाते पीर न होय करन को हम करिहें सब सेवा ।।
कहत जसोदा द्विजवर देवा तुव मन भायो कहिये ।
गोकुल के प्रतिपालन लायक नंद गोप कें रहिये ।।
ऐसो सुख अपने दृग देखो सबल संपदा बाढ़ी ।
यातैं कहा अधिक चहियतु है अस्ट महा निधि ठाड़ी ।।
चिर जीयो यह नन्द लाल तेरो द्विजवर बोलै बानी ।
नंदराय जस जुग-जुग बाढौ "परमानन्द" बखानी ।।

---

१ सुची माता कर देखिकै

विलावल

नामकरण

[५५]

जहां गगन गति गर्ग कह्यो ।।
यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यो ।
द्रोन धरावसु परम तपोधन, पुत्र नाम निरभय करी ।।
ते तुम नन्द जसोदा दोऊ वर माँग्यौ सुत देहु हरी ।
कहै नन्दराय ग्वालिन सबनके आगे सकल मनोरथ पूरन करे।।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर गोकुल की आपदा हरे ।।

विलावल

[५६]

नन्द ग्रह आयो[१] गर्ग विधि जानी[२] ।
राम कृस्न के नाम करन हित जदुकुल में सनमानी ।।
गज मोतिन के चौक पुराये नाम करन विधि ठानी ।
मंगल गीत गवावत जसोमति वोलत अमृत वानी ।।
प्रथम ही सुनो वड़े ढोटा कौ नाम रामवलदेव ।
हलधर और नाम संकर्षण कोऊ न जाने भेव ।।
अव यह नाम तुम्हारे सुत कौ सुनि चित दे नन्द ।
'कृष्ण' नाम केसव नारायन हैं हरि परमानन्द ।।
पद्मनाभ माधौ मधुसूदन वासुदेव भगवान ।
और अनन्त नाम इनके हैं कहो कहां लौं आन ।।
नन्द सुवन त्रिभुवन के ठाकुर तिनके नाम धराये ।
'परमानन्द'प्रभु अखिल लोक पति गोप भेस धरि आये ।।

---

१ धायो
२ ग्यानी

राग मालव

[५७]

मोहन नन्दराय कुमार।
प्रकट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हित अवतार॥
प्रथम चरन सरोज बंदौं स्यामघन गोपाल।
ललित कुंडल गण्ड मण्डित चारु नैन विसाल॥
बलराम सहित विनोद लीला सेस संकर हेत।
'दास परमानन्द' प्रभु हरि निगम बोलत नेत॥

लावनी

[५८]

सुनाहो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक पंडित आयो।
अपने सुत कौ हाथ दिखावो बुह कहै जो बिधि निरमायो॥
तुरत ही जन पठयो देखन को आनि बुलाय दियो अरघासन।
पाँय पखारि पूजि अंजुली ले तब द्विज पै मांग्यौ अनुसासन॥
मुख पखारि काजर टिकुली दै कंठनि सों हरि कंठ लगायो।
सुन्दर तात मात कनियाँ ले विप्र चरन बन्दन करवायो॥
दे असीस कर धरि कर देख्यौ सुनि बिसालनैनी सुत के गुन।
लोचन चिह्न होइ ये स्रीपति उदरदाम पावन सुभ वंदन॥
हृदय सूत पग देत बहुत गुन भुव मंडल या सम नहिं कोऊ।
'परमानन्द' करी न्योछावर हरखे नन्द जसोदा दोऊ॥

बिलावल

[५९]

अब डर कौन कौ रे भैया।
गरग वचन गोकुल मे बैठे हमरे मीत कन्हैया॥
कहत ग्वाल जसुमति के आगे हैं त्रिभुवन कौ रैया।
तोर्‌यो सकट पूतना मारी को कहि सकै वगैया[१]॥
नाचो गावो करो वधाई सुखैन[२] चरावो गैया।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर सब प्रकार सुख दैया॥

---

१ वधैय्या
२ सुखै नचावो

सारंग

करवट के पद

(शकटासुर उद्धार)

[६०]

करवट लई प्रथम नन्द नन्दन ।
ताकौ महरि महोच्छव मानत भवन लिपायो चन्दन ।।
वोली सकल धोख की नारी तिन कों कियो वंदन ।
मंगल गीत गवावत हरसत हँसत कहूँ मुख मंदन ।।
यह विधि भई घड़ी द्वै चारिक तव ही कुंवरि उठि जागे ।
भूलि गई संभ्रम में सुत को कछु एक रोवन लागे ।।
दई लाति गिर गयो सकट धँसि तब ही सबै उठि दौरे ।
विसमय भये विलोकत नैनन भूले से कछु बौरे ।।
लिये उठाय कुँवर ब्रज रानी रहसि कंठ लिपटाई ।
प्रेम विवस सब आपु न संभारत 'परमानन्द' बलिजाई ।।

गौरी

भूमि पर बैठाने के पद

(तृणावर्त लीला)

[६१]

हो वारी मेरे कमल नैन पर स्याम सुन्दर जिय भावै ।
चरन कमल की रैनु जसोदा लै लै सीस चढावै ।।
रसन दसन धरि वाल कृस्न पर, राई लौन उतारै ।
काहू निसचरि दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै ।।
लै उछंग मुख निरखन लागी विस्व-भार जब दीनो ।
करते उतारि भूमि राखे इहि बालक कहा कीनों ।।
तू मेरो ठाकुर तू मेरो वालक तोहि विस्वंभर राखै ।
'परमानन्द स्वामी' चित चोरयौ चिरजीवो यों भाखै ।।

देहली उल्लंघन

[६२] बिलावल एकताला

हरि कौ विमल जस गावत गोपांगना।
मनिमय आँगन नन्दराय के बाल गोपाल तहाँ करें रिंगना ॥
गिरि गिरि परत घुटरुवन टेकत जानु-पानि मेरे छंगन कौ मँगना।
धूसर धूर उठाय गोद लै मात जसोदा के प्रेम कौ भँजना ॥
तिरपद[1] भूमि मापी न आलस भयो अब जो कठिन भयो देहरी उलंघना।
'परमानन्द प्रभु' भक्त वत्सल हरि रुचिर हार वर कण्ठ सो है बघनखना ॥

[६३] सारंग

गावत गोपी मधु मृदुबानी× ।
जाके भवन बसत त्रिभुवनपति राजानंद जसोदा रानी ॥
गावत वेद भारती गावत नारदादि मुनि ग्यानी।
गावत गुन गंधर्व काल सिव गोकुलनाथ महातम जानी ॥
गावत चतुरानन जगनायक गावत सेस सहस्र सुख रास।
मन क्रम बचन प्रीति पद अंबुज अब गावत 'परमानन्ददास' ॥

[६४] सारंग

धनरानो जसुमति गृह आवत गोपी जन।※
वासरताप निवारन कारन बारंबार कमल सुख निरखन ॥
चाहत पकरि देहरी उलघन किलकि किलकि हसत मन ही मन।
राई लौनि उतारि दुहूँ कर वारि फेरि डारत तन मन धन ॥
लाले लेत उमंग चाँपति हियो भरि प्रेम बिबस लागे दृग ढरकन।
ले चली पलना पौढ़ावन कों अरकसाय पौढ़े सुन्दर धन ॥
देत असीस सकल गोपी जन चिरजीयौ लाल जोलौं गंग जमुन।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर भगत वछल भगतन मन रंजन ॥

१—गिरि पुहुमि मापत
× माहात्म्य सूचक
※ बधाई के दिन आशीश का पद

ऊखल के पद

(नल कूबर उद्धार)

[६५]

गोविन्द वार वार मुख जोवै ।
कमल नयन हरि हिलकनि रोवत बंधन छोड़ि यह सोवैं ॥
जो तेरो सुत खरोई अचगरो अपनी कूखि कौ जायो ।
कहा भयो जो घर के लरिका चोरी माखन खायो ॥
नई मटुकिया दह्यौ जमायो देव न पूजन पायो ।
तिहि घर देव पितर काहे के जिहि घर कान्ह रुवायो[२] ।
जाकौ नाम कुठार धार है यम की फांसी काटैं ॥
सो हरि बांधे प्रेम जेवरी जननी सांट लै डाटै ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करन भगत मन भाये ॥
देखि दुखी ह्वै सुत कुवेर के लाल जू आप बंधाये ॥

[६६] राग बिलाव[ल]

सुन्दर आउ नंदजू के छगन मगनियां ।
कटि पर आडबंद अति भीनो भीतर झलकत तनीयां ।
लाल गोपाल लाड़िले[१] मेरे सोहत चरन पैजनियां ।
'परमानन्ददास' के प्रभु की यह छवि कहत न बनियां* ॥

मृत्तिका भक्षण

[६७]

देखो गोपालजू की लीला ठाटी ।
सुर ब्रह्मादिक अचरज ह्वै हैं जसुमति हाथ लिये रजु सांटी
ये सब ग्वाल प्रकट कहत हैं स्याम मनोहर खाई मांटी
वदन उघारि भीतर देख्यौ त्रिभुवन रूप वैराटी

१—व्रज (प्रयोग)
२ कान्हर भावो
३ भावते
* प्रस्तुत पद नित्य-सेवा के अन्तर्गत शृंगार का है।

केसव के गुन वेद बखाने सेष सहस मुख साटी लाटी।
लख्यौ न जाय अन्त अन्तरगति बुधि न प्रबेस कठिन यह घाटी ॥
जनम करम गुन स्याम के बखानत समुझि न परै गूढ़ परिपाटी।
जाके सरन गये भय नाहीं सो सिधु 'परमानन्द' दाटी ॥

माता की अभिलाषा

राग गौरी

[६८]

जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलेगो।
तादिन[१] अति आनन्द[२] गिनोरी माई[३] रुनक झुनक ब्रज गलिन में डोलेगो
प्रात[४] ही खिरक माय दुहिबेकौ धाई बंधन बछरवा के खोलेगो।
'परमानन्द' प्रभु नवल कुँमर मेरो ग्वालिन के संग बन में किलोलेगो।X

राग गौरी

[६९]

जसोदा बदन जोवै बार बार कमल नैन प्यारे।
मधुपनि की पाँति बनी अलक घुंघरारे ॥
जो सुख ब्रह्मादिक कौं कबहूँ नहिं दीनो।
धरा* अरु बसुवादिक को सत्य बचन कीनो ॥
निगम गावं नेति नेति पारहू न पायो।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल सोई गोकुल आयो।

---

१ सो।

२ सुभग।

३ आलि।

४ भोर ही उठैगो धाय खिरक दुहि गाय बधन बछरुवा झटकि कर खोलेगो।

X बाल लीला का प्रारम्भ।

* तुलना कीजिये—

द्रोणो वसूना प्रवरो धरया सह भार्यया।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाचह ॥ भाग १० । ८ । ४८
अस्त्वित्युक्त. स भगवान् व्रजे द्रोणोमहायशा ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ भाग १० । ८ । ५०

[७०] राग गौरी

विमल जस वृन्दावन के चन्द को।
कहा प्रकास[१] चन्द[२] सूरज को सो[३] मेरे गोविन्द को ॥
कहत जसोदा सखियन आगे वैभव आनन्द कंद को।
खेलत फिरत गोप वालक संग ठाकुर 'परमानन्द' को ॥

[७१] राग गौरी

तेरी लाल की मोहि लागो वलाय।
वाल गोपाल छगुनवा मेरे चलो अंगन धाय ॥
लाल जू के लटकन मटकन पोहची नूपर वाजे पांय।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत मुदित जसोदा माय ॥
आनन्द भरी नंद जू की रानी अंग अंग निरखत भाय।
'परमानन्द' नंद नंदन कों राखों उर लपुटाय ॥

[७२] राग गौरी

तिहारो वात मोहि भांवत लाल।
वार वार जसुमति के भवन मे यह सुनत हों आवत लाल ॥
पार परौसिन अनख करति है औरे कछु लगावत लाल।
ताकी साखि विधाता जाने जिहि लालच उठि धावत लाल ॥
दधि को मथन और ग्रह कारज तुम्हरे प्रेम विसरावत लाल।
'परमानन्द' प्रभु कुंवर लाड़िले निरखि वदन सचुपावत लाल ॥

वाल लीला

[७३] राग सारंग

कहन लगे मोहन मैया मैया।
वावा वावा नंदरायसो और हलधर सो भैया भैया ॥
छगन मगन मधुसूदन माधो सव व्रज लेत वलैया।
नाचत मोर रहत संग उनके तोतरे वोल वुलैया ॥

१ प्रताप
२ भाग
३ जो

[२६]

दूरि खेलन जिन जाऊ मनोहर[1] मारेगी काहूकी गैय्या ।
मात जसोदा ठाड़ी टेरे लै लै नाम कन्हैया ।।
सब गोकुल मे आनंद उपज्यो घर घर होत बधैया ।
नंद नंदन की या छवि ऊपर परमानन्द बलैया ।।

[७४] राग सारंग

क्रीड़त कान्ह कनक आँगन ।
निज प्रतिबिंब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछाँवन ।
पकरन धावत, स्रमित होत तब आवत उलटि लाल तहँ डायन ।
'परमानंद' प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हँसि मुसकावन ।।

[७५] राग सारंग

रानी तेरे लाल सों कहा कहों ।।
जे जे कर्म नैन भरि देखति हौं अचम्भे रहों ।
तोर्यो सकट पूतना मारी तृनावर्त वध कीनो ।।
सात दिवस तेरेई ढोटा एक हाथ गिरि लीनो ।
जब तैं दाम उलूखल बांधे दरखत[2] तोरि गिराये ।।
कालिन्दी जल निर्विष कीनो गो[3] सुत मृतक जिवाये ।
है कोउ यह बड़ो देवता कै ब्रह्मा कै सम्भु ।।
'परमानंददास' को ठाकुर तिहूँ लोक को खंभ ।

[७६] राग सारंग

मोहन ब्रज कौ री रतन ।
एक चरित्र आज मैं देख्यौ पूतना पतन ।।
तृणावर्त ले गयो अकासे ताही को घतन ।
जे जे दुस्ट उपद्रव ठाने तिनही को हतन ।।
सुनिरी जसोदा या मोहन कों रीझत ।
'परमानंददास' को जीवन स्याम है सुत न ।।

---

१ मोहन
२ (फारसी) प्रयोग
३ गुरु

[७७] राग सारंग

मनिमय आँगन नंद के खेलत दोऊ भैया ॥
गोरे स्याम जोरी बनी वलि कुंवर कन्हैया ॥
नूपुर कंकन किंकिनी कटि रुन झुन वाजे ।
मोहि रही व्रज सुन्दरी मनसा सुत लाजे ॥
संग जसुमति रोहिनी हित कारिनि मैया ।
चुटकी दै दै नचावही सुत जानि नन्हैया ॥
नील पीत पट ओढ़नी देखत मोहि भावै ।
वाल विनोद आनन्द सूं 'परमानंद' गावै ॥

[७८] राग सारंग

यह तन कमल नैन पर वारौं[१] सामलिया मोहि भावेरी ।
चरन कमल की रैनु जसोदा ले ले सीस चढ़ावेरी ॥
ले उछंग मुख निरखन लागी राई लौन उतारे ।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै आंचल झारै ॥
तू मेरो वालक यदु नन्दन तोहि विसम्भर राखेरे ।
'परमानन्ददास' चिर जीवो वार वार यों भाखे रे ॥

[७९] राग मारंग

वाल दसा गोपाल की सब काहू भावै ।
जाके भवन में जात है सो लै गोद खिलावै ॥
स्याम सुन्दर मुख निरखि के अवला सचुपावै ।
लाल लाल कहि ग्वालिनी हंसि हंसि कंठ लगावै ॥
चुटकी दै दै मुदित ह्वै कर लाल वजावै ।
'परमानन्द' प्रभु नाचही सिसुताई जनावै ॥

---

१ वारि डारौं ।

[८०] राग सारंग

बाल बिनोद गोपाल के देखत मोहि भावै ।
प्रेम पुलकि आनन्द भरी जसुमति गुन भावै ॥
बलि समेत धन साँमरो आँगन मे धावै ।
बदन चूमि गोद लियो सुत जानि खिलावै ॥
सिव विरंचि मुनि देवता जाकौ पार न पावै ।
सो 'परमानन्द' ग्वाल कों हंसि भलो मनावै ॥

[८१] राग सारंग

हरि लीला गावत गोपी जन आनन्द में निसि दिन जाई ।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई ॥
दोहन मण्डन खंडन लेपन, मण्डन गृह सुत पति सेवा ।
चारि याम अवकास नहीं पल सुमिरत कृस्न देव देवा ॥
भवन भवन प्रति दीप विराजत कर कंकन नूपुर बाजै ।
'परमानन्द' घोख कौतूहल निरखि पाँति सुरपति लाजै ॥

[८२] राग सारंग

सोमुख ब्रजजन निकट निहारत ।
जा मुख कौं चतुरानन जानन[1] साधन करि करि हारत ॥
जा मुख को स्तुति नेति नेति प्रति सिव सनकादिक आरत ।
सो मुख नंद गोप के गोकुल बन बछरा गौ चारत ॥
जा मुख को सेस सहस मुख नाम लेत दिनन टारत ।
सो मुख 'परमानन्द' जसोदा लै उछंग चुचकारत ॥

[८३] राग सारग

नाहिन गोकुल वास हमारो ।
वैरी कंस वसत सिर ऊपर नित उठि करै खगारो[2] ॥
गाम गाम प्रति देस देस प्रति लोक लाज जानी ।
यह गोपाल कहाँ लै राखौं कहत नंदजू की रानी ॥

---

१ ध्यानन
२ हानि (अनर्थो)

सकट पूतना तृनावर्त ते यहं विधाता राख्यौ।
कैसे मिटै कह्यो संतन को गर्ग वचन जो भाख्यौ॥
जद्यपि परम ब्रह्म अविनासी महतारी उर मानै।
'परमानन्द' प्रीति ऐसी पुनि सुक मुनि व्यास बखानै॥

[८४] राग सारंग

भांवत हरि के बाल विनोद।
केसव राम निरखि अति विहँसत मुदित रोहिनी मात जसोद।
आँगन पंकराग तन सोहत चल नूपुर धुनि सुनि मन मोद।
परम सनेह वढ़ावत मनिमय रवकि रवकि वैठत चढ़ि गोद॥
अतिहि चपल सुखदायक निसिदिन रहत केलि रस ओद[१]।
'परमानन्द' अम्बुज लोचन फिर फिर चितवत निजजन कोद॥

[८५] राग सारंग

वाल विनोद खरे जिय भांवत।
मुख प्रतिविम्ब पकरिवे कों हरि हुलसि घुटरुवन धावत॥
कमल नैन माखन के कारन करि करि सैन वतावत।
सब्द जोरि वोल्यौ चाहत मुख प्रगट वचन नहिं आवत॥
कोटि ब्रह्मण्ड खंड की महिमा सिसुता माँहि दुरावत।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन जसुमति प्रीति वढावत॥

[८६] राग नारग

नन्दजू के लालन की छवि आछी।
पाय पंजनी रुनझुन[२] वाजत चलत पूँछ गहि वाछी॥
अरुन अघर दधि मुखलपटानो तन राजत छोंटे छाछी।
'परमानंद' प्रभु वालक लीला हँसि चितवत फिर पाछी॥

---

१ प्रोत प्रोत

२ धुन धुन

[८७] राग सारंग

आँगन खेलिये झनक मनक ।
लरिका जूथ संग मन मोहन बालक ननक ननक ॥
पैयाँ लागों पर घर जावो छाड़ों खनक खनक ।
'परमानन्द' कहत नन्दरानी बालनक[१] तनक तनक ॥

[८८] राग सारंग

रहिरी ग्वालिनि जोवन मदमाती ।
मेरे छगन मगन से लालहिं कित लै उछंग लगावति छाती ॥
खोजत ते अब ही राखे हैं न्हानी न्हानी दूध की दाँती ।
खेलन दै घर अपने डोलत काहे को एतो इतराती ॥
उठि चली ग्वालि लाल लागे रोवन तब जसुमति लाई बहु भाँती ।
'परमानन्द' प्रीति अन्तर गति फिरि आई नैननि मुसकाती ॥

[८९] राग सारंग

हरिहि जो बालक लीला भावै ।
माखन दूध दह्यौ की चोरी सोई जसोदा गावै ॥
सकट भंजि पूतना सोखी तृणावर्त बध कीनो ।
कंस हंतन जमुना उधरन भक्तन कों सुख दीनों ॥
वछरा चरावन मुरली बजावन जमुना काछ विहारी ।
'परमानन्ददास' कौ जीवन बृन्दावन संचारी ॥

[९०] राग सारंग

तुम्हारे बाल रूप पर वारी ।
मृग मद तिलक कंठ कठुला दति मुख मुसिकान विचारी ॥
घूँघर वारे बार स्याम के लर लटकत गज मोती ।
देखि स्वरूप नंद के नंदन कौ प्रान वारति सब जुवती ॥
काखासोती हँसुली धारे मोहन पीत झगुलियाँ सोहै ।
'परमानंददास' को ठाकुर देखि ब्रह्म हर मोहै ॥

---

१ बालक

[६१] राग सारंग

माई मेरे गोपाल लड़ैतो।
अपनो काहू छुवन न देहौं याहीते लोग वड़ैतो॥
मेरे कुंवर गोरस बहुतेरो लेन उधार न जइवो।
राखों जी कंठ लगाय लाल कौं पलना मांझ झुलइवो॥
परम विचित्र पांय पैजनियाँ चलन घुटुरुवन धइवो।
'परमानंद' नंद के आंगन लै लै नाम बुलइवो॥

[६२] लावनी

एक समय जसुमति सखियन सो बात कहत मुसकाय।
मो देखत कब धौं मेरे लालन भूमि धरैगो पांय॥
पुनि मैया मोसो कब कहि कै कुंवर कछुक हँसि आय।
भरि दै दूध दही के कारन तन गोरज लपटाय॥
खरिक दुहावन मोय जातही आय मिलैंगे धाय।
कह्यो[1] द्यौस होंइगो कबहुँ ललन दुहेगे आय।
सौंपिहैं सुत चरावन गैयां सुनि सजनी नंदराय,
यह अभिलास करति जसुमति जिय 'परमानंद' बलि जाय॥

[६३] राग बिलावल

माई तेरो कान्ह कौन अब ढंग लाग्यो।
मेरी पीठ पर मेलि करुरा वह देख जात भाग्यो॥
पांच बरस को स्याम मनोहर ब्रज मे डोलत नांगो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर कांधे पर्‌यो न तागो[1]।

पतंग उड़ायबे के पद

(६४) राग धनाश्री

गुडी उड़ावन लागे बाल।
सुन्दर पतंग बांधि मनमोहन नाचत[2] है मोरन के ताल॥
कोऊ पकरत कोऊ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल।
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत खरी करताल॥

---

१ तागो—फारसी शब्द। यज्ञोपवीत से तात्पर्य है
२ बादल

कोउ गुडी ते उरझावत आपुन ऐंचत डोर रसाल ।
'परमानन्ददास' स्वामी मन मोहन रीझि रहत एक ही काल ।।

[६५] राग धनाश्री

गोपाल माई खेलत हैं चौगान ।
ब्रज कुमार बालक संग लीने बृन्दावन मैदान ।।
चंचल बाजि[१] नचावत आवत होड़ लगावत यान ।
सब ही हस्त[२] लै गेंद चलावत करत बाबा की आन ।।
करत न संक निसंक महाबल हरत[३] नयन को मान ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गुन आनन्द[४] निधान ।।

---

१ पात अथवा ताजी
२ तन
३ हरति
४ आगरो

माखन चोरी

[९६] राग रामकली

गोपालै माखन खान दै।
बांह पकरि कर उहां लै जैहों मोहि जसोदा पै जान दै॥
सुनरी सखी मौन ह्वै रही सगरो बदन दह्यो लपटान दै।
उनत जाय चौगुनों लेहौं नयन तृसा बुझान दै॥
जो कहत हरि लरका है सुनत मनोहर कान दै।
'परमानन्द' प्रभु कबहूँ न छांडूँ राखोंगी तन मन प्रान दै॥

[९७] राग रामकली

बाबा जु मोहि दुहन सिखावौ।
गाय एक सों मिलबो हौंहूँ दुहौं बलदाऊ दुहावौ॥
लई नोई मेलि चरन[1] में लाडिलो कुँवर बछराऊ।
पानि पयोधर धरे धेनु कौ भाजन वेगही भरो उबराऊ[2]॥
तब नंदरानी नयन सिराये द्रुज बुलाय दई दच्छिना दिवाहू[3]।
बारि फेरि पीताम्बर हरि पर 'परमानन्द' ग्वाल[4] पहिराहू॥

[९८] राग रामकली

ढोटा मेरी दोहनी दुराई।
मोपै तें लीनीं देखन कों यह धौं कौन बढ़ाई॥
निपट सवेरी हौं उठि आतुर खिरक दुहावन आई।
जान अकेली या ढोटा ने बहुतै भांति खिजाई॥
द्वार उघारि खोल दिये बछरा वेखट गैया चुर वाई।
हौं पचिहारी कही नहिं मांनत बरजत[5] नाकै आई॥

---

१ मेली चरन में
२ सोउ पटाहू
३ दच्छिन वाहू
४ दासहि
५ वरवट

घर मेरी सास त्रासेगी[१] हौं कहा उत्तर देहौं जाई ।
'परमानंद' प्रभु तब हंसि दीनौ भई बात मन भाई ।।

बलदेव जी के पद

[९९] राग बिलावल

मैया निपट बुरो बलदाऊ ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरका जुरि आऊ ।।
मोहू कौं चुचकारि चले लै जहां बहुत बड़ो बन झाऊ ।
ह्वाँहीते कहि छाड़ि चले सब काटि खायरे हाऊ ।।
डरपि कांपि के उठि ठाडो भयौ कोऊ न धीर धराऊ ।
परि परि गयो चल्यौ नहीं जावै भाजे जात अगाऊ ।।
मोसौं कहत मोल कौ लीहो आप कहावत साऊ ।
'परमानन्द' बलराम चबाई तैसेई मिले सखाऊ ।।

[१००] राग सारंग

देखिरी रोहिनि मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया ।
जमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायौरी ।।
सुवल स्रीदामा साथ हँसि हँसि बूझै बात ।
आप डरपे और मोहि डरपायो री ।।
जहीं जहीं बोले मोर चित्त रहत ताही ओर ।
भाजोरे भाजो भैया वह देखो आयोरी ।।
आपु गये तरु चढ़ि मोहि छांडयो वाही तर ।
घर घर छाती करे दोर्यो घर आयोरी ।।
उछंग सो लिये लगाय कंठ सो रहे लपटाय ।
वारी रे वारी मेरो हियो भरि आयोरी ।।
'परमानद' रानी द्विज बुलाय वेद मंत्र पढ़ायो री ।
बछिया की पूंछ गहि हाथहि दिखायोरी ।।

---

१ मारंगी

[१०१] वसंत

हो हो होरी हलधर आवै ।
ऐसी प्रीति स्याम सुन्दर सौं हरि लीला अपने मुख गावै ॥
पियै बारुनी मन संकरषन नैन रसमसे कच कछु ढीले ।
भौंह चढी चढी सिर पाग लटपटी बचन गंभीर अधर गीले ॥
नील बसन छबि डगति चरन गति सुभ्र सरीर रोहिनी नंदन ।
'परमानंददास' जुबती प्रिय कुण्डल एक चढ़ाये चंदन ॥

[१०२] राग वसंत

मोहन मान मनायौ मेरो ।
हौं बलिहारी कमल नयन की नेकु चितै मुख फेरो ॥
माखन खाहु लेहु मुरली ग्वालन बालन टेरो ।
जोरी करिकै जोरि आपनी न्यारी गैयाँ घेरो ॥
कारो कहि कहि मोहि खिजावत नहीं बरजत बल अधिक अनेरो ।
इन्द्र-नीलमनि सो तन सुन्दर कहा जाने बल चेरो ॥
मेरो सुत सिरताज सबनकौ सबतें कान्ह बडेरो ।
'परमानन्द' भोर भयो गावै बिसद बिमल जस तेरौ ॥

[१०३] राग वसंत

लाल[१] कौं भावै गुड़ गाँड़े[२] अरु बेर ।
और भावे याहे[३] सेंद कचरिया लाम्रो बबा बनहेर[४] ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई और बिजन कौ ढेर ।
'परमानन्ददास' कौं ठाकुर पिल्ला लायो घेर ॥

---

१ मोहे

२ सेरना (सिरनी) अथवा (सिन्नी) खुशी अथवा मांगलिक आवसरों पर बांटी जाने वाली मिठाई ।

३ और भावे मोहे सेंद कचरिया लाम्रो नदजू हेर ।

४ और भावे याहे गैयन में बसिवो संग सखा सब टेर ॥

भोजन के लिए आह्वान

[१०४] राग बसंत

देखोरी गोपाल कहाँ हैं खेलत।
कै गायन संग गये अगाऊ के खिरक बछरवन मेलत ।।
कहत जसोदा सखियन आगे परोसि धरी है थारी।
भोजन आय करो दोऊ भैया बालक सहित मुरारी ।।
ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहिं कीजै।
बारंबार 'दास परमानन्द' हरि की बलैया लीजै ।।

[१०५] राग सारंग

भोजन को बोलत महतारी।
बल समेत आओ मेरे मोहन बैठे नंद परोसी थारी ।।
खीर सिरात स्वाद नहिं आवत बेगि ग्रास तुम लेहो मुरारी।
चितवत चित नीकें करि जेंवो पाछे कीजे केलि बिहारी ।।
अहो अहो सुबल सीदामा बैठो नेंक, करौं मनुहारी।
'परमानन्ददास' कौ जीवन मुख बिजन दै जाँउ बलिहारी ।।

[१०६] राग सारंग

बोलत स्याम जसोदा मैया।
अति आनन्द प्रेम रस उमगी हँसि हँसि लेत बलैया ।।
उर अंचल स्रमजल पोछत[१] पुनि पुनि अपने हाथ।
भोजन करौं लडैते मोहन सब ग्वालन के साथ ।।
सुत मुख चन्द विलोकि सकत नहिं मित्र समाज।
'परमानन्द प्रभु' परम मनोहर अति विचित्र ब्रजराज ।।

[१०७] राग धनाश्री

नैंक गोपालै दीजो टेर।
आज सवारे कियो न कलेऊ सुरत भई बडि वेर ।।
ढूंढत फिरत जसोदा मैया कहाँ कहाँ हो डोलत।
यह कहियो घर जाउ सांवरे बाबा नंद तोहि बोलत ।।

---

१ पोंछत।

इतनी बात सुनत ही आये प्रीति जो मन में जानी ।
'परमानंद' स्वामी की जननी देखि[१] बदन मुसकानी ॥

[१०८] राग धनाश्री

प्रेम मगन बोलत नंदरानी ।
अहो सुबल अहो स्रीदामा ले आवहु किन टेरि मट्ठबानी ॥
भोजन बार अबार जानि जिय सुरत भई आतुर अकुलानी ।
ढूँढत घर घर आंगन लौं तनकी दसा हिरानी ॥
जननी प्रीति जान उठि दौरे सोभित हैं कच रज लपटानी ।
'परमानंद' प्रभु नंद नंदन कौं अखियाँ निरखि सिरानी ॥

[१०९] राग धनाश्री

बलि गई स्याम मनोहर गात ।
तिहारो बदन सुधानिधि सीतल अँचवत दृग न अघात ॥
पलक ओट जिन जाउ पियारे कहत जसोदा मात ।
छिन एक खेलन जात द्यौस में पल जुग कल्प बिहात ॥
भोजन आय करो दोऊ भैया कुंवर लाडले तात ।
'परमानंद' कहत नँदरानी प्रेम लपेटी बात ॥

[११०] राग धनाश्री

यह तो भाग्य पुरुष मेरी माई ।*
मोहन कों गोदी मे लिये जेंवत हैं ब्रजराई ॥
चुचकारत पोंछत अम्बुज मुख उर आनँद न समाई ।
लपटे कर लपटात थोंदपर दूध धार[२] लपटाई ॥
चिबुक केस जब गहत किलकि कै तब जसुमति मुसकाई ।
माँगत सिखरण[३] दैरी मैया बेला भरि कै लाई ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी सोभा सहज निकाई ।
'परमानन्द' नारद मुनि तरसत घर बैठे निधिपाई ॥

---

१ देखत वदन सुकानी
* देखिए—श्री परीख जी की तृतीय गृह की तीसरी कीर्तन प्रति
२ लार ।
३ सिखरण—श्रीखंड [दही केशर-शर्करायुक्त लेह्य पदार्थ विशेष—अर्थ]

[१११] राग सारंग

भोजन करत हैं गोपाल ।
खट रस धरे बनाय जसोदा साजे कंचन थाल ॥
करति बयार निहारत सुत मुख चंचल नयन बिसाल ।
जो भावै सोही मेरे मोहन माधुरी[१] मधुर रसाल ॥
जो सुख सनकादिक कौं[२] दुरलभ दुरि देखत ब्रज बाल ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर चिर जीवौ नंदलाल ॥

[११२] राग सारंग

लाल कौं मीठी खीर जो भावै ।
बेला भरि भरि लावति जसोदा बूरो अधिक मिलावै ।
कनियाँ लिये जसोदा ठाढ़ी रुचि कर कौर बनावै ।
ग्वाल बाल बनचरन के आगे जूठे[३] हाथ दिखावै ॥
ब्रजरानीजू चहुँधा चितवत तनमन मोद बढ़ावै ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हँसि हंसि कंठ लगावै ॥

[११३] राग आसावरी

हरि भोजन करत विनोद सों ।
करि करि कौर मुखारविंद में देति जसोदा मोद सों ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध दह्यो घृत ओद[४] सो ।
'परमानन्द' प्रभु भोजन करत हैं भोग लग्यो संखोद[५] सो ॥

---

१ लैहो वचन ।

२ मुनि

३ झूठे ही ।

४ ओद = चावल [अर्थ]

५ शखोदक = भोग के समय शख द्वारा जल फेरना [अर्थ]

[११४] राग आसावरी

पांडे भोग लगावन न पावै।
करि करि पाक जबही अर्पत हैं तब तब तू छुइ आवै॥
मैं स्रद्धा करि ब्राह्मन न्योत्यौ तू जो गोपाल खिजावै।
वह अपने ठाकुर कों[1] जिमावत तू योंही[2] छुइ आवै॥
तू यह बात न जाने री मैया मोहि किन दोस लगावै।
'परमानन्द' वह नयन मूँदि कै मोही कों जु बुलावै॥

दधि मंथन

[११५] राग विलावल

अहो[3] दधि मथन करे नँदरानी।
बारे कन्हैया आर न कीजे छांड अब देहौं मँथानी॥
बारी मेरे मोहन कर पिरायेंगे कौन चित्त मति ठानी।
हँसि मुसकाय जननी तन[4] चितये सुधि सागर की आनी॥
जो गुन सरसुती छंदन, गावै नेति नेति मृदु बानी।
'परमानन्द' जसोदा रानी सुत सनेह लपटानी॥

[११६] विभास चचरी

गोविन्द दधि न विलोवन देहीं।
बार बार पांय परत जसोदा कान्ह कलेऊ लेहीं॥
बांधि छुद्र घन्टिका मुदित नन्द जू की रानी।
कंचन चीर धरि मनिगन वलय घोख कहत मृदु बानी॥
एक एक ते होय देव दैत्य सब कमठ मन्दराचल जानी।
देखत देव लच्छमी कम्पी जब गही गोपाल मथानी*॥
कृस्न चन्द ब्रजराज रमापति भूतल भार उतारे।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रजबसि जगत[5] उधारे॥

---

१ हैं।
२ वाहै।
३ हो।
४ तव।
* तुलना कीजिए सूर से—जब मोहन कर गही मथानी।
५ जात।

गो दोहन

[११७] राग बिलावल

माई साँवरो गोविन्द लोला।
ग्वाल ढाड़ी हँसै प्रान हरि में बसै काम की बाबरी चारू बोला ॥
आव री ग्वालिनि, मेल दे बाछरी आनि देहो दोहनी हाथ मेरे।
धेनु धौरी दुहूँ प्रेम बातें कहूँ मेरो चित्त लाग्यो है रूप तेरे ॥
बाल लीला भली सैन देकै चली आन देहौं दूध धार आय प्याऊँ।
'दासपरमानन्द' नंद नन्दन केलि चोरि चित्त चारु यों मिलन पाऊँ ॥

[११८] राग बिलावल

तनक कनक की दोहनी देरी मैया।
तात मोहि सिखवन कह्यौ दुहन धौरी गैया।
हरि बिसमासन बैठि कै मृदु कर थन लीनों।
धार अटपटी देखि कै व्रजपति हँसि दीनों ॥
गृह-गृह तें आईं सब देखन ब्रजनारी।
सकुचित सब मन हरि लियो हंसि धोख बिहारी ॥
दुज बुलाय दच्छिना दई बहु बिधि मगल गावैं।
'परमानन्द' प्रभु साँवरो सुख सिधु बढ़ावै[1] ॥

गोचारण

[११९] राग विभास

खेलन हो[2] चले ब्रजराई।
करतल बेनु लकुटिया कांधे कटि मेखला बनाई।
द्वार द्वार प्रति सखा बुलाए वछुरा ढिलवो भाई ॥
भोर भए अब तुम कहा सोवत हौ जागहु नंद दुहाई।
अपनी अपनी छाक लेहु तुम वहुत भाँति घृतसानी।
'परमानन्द' स्वामी की लीला या बिधि किनहु न जानी ॥

---

१ परमानन्ददास को ठाकुर आनन्द सिधु वढावै।
२ वन

[१२०] राग बिलावल

प्रथम गोचारन चले कन्हाई ।
माथे मुकुट पीताम्बर की छबि बनमाला पहराई ॥
कुण्डल स्रवन कपोल बिराजत सुन्दरता बन आई[१] ।
घर घर तें सब छाक लेत हैं संग सखा सुखदाई ॥
आगे धेनु हाँकि सब लीनी पाछें मुरलि बजाई ।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन ब्रज बासिन सुरत कराई ॥

[१२१] राग सारंग

भोजन करजु उठे दोऊ भैय्या ।
हस्त पखारि सुधा अचवन करिकें बीरी लेहु कन्हैय्या ॥
मात जसोदा करत आरती पुनि पुनि लेत बलैया ।
'परमानंददास' को ठाकुर ब्रजजन केलि करैया ॥

[१२२] राग सारंग

आज अति आनंद ब्रजराय ।
धन्य दिवस बन चलत प्रथम ही कान्ह चरावन गाय ॥
अपनो पीताम्बर लकुटि मुरलिका और सिर खौरि बनाइ ।
प्रीति सहित अवलोकि गहत हैं मात पिता के पाँय ॥
गोरोचन दूध दधि माथे रोरी अच्छत लाय ।
निरखि मुख अति आनंदित गोपीजन लेत बलाय ॥
ग्वाल विमल बलैयाँ लेत परस्पर घर घर ते सब आय ।
हेरी देत बजावत महुअरि उर आनंद न समाय ॥
ब्रज जन सब मिलि धेनुन सौंपत नैन निरखि सुखपाय ।
'परमानंद' प्रभु यहि बानिक ऊपर बलि बलि बलि बलि जाय ॥

---

१ बनिआई

[१२३] राग मालश्री तिताला

कांधे लकुटि धरि नन्द चले बन दोऊ बालक दीने आगे ।
राम कृस्न सों प्रीति निरंतर सखा पायो बड़ भागे ॥
पूरब संचित सुकृत रास फल अपनी आँखिन देख्यौ ।
मा समान अब कोऊ नाहीं जन्म सुफल करि लेख्यौ ॥
खेलत हँसत पंथ में धावत लरिकाई की बानी ।
'परमानंद' भगत सरन माधौ चारि पदारथ दानी ॥

[१२४] राग मालश्री

देखत ब्रजनाथ बदन कोटि बारों ।
जलज निकट नैन मन उपमा बिचारों ॥
कुंडल ससि सूर उदित अघटन की घटना ।
कुंतल अलिमाल तापै मुरली कल रटना ॥
जलद कंठ सुन्दर पीत बसन दामिनी ।
बनमाल सक्र-चाप मोही सब भामिनी ॥
मुक्तामनि हार मण्डित तारागन पांति ।
'परमानद' स्वामी गोपाल सब विचित्र भांति ॥

[१२५] मालश्री तिताल

गाय चारबे को व्यसनु ।
राधा मुख लाय राख्यौ नैननि कौ रसनु ॥
कबहुँक घर, कबहुँक बन खेलन को जसनु[१] ।
'परमानंद' प्रभुहि भावे तेरे ए मुख हँसनु ॥

[१२६] गौरी तिताला

मोहन नेक सुनाहुगे गौरी ।
बनतें आवत कुंवर कन्हैया पुहपमाल लै दौरी ।
ग्वाल बाल के मध्य विराजत टेरत ही धूमर-धौरी ।
'परमानंद' प्रभु की छवि निरखत परि गई प्रेम ठगौरी ॥

---

१ जशन (उत्साह, आनन्द, उत्सव) फारसी प्रयोग अथवा जतनु ।

[१२७]

राग गौरी

ठाडी बूझति नैन बिसालै ।
ताहि जसोदा सिखवन लागी त्रिभुवन गुरू गोपालै ॥
बलाइ लैहौं कत घर जात पराये दूध दही की चोरी ।
ए सब ग्वालि कहति हैं मोसो मारि दोहनी फोरी ॥
जिन पतियाय मया तू इनकौं[१] जुवती सुभाव न जाई ।
जो हम पोच करे काहू कों बाबा नन्द दुहाई ॥
खेलत हुते जहाँ रंग अपने झूंठे दोस लगावै ।
'परमानंददास' यह बूझै कौन बात जिय भावै ॥

[१२८]

राग सारंग

कौन बन जैहौ भैया आज ।
कहत गोपाल सुनो हो बालक करौ गमन कौ साज ॥
ऐसो चतुर कौन नन्द नन्दन जों जाने रस रीति ।
तहाँ चलो जहँ हरख खेलिये अरु उपजे मन प्रीति ॥
पूरे धेनु बिखान महुबारी छीके कंध चढ़ाये ।
रोटी भात दही भरि भाजन अरु आगे दै ग्वाल गाए ॥
ठौर ठौर कूकै दै प्रहसत आए जमुना तीर ।
'परमानन्द प्रभु' आनन्द रूप राम कृस्न दोऊ बीर ॥

[१२९]

राग यमन

लाल तुम कैसे गाय चराईं ।
ग्वाल संग छैय्यां मे बैठे कौन विपिन में जाईं ॥
कहाँ कहाँ खेले बालकलीला छुवत परस्पर धाईं ।
लै कांधे हारे जीते कौं दियौ ठौर पहुँचाईं ॥
ठाड़े कहाँ कदम तर गिरिधर माधुरी बैनु बजाई ।
मूँदे हग दुरि हो ग्वाल तुम दीने कहाँ बताई ।
गिरि चढि कहाँ बुलाई गैयाँ ऊँची टेर सुनाई ।
'परमानन्द' प्रभु कह्यौ कृपानिधि बूझति जसोदा माई ॥

---

१ जिनि पतियाय गैया इनकी वातें ।

गोदोहन

[१३०] राग सारंग

दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैया ।
कमल नैन कों अति भावत है, मथि मथि प्यावत घैया ।।
हँसि हँसि ग्वाल कहत सब बातें, सुन गोकुल के रैया ।
ऐसौ स्वाद कबहूँ[१] नहि पायौ अपनी सौंह कन्हैया ।।
मोहन अधिक भूख जो लागी छाँक बाँटि दे भैय्या ।
'परमानन्ददास' कों दीजै पुनि पुनि लेत बलैया ।।

[१३१] राग आसावरी

सांवरौ बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिरि चितयौ मोतन तब ते संग लगानी ।।
बे वा घाट पिवावत[२] गैयां हों इततें गई पानी ।
कमल नैन उपरेना[३] फेर्‌यौ 'परमानन्द' हि जानी ।।

[१३२] देव गन्धार तिताल

ठाढ़ी जसोदा कहै ।
यह ब्रज के लोग लाल के गोहन लागे रहै ।।
जाके भवन जात न कबहूं सो झूठे आनि गहै ।
एक गाँऊ इक बास बेसैबो कैसे जात निबहै ।।
तुम जिन खीजो मात जसोदा सबनि को जीवन यहै ।
'परमानन्द' आँखि जरो जाकी जू टेढी दृष्टि चहै ।।

[१३३] राग केदारा

अरी मेरो तनक सो गोपाल कहा करि जाने दधि की चोरी ।
काहे कौं आवति हाथ नचावति जीभ न करही ओरी ।।
कव छींकें ते माखन खायो कब दधि मटुकी फोरी ।
अँगुरिन करि कवहूं नहि चाखत घर ही भरी कमोरी ।।

---

१ कहूँ ।
२ चरावत ।
३ दुपट्टा (अर्थ)

इतनी बात सुनी जब ग्वालिन बिहँसि चली मुख मोरी।
'परमानन्द' नन्दरानी के सुत सों जो कछु कहै सो थोरी ॥

[१३४] राग केदारा

जसोदा चंचल तेरो पूत।
आनंद्यौ ब्रज बीथिन डोलत करै अटपटे सूत* ॥
दह्यौ दूध लै घृत आगें करि जहँ तहँ धर्यो दुराय।
अँधियारे घर कोउ न जाने तहं पहले ही जाय ॥
गोरस के सब भाजन फोरै माखन खायौ चुराय।
लरिकन के कर कान मरोरत तहं ते चले रुवाय ॥
बांट देत बनचर कौतुक करत बिनोद बिचार।
'परमानन्द प्रभु' गोपी वल्लभ भावै मदन मुरार ॥

[१३५] राग देव गान्धार तिताला

ढोटा रंचक माखन खायौ।
काहे कों करुई होति री ग्वालिनि सब ब्रज गाजि हलायो ॥
जाकों जितनो तुम जानति हौ दूनो मेरे लेहू।
मेरो कान्ह रहे दूबलो[१] आसिस सबै मिलि देहू# ॥
कमल नयन मेरो अंखियन तारो कुल दीपक ब्रज गेह।
'परमानन्द' कहत नन्दरानी सुत प्रति अधिक सनेह ॥

[१३६] विलावल तिताला

दधि मथति ग्वालि गरबीली री।
रुनक झुनक कर कंगन बाजे बाँह हलावति ढीली री ॥
कृस्न देव दधि माखन मांगत नाहिन देत हठीली री।
भरी गुमान विलोवन लागी अपुने रंग रंगीली री ॥
हंसि बोल्यो नन्दलाल लाड़िलो कछु एक बात कहीली री।
'परमानन्द' नन्दनन्दन कों[२] सरबसु दियो है छबीली री ॥

---

* स्वर [अर्थ]
#वात्सल्य की यह उत्कृष्ट भावना 'सूरसागर' में क्वचित् ही मिलती हैं।
१ दुकेलो।
२ प्रतिदेखिकै।

[१३७] बिलावल तिताला

प्रात समै गोपी नन्दरानी ।
स्रम अति उपजत तेहि औसर दधि मथत माट मथानी ॥
तेहि छिन लोल के बोल बिराजत कंकन नूपुर कुनित एक रस ।
रजु करखत भुज लागत छवि गावत मुदित स्याम सुन्दर जस ॥
चंचल अचपल कुच हारावली बनी चलित खसित कुसुमाकर ।
मनि प्रकास नहिं दीप अपेच्छा सहज भाव राजत ग्वालिन घर ॥
चढ़ि विमान देबता देखत गोकुल अमरावती बिसेखी ।
'परमानन्द' घोख कुतूहल जहाँ तहाँ अद्भुत छवि पेखी ॥

[१३८] सूहा बिलावल तिताला

बड़ भागिन गोकुल की नारि ।
माखन रोटी देय नचावति पद गावति मुखलेत पसारि ॥
सोभित बदन कमल दल लोचन सोभित केस मधु अनुहारि ।
सोभित मकर कुण्डल छवि सोभित किंकिनी करत उचारि ॥
सोभित नृत्य करत 'परमानन्द' गोपबधू बर भुजा पसारि ।

[१३९]

ऐसे लरिका कतहूँ न देखे बाट सुचालि गाँउ की माँई ।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गगरि दै मुरि मुसकाई ॥
तब हौं देन उरहनों आई कहा करौं जो नाकै आई ।
सुनहु जसोदा तुम ठकुरायनि तुम सो कहत मेरी बौराई ॥
पाछे ठाड़े मोहन चितवत धीरें ही ते औसर लाई ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर पचयो[२] चाहत चोरी खाई ।

[१४०] सूहा बिलावल तिताला

बहुतहि पचत या ढोटा पै कैसो धौंतहि लै लै आवत ।
हरि हरि हरि देखोरी माई जानों जू बात दुरावत ॥
विद्यमान दधि दूध चुरायो फिरि फिरि मोहि बौरावत ।
चतुर चोर विद्या समपूरन गढ़ि गढ़ि छोल बनावत ॥

---

२ पकर्‍यो

जो न पतियाहु सौंह ले मोसों साँची सपथ करावत ।
तेरे बक्षजात[1] जे सिव हैं तापर हाथ दिवावत ।।
बदन मोरि मुसकाइ चली है फिरि उरहन मिस आवत ।
'परमानन्ददास' कों ठाकुर स्याम मनोहर मन भावत ।।

[१४१] राग बिलावल

जब नन्दलाल नयन भरि देखे ।
एकटक रही संभार न तनकी मोहन सूरति[2] पैंखे ।।
स्याम बरन पीताम्बर काछे अरु चन्दन की खौर ।
कटि किंकिनि कलराव मनोहर सकल तियन चित चोर ।।
कुण्डल झलक परत गंडनि पर जाइ अचानक निकसे भोर ।
श्रीमुख कमल मन्द मृदु मुसकनि लेत करखि मन नंद किसोर ।।
मुक्ता माल राजति उर ऊपर चितए सखी जबै इह ओर ।
'परमानन्द' निरखि सोभा ब्रज बनिता डारति तृन तोरि ।।

[१४२] राग कान्हरा

आवत है गोकुल के लोचन ।
नंद किसोर जसोदा नन्दन मदन गोपाल बिरह दुख मोचन ।
गोप वृन्द में ऐसे सोभत ज्यों नच्छत्र मँह पूरन चन्द ।
बने जु धातु गुंजामनि सेली भैरव बन्यौ हरि आनन्द कन्द ।।
बर्हा प्रसून कंठ मनिमाला अद्भुत रूप नटवर काँछे ।
कुंण्डल लोल कपोल बिराजत मोहन बेनु बजावत आछे ।।
भक्त भ्रमर पावन जस गावत इहि बिधि ब्रज प्रवेस हरि कीनो ।
'परमानंद प्रभु' चलत ललित गति जसुमति धाय उछंगनि लीनो ।।

[१४३] राग सारंग

बनेरी गोपाल बाल इह[3] आवत ।
माधुरी मूरति मन मोहन मन भावत ।।
कुंचित केस सुदेस बदन पर बीच बीच जल बूँद रहै ।
मानो कमल पत्र पर मोती खंजन निकट सलील गहै ।।

---

१ स्तन द्वय [अर्थ]
२ मूरति
३ रस

गोपी नैन भृंग रस लंपट उडि-उडि परत बदन मांहीं।
'परमानन्ददास' रस लोभी अति आतुर कहँ जांही ॥

[१४४] राग गौरी

बरजति काहे तें नहीं।
हानि होति दिन प्रति की बातें कौलौं परति सही ॥
माखन खाई दूध गहि ढोरें लेपत अंग दही।
ता पाछे जो घर के लरिकनु भाजत छिरक मही ॥
जो कछु दुराइ धरौ दूरि कौ[१] जानत सही तही।
कहा बसाय तुम्हारे सुत सों अब पचहारि रही ॥
चंचल चपल चोर चिन्तामनि मोहन कथा न परति कही।
'परमानन्द' स्वामी उरहन के मिस मिलन कों ढूंढि रही ॥

माखन लीला

[१४५] राग बिलावल

जसोदा बरजत काहे न माई।
भाजन फोरि दही सब खायौ बातें कही न जाई ॥
हौं जो गई ही खरिक आपुने जैसेंहि आंगनि मे आई।
दूध दही की कीच मची है दूरि तें देख्यौ कन्हाई ॥
तब अपने कर सौं गहि कै हौं तुम ही पै लै आई।
'परमानन्द' भाग्य गोपी कौ प्रगट प्रेम निधि[२] पाई ॥

[१४६] राग बिलावल

ग्वालिनि तोपै ऐसौ क्यो कहि आयौ।
मेरौ घर घर जाय स्यामधन ताही ते दोस लगायौ ॥
घर कौ माखन दूध न भावै तेरौ दह्यौ क्यो खायौ।
वारि डारो कोटि तोसी तिरिया कौं जिन मेरौ लाल खिझायो ॥
कटुक वचन सुनि ग्वालिनि डोली[३] हरि सो नेह बढ़ायौ।
'परमानंद प्रभु' वत-रस अटकी घर कौ काज विसरायौ ॥

---

१ करि।
२ फल।
३ भोरी।

उरहाने के पद

[१४७] राग बिलावल

तेरे री लाल मेरो माखन खायौ ।
भरो दुपहरी सब सूनो घर ढंढोरि अब ही उठि धायौ ।।
खोलि किबार अकेले मंदिर दूध दह्यो सब लरकन खायौ ।
छींके ते काढ़ि, खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु भू ढरकायौ ।।
नित प्रति हानि कहाँ लौं सहिये यह ढोटा ऐसे ढंग लायौ ।
'परमानन्द' रानी तुम बरजो पूत अनोखो तेंहीं जायौ ।।

[१४८] राग बिलावल

भाजि गयो मेरो भाजन फोरि ।
कहा री कहूँ सुन मात जसोदा अरु माखन खायो चोरि ।।
लरिका पांच सात संग लीने रोके रहत साँकरी खोरि ।
मारग में कोउ चलन न पावत लेत हाथ तें दूध[1] मरोर ।।
समझ न परत या ढोटा की रात दिवस गोरस ढंढोर ।
आँनदे फिरत फाग सो खेलत तारी देत हँसत मुख मोर ।।
सुन्दर स्याम रंगीलो ढोटा सब ब्रज बाँध्यौ प्रेम की डोर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर स्यानी ग्वालिन लेत बलैया अंचर छोर ।।

[१४९] राग बिलावल

लियो मेरे हाथ ते छिड़ाई ।
तावन[2] कों लावत ही माखन डार्यो है कुंमर कन्हाई ।।
बूझन लाग्यौ मोही कों कौन है पाहुनी कहा तेरो नाम ।
देखियत कहूँ भली मानस सी कहिधौं कहा तेरो गाम ।।
देखत रूप ठगी सी ठाडी मन मोहन रूप निकाई ।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर प्रेम ठगौरी लाई ।।

---

१ दोहनी हाथ मरोरि ।
२ [पिघलाने के लिए-अर्थ]

[१५०] राग आसावरी

माधौ जू जान दै हौं चली बाट ।
कमल नैन काहे कौं रोकत औघट जमुना घाट ॥
सखाउ देखि हैं कोऊ गहत सीस ते माट ।
तुम नाहीं डर मानत मोहन मेरे गोवर्धन बाट ॥
क्यों बिकायगो मेरो गोरस भोर करत हौ नाट ।
चन्द्रावली उझकि 'परमानन्द' निसिदिन एकहि ठाट ॥

[१५१] राग कान्हरा

कापर ढोटा नैन[१] नचावत कोहै तिहारे बाबा की चेरी ।
गोरस बेचन जात मधुपुरी आय अचानक बनमे घेरी ॥
सैनन दै सब सखा बुलाए बातहि बात समस्या फेरी ।
जाय पुकारौं नंदजू के आगे जिन कोऊ छुवौ मटुकिया मेरी ॥
गोकुल बसि तुम ढीठ भए हो बहुतै कान करत हौं तेरी ।
'परमानन्ददास को ठाकुर' बलि बलि जाऊँ स्यामघन केरी ॥

[१५२]

तेरी सो सुन सुन सुनरी मैया ।
याकें चरित तू नहीं जानत बोल बूझ संकरखन भैया ॥
ब्याई गाय बछरवा चाटत पीवत हौं प्रातखन धैय्या ।
याहि देख धौरी बिझुकानी मारन कों दौरी मोहि गैया ॥
द्वै सींगन के बीच परचौ मैं तहाँ रखवारो कोउ न रहैया ।
तेरो पुन्य सहाय भयो है अब उबर्यौ बाबा नंद दुहैया ॥
यह जु उखटि परी ही मोपै भाज चली कहि दैया दैया ।
'परमानन्द स्वामी' को जननी उर लगाय हँसि लेति बलैया ॥

---
१ नचत ।

[१५३] राग धनाश्री

भली यह खेलबे की बान ।
मदन गोपाल लाल काहू को राखत नाहिन कान ॥
सुनो जसोदा करतब सुतके पहले मांट मथान ।
ढोरि फोरि दधि डारि अजिर मँह कौन सहे नित हान ॥
अपने हाथ बन देत बनचरनकूं दूध भात घृत सान ।
जो बरजौ तो आँखि दिखावै परघर कूदि निदान ॥
ठाड़ी हँसत नंदजू की रानी मूंदि कमल मुख पानि ।
'परमानन्ददास' यह जानें बोल बूझ धौं आनि ॥

[१५४] राग धनाश्री

ऐसे माई लरिकन कों आदेस[1] कीजै ।
दूर ही ते भये दरसन देखिये पाँय लागि माँग कछु लीजै ॥
अब ही हरि ढंढोरि मांट सब या छिन मौन धरि बैठे ।
हौं पचिहारी कह्यौ नहीं मानत बिनती करत जातहैं ऐंठे ॥
सुनो हो जसोदा या करतब सुत के चोरी करि साध कहाये ।
जद्यपि यह गुन कमल नयन के 'परमानन्द' जिय भाये ॥

[१५५] राग सारंग

झूठे दोस गोपालै लावति ।
जहाँ जहाँ खेलै मेरो मोहन तहाँतहाँ उठि धावति ॥
कब तेरो दधि माखन खायो ऐसेई आवत हाथ नचावति ।
'परमानन्द' मदन मोहन कों ब्रज की लीला मन भावति ॥

[१५६] राग सारंग

मेरो हरि गंगा कौ सो पान्यौ ।
पाँच बरस कौ सुद्ध सांवरो तें क्यों[2] विसई जान्यौ ॥
नित उठि आवत हाथ नचावत कौन सहे नकबान्यौ ।
चूरी फोरत बाँह मरोरत भाँट दही कौ भान्यौ ॥

---

१ सामन
२ ताको

ठाड़ो हँसत नंदजू की रानी ग्वालिन बचन न मान्यौ ।
'परमानन्द' मुसकाय चली जब देख्यौ नंद धिरान्यौ[1] ॥

[१५७] राग सारंग

गोरस कहा दिखावन आई ।
जितनौक खायौ नंद जू के ढोटा बदलि लेहु मेरी माई ॥
जैसी कीनी तुमहीं कन्हैया मंदिर तें उठि धाई ।
पाँच सखी मिलि देत उराहनौं इहि तेरी कौन बड़ाई ॥
सुन्दर कान्ह छबीली नागर यहि मिस देखन आई ।
'परमानंद स्वामी' कों मिलि कै रहसि चली मुसकाई ॥

[१५८] राग रामकली

माखन चोर री हौं[2] पायौ ।
जावत[3] कहाँ जान कैसे पावत बहुत दिननहिं खायौ ॥
स्त्री मुख ते उघरी[4] द्वै दतियाँ तब हँसि कंठ लगायौ ।
'परमानन्द' प्रभु प्रानजीवन घन वेद विमल जस गायौ ॥ *

[१५९] राग मलार

यहाँ लौं नेक चलो नँद रानी जू ।
अपने सुत के कौतुक देखो कियो दूध में पानी जू ॥
मेरे सिर की चटक चूनरी लै रस मे वह सानी जू ।
हमरो तुमरो बैर कहा है फोरी दधि की मथानी जू ॥
ब्रज को बसिवो हम छाँड़दे हैं यह निस्चय करि जानौ जू ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करै बास रजधानी जू ॥

---

१ मुसकाय चली जब देख्यो नंद घर मान्यो

२ मैं ।

३ जैयतु ।

४ गई है ।

* हौं जो कहति हो होत कहा है नित उठ भाजन लगन छुपायो ।
वहुत बार फोरे लगि देख्यो मेरी घात न आयो ॥
वेनी की कर गही चामटी घूँघट मांझ दिखायो ।
मत रोवो तुम सो कौन कहत है ले उछङ्ग हुलरायो ॥

श्री राधाजू की बधाई

[१६०] राग विहाग

धन धन लाडिली[1] के चरन ।*
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन ॥
नखचन्द चारु अनूप राजत जोति जगमग करन ।
नुपूर कुनित कुंज बिहरत परम कौतिक करन ॥
नंद सुत मनमोद कारी विरह[2] सागर तरन ।
'दास परमानंद' छिन छिन स्याम ताकी सरन ॥

[१६१] राग धनाश्री

कुंवरी परगटी गान गावत ढाड़ी ढाड़िन आए ।
कीरतिजू की कीरति सुनि हम बहु जाचक पहिराए ॥
हम अभिलाख कछुअ न चाहत जीवेंगे जसगाए ।
मगन भए आँगन नाचत देखि बदन मुसकाए ॥
हीरा हाटक हार अमोलक रानीजू पहिराए ।
बारि बारि कुंवरी के मुख पर सबकों देत लुटाई ॥
आज मनोरथ बिन पूरे अनायास निधि पाई ।
'परमानंद स्वामी' की जोरी राधा सहज सुहाई ॥

[१६२] राग सारंग

रावल में बाजत कहाँ बधाई ।
प्रगट भई बृखभान गोप कें नंद सुवन सुखदाई ॥
घर घर तें आवत ब्रजनारी आनंद मंगल गावें ।
इक कुंकुम रोरी ते मोतिन चौक पुरावें ॥
हरखत लोग नगर के बासी भेंट बहोत बिधि लावें ।
'परमानंद दास' को ठाकुर बानी सुनि गुन गावें ॥

---

१ राधिका ।
* प्रस्तुत पद सम्प्रदाय में भाद्रपद शुक्ला १०मी के दिन गाया जाता है ।
२ मुरत ।

[१६३] राग सारंग

आज रावल में जय जय कार ।
प्रगट भयौ बृखभान गोपकै स्री राधा अवतार ।।
गृह गृह तें सब चली बेग कै गावत मंगल चार ।
निरतत गावत करत बधाई भीर भई अति द्वार ।।
'परमानंद' बृखभान नन्दिनी जोरी नंद कुमार[1] ।।

[१६४] राग सारंग

राधाजू कौ जन्म भयो सुनि माई ।
सुकल पच्छ निसि आठें घर घर होत बधाई ।।
अति सुकुमारी घरी सुभ लच्छन कीरति कन्या जाई ।
'परमानंद' नंदनंदन के आंगन जसुमति देत बधाई ।।

श्री राधा जी के पलना के पद—

[१६५] राग मारू

रसिकनी राधा पलना झूलें ।
देखि देखि गोपी जन फूलें ।।
रतन जटित को पलना सोहे ।
निरखि निरखि जननी मनमोहे ।।
सोभा की सागर सुकुमारी ।
उमा रमा रति वारी डारी ।।
डोरी ऐंचत भौंह मरोरै ।
वार वार कुंवरी तृन तोरै ।।
तिहि छिन की सोभा कछु न्यारी ।
अखिल भुवन पति हाथ संवारी ।।
मुख पर अंबर वारति मैया ।
आनंद भयो 'परमानन्द' भैया ।।

---

१ दुलार ।

[१६६] राग सारंग

स्री राधा जू को जन्म सुन्यौ[१] मेरी माई।
सकल सिंगार चली ब्रज गोपी घर घर वजत बधाई॥
अति सुकुमारि घरी सुभ लच्छिन कीरति ने यह जाई।
'परमानन्द' करी नौछावर घर घर बात लुटाई॥

[१६७] राग सारंग

आजु बधाई को बिधि नीकी।
प्रकटी सुता बृखभान गोप कें परम भावती जो को॥
जिन देखत त्रिभुवन की सोभा लागत है अति फीकी।
'परमानन्द' बलि-बलि जायेरी यह सुन्दर सांवरे पिय की॥

[१६८] राग सारंग

प्रगट्यो नव[२] कुंज कौ सिंगार।
कीरति कूखि औतरि कन्या सुन्दरता कौ सार[३]॥
नख सिख रूप कहाँ लौं बरनौं कोटि मदन बलिहार।
'परमानन्द' बृखभान नन्दनी जोरी नन्ददुलार॥

[१६९] राग सारंग

सुन्दरि सुभग कुंवरी एक जाई।
कहा कहौं यह गुन रूप प्रेम को मनहु मोट भरि लाई॥
फूलि गये जित तित सब ब्रज में सुख की लहरिजु बढ़ाई।
धन लहनों वृषभान गोप कौ भाग दसा चलि आई॥
धन आनन्द जसोदा रानी अपने भवन खिलाई।
बृन्दावन मे सखि यह प्यारो भाग अधिक सुख पाई॥
यह गिरधर कहत फिरि फिरिकै हमरे भागिन माई।
वृषभान नन्दनी प्रकटी 'परमानन्द' वलिजाई॥

---

१ भयो
२ प्रगट्यो सब ब्रज को सिंगार—देखो परीख जी वाली तृतीय प्रति।
३ ताको नार।

दानलीला के पद

[१७०] राग देवगंधार

रंचक चाखन दैरी दह्यौ ।
अद्‌भुत स्वाद स्रवन सुनि मोपै नाहिन परत रह्यौ ॥
ज्यो ज्यो कर अम्बुज उर[१] ढाँकत त्यों-त्यो मरम लह्यौ ।
नन्दकुमार हठीलौ ढोटा अंचरा धाय गह्यौ ॥
हरि हठ करत 'दास परमानन्द' ए मैं बहुत सह्यौ ।
इन बातनि खायौ चाहत हौ सैंतन[२] जात दह्यौ ॥

[१७१] राग देवगधार

मटुकिया लै जु उतारि धरी ।
इन मोहन मेरौ अचरा पकर्यो तब मैं बहुत डरी ॥
मोपै दान सावरो माँगत लीने हाथ छरी ।
मोहीं कौं तुम गहि जु रहे हौ संग की गई सगरी ॥
पैयाँ लागि करति हो बिनती दोउ कर जोरि खरी ।
'परमानंद प्रभु' गोरस[३] बेचन की बिरियाँ जात टरी ॥

[१७२] राग देवगंधार

गोरस वेचिबे मे माति ।
नंद नंदन बिन कोऊ न लैहै काहे को मथुरा जाति ॥
दूध दही के दाम कहिदै तै छुवत कहा सतराति ।
'परमानंद' ग्वालिनी सयानी मोल कहत[४] मुसकाति ॥

[१७३] राग गोरी

गोरस वेचत ही जु ठगी ।
कहा करे आप वस नाही मनसा अनत लगी ।
खेलत वीच मिले नंद नंदन कालिंदी के तीर ।
चितयौ नेक कमल दल लोचन मनमोहन वल वीर ॥

---

१ कुच
२ सैंत=सैंत मेत [मुफ्त—अर्थ]
३ दधि ।
४ करत

और सखी बूझन लागी करत कौन कौ मोल।
'परमानन्ददास' को ठाकुर मीठे तेरे बोल ॥

[१७४] राग कान्हरो

कापर ढोटा करत ठकुराई।
तुम तैं घाटि कौन या ब्रज में नंदहु तें बृखभान सवाई ॥
रोकत घाट बाट मधुवन[१] को ढोरत माट करत हौ बुराई।
निकसि लैहौ बाहिर होत ही लंपट लालच किये पत जाई ॥
जान प्रवीन बड़े कौ ढोटा सो सुध तुम कहां बिसराई।
'परमानंददास' को ठाकुर दै आलिंगन गोपी रिझाई[२] ॥

[१७५]

यह गोरस ले रे अनोखे दाना।
चले न जाउ अपने मग ढोटा हमसौं कौन चतुराई ठानी ॥
कौन हवाल कियो हरि मेरौ फिरि फिरि कहत अटपटी बानी।
ये सब बातें दौरि कहूँगी बैठी जहाँ जसोदा रानी ॥
अन्तरगत हरि सौं मिल्यौ भावै यह नागरी सन्मुखही रिसानी।
प्रान हू बसत तेरे कमल नयनमँह जियकी जन 'परमानंद' जानी ॥

[१७६] राग कान्हरो

कापर ढोटा नयन नचावत कोहै तिहारे बबा की चेरी।
गोरस बेचन जात मधुपुरी आय अचानक बन मे घेरी ॥
सैनन दै सब सखा बुलाए बातहि बात मटुकिया फोरी।
जाय पुकारौं नन्द जू के आगे जिनि कोऊ छुऔ मटुकिया मेरी ॥
गोकुल बसि तुम ढीट भये हो बहुतें कान करत हों तेरी।
'परमानन्ददास' कौं ठाकुर बलि बलि जाऊँ स्यामघन केरी ॥

---

१ मगवन।
२ आलिंगन गोपी जाई।

[१७७] राग कान्हरो

काहे कौं सिथिल किए मेरे पट।
नंद गोप सुत छाँड़ि अटपटी बार बार बन में कत रोकत बट ॥
कर लंपट परसो न कठिन कुच अधिक बिथा रहे निधरक घट।
ऐसो बिरुध है खेल तुम्हारो पीर न जानत गहत पराई लट ॥
कहूँ न सुनी कबहूं नहिं देखी बाट परत कालिन्दी के तट।
'परमानन्द' प्रीति अन्तर की सुन्दर स्याम विनोद सुरत नट ॥

[१७८] राग कान्हरो

पिछोड़ी बाँह न देहो दान।
सूधे मन तुम लेहु गुसांई राखि हमारौ मान ॥
मारग रोकि रहत नन्दनन्दन[१] सब गुन रूप निधान
बदन मोरि मुसकाई भामिनी नयन बान संधान ॥
नन्दराय के कुँवर लाड़िले सबके जीवन प्रान।
'परमानंद स्वामी' मोहन[२] हो तुम, तुम ते कौन सुजान ॥

[१७९] राग देव गंधार

कबहु न सुन्यौ दान गो रस कौ।
तुम तो कुँवर बड़े के ढोटा पार नहिं कछु[३] जस कौ ॥
रोकत हौ पर नारि बिपिन में नेकु नहिं जिय कसकौ।
'परमानन्द प्रभु' मिस जु दान को है कछु औरही चसकौ ॥

[१८०] राग देवगंधार

भोर ही ठानत हो का लै[४] झगरो।
आई गई सदा यह मारग किनहु न रोक्यौ डगरो ॥
तब मुसिकाय कही मन मोहन नन्द को लाल अचगरो।
रहि री ग्वालिनि जोवन मदमाती लेउ छीन दधि सगरो ॥
काहे को ढोटा नैन नचावत निकट है वृजराज कौ नगरो।
'परमानन्द' प्रभु यहि विधि विहरत रूप रासि गुन अगरो ॥

---

१ मन मोहन।
२ नागर
३ कहूँ
४ कापै

[१८१] राग बिलावल

सुनो बृजनाथ छाड़ौ लरिकाई ।
बरबस[१] प्रीति कहां ते उपजै तुम ठाकुर कित करत बरियाई ।।
कर गहि बाँह नांह अपने ज्यूं इकटक करि मारग में ठाड़ी ।
कबहुँ छुवत उर[२] कबहुँ तोरत लर कबहुँ गहत कंचुकी गाढ़ी ।।
तेरे नयन रोस में भामिनि जान देहुँ तोहि नंद दुहाई ।
'परमानद स्वामी' रति नायक प्रेम बचन कहि भलो मनाई ।।

[१८२] राग बिलावल

मैं तोसौं केतिक बार कह्यो ।
यह मारग एक सुन्दर ढोटा बरबट[३] लेत दह्यौ ।।
इत उत सघन कुंज गहबर मे तकि मारग रोकि रह्यौ ।
अति कमनीय अंग छबि निरखत नेकुन परत रह्यौ ।।
लोचन सुफल होत पल निरखत विरह न जात सह्यौ ।
'परमानंद प्रभु' सहज माधुरी मनमथ मान दह्यौ ।।

[१८३] राग बिलावल

नन्दनन्दन दान निबरत री ।
राखी रोकि दधि समेत ग्वालिनी सखा बृन्द प्रति टेरत ।।
जब उठि चलत प्रबल गोपीजन तब आगे उठि फेरत[४] ।
बांधि जठर पटपीत ललित गति करलै लकुटी फेरत ।।
काहूं के कुच भुज अंचल गहि सब दिन को मन फेरत ।
'परमानंद प्रभु' रसिक सिरोमनि मुसकत निरखत हेरत ।।

---

१ विनरस ।
२ कुच ।
३ बरबट=बलात् [अर्थ]
४ खदेड़ना [अर्थ]

[१८४] राग बिलावल

अब कछु नई चाल चलाई ।
तुम नंद के लाड़िले मोहन छोड़ो यह लरिकाई ॥
घाट बाट गिरि गहबर कन्दर सदा अटक तोहि भावै ।
गोकुल भये छबीले दानी मारग चलन न पावै ॥
चोलो चीर निहारत अंचल छाँडि लाल यह हांसी ।
'परमानंद प्रभु' छाड़ि अटपटी एक गाम के बासी ॥

[१८५] राग बिलावल

गोरस राधिका लै निकरी ।
नंद को लाल अमोलो गाहक ब्रज से निकसत पकरी ॥
उचित मोल कहि या दधि को लेहुँ मटुकिया सगरी ।
कछुक दान को कछु इक लेहो[१] कहां फिरैगी नगरी ॥
नन्दराय कौ कुंवर लाड़लो दधि के दाम कौं झगरी ।
'परमानन्द स्वामी' सो मिलि कै सरबसु दे डिगरी ॥

[१८६] राग विलावल

भोर ही कान्ह करत मोसौं झगरो ।
सवन छांड़ि करत मोसो नित उठि रोकि रहत है डगरो ॥
गोरसदान सुन्यौ नहिं देख्यौ किन लिखि दियौ दिखाओ कगरो ।
विना वौहनी छुअन नहिं देहौं यह सव छीन खाउ किन सगरो ॥
चुम्वत मुख उर लावत पकरत टेव न गई छुवत ही अगरो ।
'परमानंद' सयानो ग्वालिन छार्डौं नहीं जौ धरत नहीं पगरो ॥

[१८७] राग मालकोस

मेरी भरी मटुकिया ले गयौ री ।
आपुन खात ग्वालहि खवावत रीती कर मोहि दे गयौ री ।
वृन्दावन की सघन कुज मे ऊँची नीचो मोसो कहि गयो री ।
'परमानन्द' व्रज सांवरो अँगुस्ट दिखाय रस ले गयौ री ॥

---

१ मोल को

[१८८] राग सारंग

ग्वालिनि मीठी तेरी छाछि।
कहा दूध मे मेलि जमार्यौ सांची कहौ किन बाछ ॥
ग्रोरै भाँति चितैवो तेरो भौंह चलत हैं ग्राछि।
ऐसो टकझक कहूँ न देख्यौ तू जौ रही कछि काछि ॥
रहसि कान्ह कर कुच गहि परसत तू जो परति है पाछि।
'परमानन्द' गोपाल ग्रालिगी गोप बधू हरिनाछि ॥

[१८९] राग सारंग

मानो याके[1] बबा की चेरी।
गारी देत संक नहिं मानत ग्रावत मारग घेरी ॥
कब लगि लाज पास की कीजै कौन गुसाँइन तेरी।
'परमानन्द प्रभु' प्रेम ग्रन्तरगत परर.न के मिस हेरी ॥

[१९०] राग सारंग

लालन ऐसी बातें छाड़ौं।
मदन गुपाल छबीली ढोटा नित उठि मारग खाँड़ौ ॥
ग्रनौख दानी ग्रबही भये हौ मारग रोकत ग्रान।
प्रातहो ते इहाँई होत ठाड़े उगन न पावै भान ॥
चंद्राबलि[2] कहे सुनो मन मोहन यहजु समै है ग्रौर।
'परमानन्द प्रभु' जानि देहु तुम नन्द सुग्रन सिरमौर ॥

[१९१] राग सारंग

मोहन तुम जो बड़े के ढोटा।
कौन वूझियो रसिक सिरोमनि वन में जु करत झंझोटा ॥
ग्रावत जानि बहू बेटिन कौं ग्रौघट जमुना घाट।
मटुकी फोरत बाँह मरोरत चलन न पावै बाट ॥

१ याकी।
२ चन्दवदनि।

[१८४] राग बिलावल

अब कछु नई चाल चलाई।
तुम नंद के लाड़िले मोहन छोड़ो यह लरिकाई ॥
घाट बाट गिरि गह्बर कन्दर सदा अटक तोहि भावै।
गोकुल भये छबीले दानी मारग चलन न पावै ॥
चोलो चीर निहारत अंचल छाँडि लाल यह हांसी।
'परमानंद प्रभु' छांड़ि अटपटी एक गाम के बासी ॥

[१८५] राग बिलावल

गोरस राधिका लै निकरी।
नंद को लाल अमोलो गाहक ब्रज से निकसत पकरी ॥
उचित मोल कहि या दधि को लेहुँ मटुकिया सगरी।
कछुक दान को कछु इक लेहों[1] कहां फिरैगी नगरी ॥
नन्दराय कौ कुंवर लाड़लो दधि के दाम कौं झगरी।
'परमानन्द स्वामी' सो मिलि कै सरबसु दे डिगरी ॥

[१८६] राग बिलावल

भोर ही कान्ह करत मोसौं झगरो।
सबन छांड़ि करत मोसों नित उठि रोकि रहत है डगरो ॥
गोरसदान सुन्यौ नहिं देख्यौ किन लिखि दियौ दिखाओ कगरो।
विना बौहनी छुअन नहिं देहौं यह सब छीन खाउ किन सगरो ॥
चुम्बत मुख उर लावत पकरत टेव न गई छुवत ही अगरो।
'परमानंद' सयानी ग्वालिन छाड़ौं नहीं जौ धरत नहीं पगरो ॥

[१८७] राग मालकोस

मेरी भरी मटुकिया ले गयौ री।
आपुन खात ग्वालहि खवावत रीती कर मोहि दे गयौ री।
वृन्दावन की सघन कुंज मे ऊँची नीचौ मोसो कहि गयो री।
'परमानन्द' व्रज साँवरो अँगुस्ट दिखाय रस ले गयौ री ॥

---

१ मोल को

[१८८] राग सारंग

ग्वालिनि मीठी तेरी छाछि ।
कहा दूध मे मेलि जमायौं सांची कहौ किन बाछ ॥
औरै भाँति चितैवो तेरो भौंह चलत हैं आछि ।
ऐसो टकझक कहूँ न देख्यौं तू जौ रही कछि काछि ॥
रहसि कान्ह कर कुच गहि परसत तू जो परति है पाछि ।
'परमानन्द' गोपाल आलिगी गोप बधू हरिनाछि ॥

[१८९] राग सारंग

मानो याके[१] बबा की चेरी ।
गारी देत संक नहिं मानत आवत मारग घेरी ॥
कब लगि लाज पास की कीजै कौन गुसाँइन तेरी ।
'परमानन्द प्रभु' प्रेम अन्तरगत पररुन के मिस हेरी ॥

[१९०] राग सारंग

लालन ऐसी बातें छाड़ौं ।
मदन गुपाल छबीली ढोटा नित उठि मारग खाँड़ौ ॥
अनौख दानी अबही भये हौ मारग रोकत आन ।
प्रातही ते इहाँई होत ठाड़े उगन न पावै भान ॥
चंद्रावलि[२] कहे सुनो मन मोहन यहजु समै है और ।
'परमानन्द प्रभु' जानि देहु तुम नन्द सुअन सिरमौर ॥

[१९१] राग सारंग

मोहन तुम जो वड़े के ढोटा ।
कौन बूझियो रसिक सिरोमनि वन में जु करत झंझोटा ॥
आवत जानि बहू बेटिन कौं औघट जमुना घाट ।
मटुकी फोरत बाँह मरोरत चलन न पावै बाट ॥

---
१ याकी ।
२ चन्दवदनि ।

जौ यह बात जसोदा सुनि है बड़े गोप उपनंद ।
एक पूत सो निपट लड़ैतो करत अटपटे फंद ।।
सुनत बात मन में सुख उपज्यौ भावै हरि की केलि ।
'परमानन्ददास' की जीवनि बाढ़ौ नन्द की बेलि ।।

[१९२] राग सारंग

नेक मटुकिया धरी जो उतारि ।
बैठि प्रेम की बातें कीजै सुन चन्द्रावलि नारि ।।
फेरि यहाँ यह संग बनैगो ऐसे कानन मांझ ।
संग लरिकाई कौ यह रस चलिहै दिवस अथाहे साँझ ।।
यह जोवन धन संग कौन के लाड़ दिवस द्वै चार ।
'परमानन्ददास' यह नागर खेल करै मनुहार ।।

[१९३] राग सारंग

न जेहों माई बेचन ही जो दह्यौ ।
नंद गोप कौ कुंवर लाड़िलो बन में डाटि रह्यौ ।
यह सब भेद सखि अपनी सौं चन्द्रावलि कह्यौ ।
माँगत दान अटपटी बातें अञ्चल रबकि गह्यौ ।।
रावरे जोई उराहनो देहौं अब लगि बहुतै सह्यौ ।
'परमानन्ददास' कहे सुनि भामिनि बहुतहि पुन्य लह्यौ ।।

[१९४] राग सारंग

लाल हो किन ऐसे ढंग लायो ।
डगर छांड़ि उठि चतुर गुसांई चाहत गारि दिवायौ ।।
को तुम्हरे गृह भयो अचगरो गोरस दान निवेर्यो ।
तौ किन चले नन्द भलौ माने इक ब्रज बास बसेरो ।।
दारुन कस वसत है मथुरा ताहू की संक न मानै ।
नंद गोप कौ कुंवर लड़ैतो आप वहुत करि जानै ।।
वातें करत प्रेम रस वाढ्यौ नयन रहे अरुझाई ।
'परमानन्ददास' यह ग्वालिनि गही कौन विधि जाई ।।

[१९५] राग सारंग

न गहो कान्ह कोमल मेरी बहियां ।
सुन्दर स्याम छबीले ढोटा हौ नहीं आऊँ या बन महीयां ॥
हौं बलि जाऊँ चरन कमल की जात हुती अपने घर महीयां[1] ।
होत अबार बार मोहि लागै छाड़हुँ कौन टेव तुम महीयां ॥
ये बृजबास बड़े के ढोटा कहि न सकत तुम सों कछु यहींयां ।
'परमानंद' प्रभु काल्हि निबेरो बैठिहु नेकु कदम की छैयां ॥

[१९६] राग सारंग

दान मांगत कुंवर कन्हाई ।
बहुत बेर चोरी दधि बेच्यो अब कैसेहु जान न पाई ॥
जासौं राति लरी मृगनैनी नहीं सयानी बात दिखाई ।
लेहुं निबेरि आज सब दिन कौ जान न देहुँ बृजराज दुहाई ॥
मोहन लाल गोवरधन धारी हरि नागर बातन अरुझाई ।
'परमानंद प्रभु' बतरस अटकी दान लियो अरु डगर बताई ॥

[१९७] राग सारंग

दधि लै आऊँगी उठि भोर ।
तुम तो दुहि बन बछरा चरावत नागर नंद किसोर ॥
जानि देहु बड़ी बार भई है घन मिलि दामिनी घोर ।
जौ न पत्याउँ तो गहनों राखो उरि मनि कंचन मोर ॥
तुम गोविंद सब गुनन कहावत मानो इतनो निहोर ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन अटके नैन की कोर ॥

[१९८] राग सारंग

देख्यो री कहुँ नंद किसोर ।
स्याम बरन अरु पीत पिछौरा अंचल ढरकत गौर ॥
बरबस दान दही कौ मांगत बृन्दावन की ठौर ।
कहीयो जाय रायजू के आगे करिहैं औरसों और ॥
बरजि जसोदा अपुने ढोटा कों अंचरा के किये कोर ।
'परमानंद' प्रीति को गाहक ए त्रिभुवन सिरमौर ॥

---

१ कहियाँ

कटि पट छुद्र घंटिका मनिमय सोहत जोहत मन मोहत ।
'परमानन्द' निरख नंदरानी लेत बलैया दोऊ हथ ॥

[२०६] राग सारंग

सुदिन सुमंगल जानि जसोदालाल को पहिरावत बागे ।
अंग अंग भूखन ललित मनोहर लटकनि बारे पागे ॥
व्रज सुन्दरि निरखि मन हरखत मगन होत मन फूलत ।
रूप रासि रस रसिक लाडिलौ देखे तन मन लूलत ॥
मैया देखत लेत बलैया मुख चुबत सचुपावत ।
'परमानन्ददास' मन हरखत सुमिरि सुमिरि गुन गावत ॥

[२०७] राग सारंग

दशहरे के पद

सरद ऋतु सुभ जानि अनूपम दसमी को दिन आयोरी ।
परम मंगल दिन आज ब्रज में सब मन हरखत आयोरी ॥
केसर सौंधी घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायोरी ।
नाना विधि के भूखन अभरन अंग सिंगार बनायोरी ॥
पाघ पिछौरा और उबटना बागो बिचित्र धरायोरी ।
'परमानन्द प्रभु' विजयादसमी ब्रज जन मंगल गायोरी ॥

[२०८] राग सारंग

धरत जवारा स्री गोविंद ।
आस्विन मास सुभग दसमी सुकल पच्छ घरो सुभ कन्द ॥
केसर सौंधी घोरि जसोदा प्रथम न्हवाये कान्ह गोबिन्द ।
नाना विधि सिंगार पाग वनी जरकसी वागो पहरत छंद ॥
कहत जसोदा सुनो मेरे लाला जोई जोई भावै तिहारे मन ।
सोई सोई भोजन करो दोऊ भैया गावत गुन तहँ 'परमानन्द' ॥

[२०९]

राग सारंग

जवारे पहिरे श्री गिरिवर धारी ।
जुवती जन मन ताप निवारत ग्रानन्द मंगलकारी ॥
सुंदर लाल भाल ललित तन देखि जननी कर वारी ।
मन मोहन के रसिक रूप पर 'परमानन्द' बलिहारी ॥

मुरली के पद

[२१०]

राग हमीर

याँ ते माई भवन छांड़ि बन जैये ।
ग्रँखि-रस कन-रस बत-रस सब रस नंद नंदपै पैये ॥
कर पल्लव कर कंध बाँहु धरि संग मिलि गुन गैये ।
रास बिलास बिनोद ग्रनूपम माधौ के मन भैये ॥
यह सुख सखीरी कहत नहिं ग्रावे देखे ही दुख बिसरैये ।
'परमानन्द स्वामी' को संगम भाग बड़े ते पैये ॥

[२११]

राग सारंग

मेरो मन गह्यौ माई मुरली कौ नाद ।
ग्रासन पौन ध्यान नहिं जानौ कौन करै ग्रब बाद बिबाद ॥
मुकति देहु संन्यासिन कौं हरि कामिनि देहु कामकी रास ।
धरमिन देहु धरम कौ मारग मो मन रहै पद-ग्रंबुज पास ॥
जो कोऊ कहै जोति सब यामें सपनेहु छियौ न तिहारो जोग ।
'परमानन्द' स्याम रंग राती सबै सहौं मिलि इक ग्रंग लोग ॥

[२१२]

राग गूजरी

वो मुख देख्यौ हो [मोहि] भावै ।
मदन गोपाल जगत कौ ठाकुर बन तें जब घर ग्रावै ॥
लोचन लोल नासिका सुंदर कुँडल ललित कपोल ।
दसन कुन्द विम्बाधर राते मधु ते मीठे बोल ॥
कुंचित केस पोत रज मण्डित जनु मोरन की पांत ।
कमल कोस ते कढि ढिग बैठे पांडुर बरन सुजात ॥

चंदक चारु मुकट सिर सोहत बिच बिच मनु गुंजा।
गोपी मोहन अभिनव मूरत प्रगट प्रेम के पुंजा॥
कंठ कंठमनि स्याम मनोहर पीतांबर बनमाल।
'परमानन्द' स्रवन मनि कुंडल कूजत बेनु रसाल॥

[२१३] राग टोड़ी

मोहि मिलनि भावै जदुबीर की।
सरद निसा पूरन ससि उदै करि खेलनि जमुना तीर की॥
हरि हम कों, हम हरि कों छिरकत पैसि[1] दोलनि नीर की।
हँसि हरि खेंचि लेत ऊँडे[2] जल अंकमाल भुज भीर[3] की॥
जबै निकसि होत जल ते ठाड़े निरखि अँगोछनि चीर की।
'परमानन्द' स्वामी रति नागर बलि बलि स्याम सरीर की॥

[२१४] राग परज तिताला

जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजौ दृष्टि ना परेरी।
चित्त सुहावनी छवि अति सुन्दर रोम रोम रस ही भरेरी॥
सिव विरंचि जेहिं ढूंढत फिरै सो मन मेरे अरेरी[4]।
'परमानंद' लह्यौ सुख दरसन चित कारज सब ही सरेरी॥

रास समय के पद ❀

[२१५] राग सारंग

कर गहि अधर धरी मुरली।
देखहु परमेस्वर की लीला ब्रज वनितानु की मन चुरली॥
जाकों नाद सुनत गृह छांड्यो प्रचुर भयो तन मदन वली।
जिहि सनेह सुत पति विसराये हा हरि हा हरि करत चली॥
विहँसत वदन प्रफुलित लोचन रवि उद्योत जनु कमल कली।
'परमानन्द' प्रीति पद अंबुज कृष्ण समागम वात भली॥

❀उपर्युक्त पद रास-क्रीडा सम्बन्धी हैं।

१ प्रवेश [पर्य—प्रवधी प्रयोग]
२ गहरे [ग्रयं]
३ डरी हुई [प्रय]
४ खरेरी—पाठान्तर।

[२१६] राग टोड़ी

रास मंडल में बन्यौ माधौ गति मैं गति उपजावै हो।
स्याम सुभग तन पर दच्छिन कर पूजत चरन सरोजै हो॥
अबला बृन्द बिलोकत हरि मुख नैन विकार मनोजै हो।
नील पीत पट चलत चारु नट रसना नूपर कूजैहो॥
कनक कुंभ कुच बीच पसीना मानों हर मोतिन पूजै हो।
हेमलता तमाल अवलंबित सीस मल्लिका फूली हो॥
कुंचित केस बीच अरुझाने जनु अलि माला भूली हो।
सरद विमल निस चंद विराजित क्रीडत जमुना कूलै हो॥
'परमानन्द स्वामी' कौतूहल देखत सुरनर भूलै हो॥

[२१७] राग गौरी

मुरली को बजावन हारो कहिधौं माई कहाँ गयौ।
नैक बदन दिखाय मो कहे बिरह न जात सह्यौ॥
सबही गोपिन के प्रीति एक रस हृदय सनेह गह्यौ।
ऐसो भगति नंद नंदन की पुन्यन पुंज लह्यौ॥
आजु गहरु लाग्यो गो चारन बासर तौ निबह्यौ।
रजनी अधिक गई 'परमानन्द' लोचन नीर बह्यौ॥

[२१८] राग गौरी

मोहन मोहनो पढ़ि मेली।
देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली॥
काके मात तात अरु भ्राता को पति नेह नवेली।
काकी लोक लाज डर कुल व्रत को बन भ्रमति अकेली॥
तातै कहति मूल मति तोसौं एक संग मिलि खेली।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन स्रुति मरजादा पेली।

[२१९] राग सारंग

जकि रही सुनि मुरली की टेर।
इततैं हौं निकसी पानी मिस तबहि भइ गाइन की बेर॥
मोर चंद्रिका धरे स्याम घन चपल नयन की हेर।
'परमानन्द प्रभु' मिलेरी खरिक मँह यातें[1] भई अबेर॥

---

१ आवत

[२२०] राग सारग

मैं मन मोल गोपालहिं दीनौं ।
अम्बुज बदन लाल गिरिधर कौ रूप नैन निरखन कौं लीनों ॥
इन रखिलियौ अपनी रुचि सौं उनहिं तुला धरि कर दीनो[1] ।
वे लै चले दुराइ जतन करि इनहिं चुवै पलकनि मग छीनौं ॥
अब वे पलटि न देत आपते इनहि कहे यातै कछु हीनौ ।
'परमानन्द प्रभु' नन्द नन्दन सों नौतन नेह बिधाता कीनौं ॥

[२२१] राग सारंग

हों तो या बेनऊ की चेरी ।
नंद नंदन के अधरनि लागति स्त्रवन सुनत सुखकेरी ॥
राति दिवस मन उहाँही रहत है बाढ़ी प्रीति घनेरी ।
'परमानंद' गुपालहिं भावै लाख बार हित मेरी ॥

[२२२] राग सारंग

मैं हरि की मुरली बन पाई ।
सुन जसुमति संग छाँड़ि आपनों कुंवर जगाय देन हौं आई ॥
सुनि तिय बचन बिहँसि उठि बैठे अन्तरजामी कुंवर कन्हाई ।
मुरली के संग हती मेरी पहुँची दै राधे बृषभान दुहाई ॥
मैं तिहार पोची नहीं देखी चलो संग देऊँ ठौर बताई ।
बाढ़ी प्रीति मदन मोहन सो घर वैठे जसुमति बोहौराई ॥
पायो परम भावतो जीको दोउ पढ़े एक चतुराई ।
'परमानन्ददास' जाहि बूझो जिन यह केलि जनमभर गाई ॥

[२२३] राग टोडी

निरतत मंडल मध्य नन्दलाल ।
मोर मुकट मुरली पीताम्वर अरु गुंजा बनमाल ॥
ताल मृदग संगीत वजत हैं तत थेई बोलत बाल ।
उरप तिरप तान लेत नट नागर गंधर्व गुनी रसाल ॥
वाम भाग वृषभान नन्दिनी गजगति[2] मंद मराल ।
'परमानन्द' प्रभु की छवि निरखत मेटत उर के साल ॥

---

१ कीनों
२ मग सखी लिये ग्वाल

[२२४] राग असावरी

भलो है स्याम की मुसुकावनि ।
कर पल्लव गहि त्रिभंग बेनु धरि मीठी है गावनि ।।
कुण्डल चलित कपोल ललित मनि मण्डल सोहै ।
कुंचित केस सुदेस गुंजा मनि मोरपंख मन मोहै
उर बन माल बिचित्र बिराजति जनु घन बीच इन्द्र धनु भासै[1] ।।
गिर गम्भीर सुनत सखी व्याकुल देखत रूप मदन जनु त्रासै ।
बालक वृन्द नच्छत्र माल मँह मानहुँ पूरन चन्द ।।
रजनी मुख हरि न मिल्यौ सखि बलि बलि परमानन्द ।

[२२५] राग जंगला

मंडल जोर सबै एकत्र भये निरतत रसिक सिरोमनी ।
मुकुट धरे सिर पीत पट कटि तट बाँधे तान लेत बनी ठनी ।।
इक इक हरि कीनी ब्रज बनिता अरु सोहै मनी गनी ।
चढ़ि विमान सुर जुवति कहें परस्पर गिरवरधर पियूष धनी ।।
गोप वधू बालक मिलि गावत मध्य निरत करत बलि मोहन ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर सब मिल गावत धन धन ।।

[२२६] राग मालव

जाऊँगो वृन्दावन भैटोंगी गोपालै ।
देखौगी नैन भरि स्याम तमालै ।।
कालिंदी तट चारत धेनु ।
संग सखा बजावत मट्ठु बेनु ।।
मोर मुकट गुंजा अवतंस ।
दसन बसन कूजत कल हंस ।।
'परमानन्द' प्रभु त्रिभुवन पाल ।
लीला सागर गिरधर लाल ।।

---

[1] सोहै ।

[२२७] राग मालव

आई गोपी पाँयन परन ।
सोई करो जैसे संग न छूटै राखौ स्याम सरन ।।
जब तुम बेनु बजाय बुलाई अब जिय कत करत निठुराई ।
तुम्हारे भजत पाँय किहि लागे किन यह बुद्धि उपाई ।।
चित नहि चलत चरन गति थाकी मन न जात गृह पास ।
'परमानन्द स्वामी' उदार तुम छोड़ो बचन उदास ।।

[२२८] राग मालव

रास बिलास गहे कर पल्लव इक इक भुजा ग्रीवा मेली ।
द्वै द्वै गोपी बिच बिच माधौ निरतत संग सहेली ।।
टूट परी मोतिन की माला ढूंढ़त फिरत सकल गुवाली ।
सरद विमल नभ चन्द विराजत निरतत नन्द किसोरा ।
'परमानन्द प्रभु' बदन सुधानिधि गोपी नैन चकोरा ।।

[२२९] राग सारंग

ब्रज बनिता मधि रसिक राधिका[1] बनी सरद की राति हो ।
निरतत ततथेई गिरधर नागर गौर स्याम अंग कांति हो ।।
इक इक गोपी बिच बिच माधो बनी अनूपम भांति हो ।
जै जै सबद उचारत सुर मुनि बरसत कुसुम न अघाति हो ।।
निरखत क्यो ससि आय सीस पर क्यो हू न होत प्रभात हो ।
'परमानन्द' मिलै यहि औसर बनी है आज की बात हो ।।

[२३०] राग केदारा

रास रच्यौ वन कुंवर किसोरी ।
मंडल विमल सुभग वृन्दावन पुलिन स्यामघन घोरी ।
वाजत वेनु रवाव किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी ।।
ततयेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले विहारी विहरत जोरी ।
वरहा मुकुट चरन तट आवत धरे भुजन मे भामिनि भोरी ।।
आलिगन चुवंन परिरंभन 'परमानन्द' डारत तृन तोरी ।।

---

१ साधिका ।

[२३१] राग केदारा

रास मंडल मध्य मंडित मदन मोहन अधिक सोहत,
लाड़िली रूपनिधान।
हस्त कमल चरन चारु नृत्यत भाँती भाँति मुख हास भ्रू विलास,
लेत नैननि ही में मान ॥
गावत बजावत दोऊ रीझि परस्पर सचुपावत उरप तिरप होड़न
बिकट तान।
'परमानन्द' प्रभु किसोर और निरखत ललितादिक वारति
निज तन मन प्रान ॥

[२३२] राग बिलावल

आली री रास मण्डल मध्य निरखत
मदन मोहन अधिक प्यार लाड़िली रूप निधान।
चरन चारु हँसत मंद, मिलवत गति,
भाँति भाँति भ्रुव विलास मंद हास लेत नैन ही मे मान ॥
दोऊ मिलि राग अलापत गावत,
होड़ा होड़ी उघटत दे करतारी तान ॥
'परमानन्द' निरखत गोपी जन,
बारत हैं निज तन मन प्रान ॥

[२३३] राग सारंग

गोपाल लाल सों नीके खेलि।
बिकल भई संभार न तनकी सुन्दरि छूटे बार सकेलि ॥
टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत चुरी खिसत सिर फूल।
चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल ॥
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोच्छव रास विलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्न केलि 'परमानन्ददास' ॥

[२३४] राग सारंग

अबकै जो लाल मिले अचरा गहि झक झोरौं री।
काहे तुम संग छाड़ि गए संग लागि डिगरों री॥
जुवतिन को यह सुभाव मान करतहि सोभा।
नागर नन्दलाल कुंवर काहे चित ओभा॥
बांधौं कुच भुजन बिच नैन बान मारौं।
'परमानंद' प्रेम लराई जीतौं कै हारौं॥

[२३५] राग सारंग

माई री डार डार पात पात बूझत बनराजी।
हरि को पथ कोउ न कहै सबनि मौन साजी॥
वसुधा जड़ रूप धर्‌यो मुखहू नहीं बोलै।
हरि को पद परस भयो संग लागि डोलै॥
'परमानंद स्वामी' गोपाल निरभै भये माई।
हमरो गुन दोस जानि कीनी चतुराई॥*

[२३६] राग सारंग

पूछत है खग मृग द्रुम बेली।
हमे तजि गये री गोपाल अकेली॥
अहो चंपक मालती तमाला।
तुम्है परसि गये नंद लाला॥
ज्यो गजराज बिना गजकरनी।
कृष्ण सार विनु व्याकुल हरिनी॥
'परमानंद' प्रभु मिलहु न आई।
तुम दरसन विन हंस उड़ाई॥

* प्रस्तुत पद रास क्रीडा मे भगवान के अन्तर्धान होने के समय का है।

[२३७] राग सारंग

सांवरे मन हर्‌यौ हमारो कमल नयन ब्रज राई हो।
चित्त चुरायौ माखन चोरा।
ना जानों कहाँ नंद किसोरा॥
बाल बिनोद कुमार कन्हाई।
'परमानंद' स्वामी सुखदाई॥

[२३८] राग सारंग

ग्वालिनि अनमनी सी ठाड़ी।
दारून पीर बिरह की बाढ़ी मदन गोपाल अकेली छांड़ी॥
तैंही रसिकिनि रही सयानी जिहि सनेह प्रभु बन लै आयो।
नेक छुड़ाइ कछु कियो माधौं सौं तुरतहि कियो आपुनो पायो॥
चलि सखि जाइ ढूंढहि बन बन चरन कमल के अंक निन्यारे।
धुजा बज्र अंकुस जब रेखा कहां दुरहिंगे कान्हर प्यारे॥
लोचन सजल प्रेम अति आतुर सूखे अधर चंद मुख गो घटि।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की, पिउ पिउ करत अनाथ रही लटि॥

[२३९] राग सारंग

अब क्यों बन बन फिरत बही।
तब काहे न गोपाल लाल रस छिनु इक संग रही॥
पूरब संचित सुकृत रासि फल स्रीपति बाँह गही।
तू ग्वालिनि जोवन मदमाती गरब की बात कही॥
कहा पछिताइ होई सवहि के बिरहा अनल दही।
'परमानंद' अब कासौं खेलौं हरि बिन सोच सही॥

[२४०] राग सारंग

मदन मार मारि गये मोहन मूरति कोऊ।
कमल नैन स्याम सुन्दर भावत है सोऊ॥
सपने मे डहकि गये दै आलिंगन गाढे।
जागौ तौ दुखित नयन जल प्रवाह बाढ़े॥
गति विलास मधुर हास ताकी हौं चेरी।
सरबसु ले अनत गये ऐसी भई गति मेरी॥
कैसे करि प्रगट मिलो कैसे कै देखों।
'परमानन्द' भाग दसा इतनो फल लेखों॥

[२४१] राग विलावल

सरद राति गोपाल लीला रही हैं नैननि लागि।
अबही जो ब्रजनाथ मिलवहिं हरहिं मनसिज आगि॥
भोगी भवन भुजंग सीतल बाहु दंड बिसाल।
हरखि त्रै तन ताप मोचत कामिनी प्रतिपाल॥
कर कमल सीतल धरत उर पर हरत मन की पीर।
'दास परमानंद' प्रभु हरित तरनि तनया तीर॥

[२४२] राग कान्हरो

जिहि ते रस रहै रसिक कुँवर सौं सोई सयानी करहु बसीठी।
यह अपराध पर्यो अनजानत लाडकली कछु बात बिऊठी॥
काधारोहन माँगि सखीरी नंद नदन सौं मै कीनी ढीठी।
जुवती जाति दोस को भाजन समुझत नहि कछु करई मीठी॥
अब अभिमान करौं नहि कबहूँ तेरे हाथ देउँ लिखि चीठी।
'परमानंद' प्रभु आनि मिलावहु कमल नयन की महिमा वीठी॥

[२४३] राग सारंग

राधा भाग सों रस रीति बढी।*
सादर करि भेटी नंद-नंदन दूने चाउ चढ़ी॥
वृंदावन मे क्रीडत दोऊ जैसे कुंजर क्रीडत करिनी।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन ताहू को मनहरिनी॥

---

* युगल रस वर्णन।

[२४४] राग सारंग

सांची प्रीति भई इक ठौर ।
मृग नैंनी कमल दल लोचन लाल स्याम राधा तन गौर ॥
तुम सिर सोहत पाट की डोरी हरि सिर रुचिर चन्द्रिका मोर ।
तुम रसिकिनि वे रसिक सिरोमनि तुम ग्वालिन वे माखन चोर ॥
तुम करिनी वे गज बल नायक तुम मालति वे भोगी भौंर ।
'परमानंद' नंद नंदन कौं राधा सी गोरी नहिं ग्रौर ॥

[२४५] राग सारंग

ग्रलकलड़ी मोहन की जोरी ।
वे रस पुंज नंद जू की जीवनि यह दुलहिन ब्रखभान किसोरी ॥
वे कुंचित कच मधुप बिसेखित यह सुवेस ग्रथित सिर डोरी ।
वे ग्रंबुज मुख यह बिधु बदनी वे कोमल कर उरज कठोरी ॥
वे गज मत्त प्रबल ब्रज नायक यह सारंग रिपु कृस कटि थोरी ।
वे ब्रन्दाबन ससि 'परमानंद' ग्रहनिसि नागरि नैन चकोरी ॥

[२४६] राग सारंग

ग्राजु बनी दंपति वर जोरी ।
सांवल गौर बरन रूप निधि नंद किसोर ब्रजभान किसोरी ॥
एक सीस पचरंग चूनरी एक सीस ग्रदभुत पट षोरी ।
मृगमद तिलक एक के मांथे एक मांथे सोहैं मृदु रोरी ॥
नख सिख उभय भांति भूषन छवि रितु वसंत खेलत मिलि होरी ।
ग्रतिसै रंग बढ्यो 'परमानंद' प्रीति परस्पर नाहिन थोरी ॥

[२४७] राग केदार

पौढ़े रंग महल गोविन्द ।
राधिका संग सरद[१] रजनी उदित पून्यौ चंद ॥
विविध चित्र विचित्र[२] चित्रित कोटि कोटिक बंद ।
निरखि निरखि विलास विलसत दंपती सुख[३] कंद ॥
मलय चंदन अंग लेपन परस्पर[४] आनंद ।
कुसुम वीजना व्यार ढोरै सजनी 'परमानंद' ॥

[२४८] गोरी तिताला

वने वन आवत मदन गोपाल ।
निरतत हँसत हँसावत किलकत संग मुदित ब्रजवाल ॥
बेनु मुरभ्क उपचंग चंग मुख चलत विविध सुर ताल ।
वाजे अनेक वेनु रव सो मिलि रनित किंकिनी-जाल ॥
यमुना तट के निकट वंसीवट मन्द समीर सुढाल ।
राका रजनी विमल सरद ससि क्रीडत नंद को लाल ॥
स्याम सघन तन कनक पीत पट उर लम्बित वन माल ।
'परमानंद' प्रभु रसिक सिरोमनि चंचल नैन बिसाल ॥

[२४६] राग कल्याण

आवत मदन गोपाल त्रिभंगी ।
निरतत गावत वेनु वजावत करत कुलाहल वालक संगी ॥
कटि पीताम्वर उर वनमाला वन्यौ टिपारो लाल सुरंगी ।
वचन रसाल सुरतिओ भूली सुनि वन मुरली नाद कुरंगी ॥
वरषत कुसुम देव मुनि हरषत वाजत ढोल दमामा जंगी ।
'परमानंद' स्वामी नट नागर विनोद सुरत रस रंगी ॥

१—पुनिन स्याम घनघोर ।
२—अनेक ।
३—रस ।
४—परम प्रति ।

[२५०] आसावरी

आजु नीकौ बन्यौ राग आसावरी ।
मदन गोपाल वेनु बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी ।।
बछरा खीर पिवत थन छांड्यौ दंतन तृन खंडित नहि गावरी ।
अचल भए सरिता मृग पंछी खेवट चकित चलत नहि नावरी ।।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब बिधि अकथ कथा है रावरी ।
'परमानंद स्वामी' रति नाइक यह मुरली रस-रूप सुभावरी ।।

धनतेरस के पद—

[२५१] राग बिलावल

धन तेरस रानी धन धोवति ।[१]
गर्ग बुलाइ वेद विधि पूजत ठौर ठौर घृत दीप संजोवति ।।
धूप दीप नैवेद भोग धरि स्याम सुन्दर एक टक मुख जोवति ।
'परमानंद' त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि मारग धन बोवति ।।※

रूप चतुर्दशी के पद—

[२५२] राग देव गांधार

दूध सौ सनान करो मन मोहन छोटी दिवारी काल मनाये ।
करो सिंगार लाल तन बागो कुल्हे जरकसी सीस धराये ।।
जैसी स्याम प्रति रंग प्यारी मिलि तैसेही दम्पति परम सुख पाये ।
भाव समागम है प्यारी कौ ज्यों निरधन के धन पाये ।।
वह छबि देखि देखि ब्रज जनही देत असीस आपनी मन भाये ।
चिरजीवौ दुलहिनी लाल दोउ 'परमानन्द दास' वलि जाये ।।

---

१ ढोवति

※ प्रस्तुत पद मे परमानन्द दास जी के पुष्टिमार्गीय होने का प्रमाण मिलता है ।

[२५३] राग देव गांधार

आज दिवारी मंगल चार।
ब्रज जुवति जन मंगल गावत चौक पुरावत नंद कुमार।
मधु मेवा पकवान मिठाई भरि भरि लीने कंचन थार।
'परमानन्द दास' को ठाकुर पहिरे आभूखन सिंगार॥

गाय खिलायबे के पद

[२५४] राग देव गांधार

किलक हँसे गिरधर ब्रज राई।
भाज्यौ सुबल लिये गोद बछरुवा पाछे धौरी धाई॥
मधु मंगल लै मोर पखौवा दौरे आय अहेराई।
तोक ताक तकि मोहन के ढिग भली विधि धेनु खिलाई॥
खोल भवन भूषन पहरे सब पंखा भली भलाई[1]।
लिये लपेट लाल गहने मे सब ब्रज देखन आई॥
स्याम जलद गम्भीर गरब सों मोहन टेर सुनाई।
वो वापर वो वापर गैया सोभा कही न जाई॥
सोने सींग घंटा अरु कठुला पीठ पत्र समुदाई।
'परमानंद' आनंद भरि खेलत मुरली तबहिं बजाई॥

[२५५] राग देव गांधार

ब्रजपुर बाजत सबही के घर ढोल दमामा भेरी।
स्री गोवर्धन की पूजा को कहत सबन सो टेरी॥
अन्नकूट बहु भांति बनावत रचि पकवानन की ढेरी।
नन्दराय पूजत पर्वत को लाओ गायन घेरी॥
धूमरि गाय बुलाय ऊपर कौं लाल उपरना फेरी।
सुवल सुवाहु कूक दै दौरो नांहि लगाओ वेरी॥
डाढमेली धूमर की वछियां लावो[2] पूंछ छछेरी।
देखत 'परमानन्द' सबन कौ गांयन लीयो है झकझोरी॥

---

१ मनाई
२ नांधी

[२५६] राग देव गंधार

तुम्हरे खरिक बताई हो बृषभान हमारी गैयाँ।
चकृत नयन चहुँधा चितवत सकर्षन को भैया॥
संध्या समय बाग ते बिछुरी अर्द्धराति सुधि पैया।
या बिन मोपै रह्यौ न परत है यों कहे कुंवर कन्हैया॥
सुन प्रिय बचन किसोरी अटा चढ़ि जालरंध्र ह्वै झाँकी।
'परमानन्द' प्रभु करषि लियो चित चंद्रबदनि भ्रुव बाँकी॥

[२५७] राग देवगंधार

नीकी खेली गोपाल की गैया।
कूकें देत ग्वाल सब ठाड़े यह जु दिवारी[1] नीकी मैया।
नन्दादिक देखत हैं ठाड़े यह जु पाहुनो[2] को पैया॥
बरस द्यौसलौं कुसल कुलाहल नाचौ गावौ करौ बधैया॥
धौरी धेनु सिगारी मोहन बडरे वृषभ सिगारे।
'परमानन्द' प्रभु राई दामोदर गोधन के रखवारे॥

[२५८] राग श्याम

स्याम खरिक के द्वार करावत गायन को सिंगार।
नाना भाँति[3] सींग मंडित किये ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कंठ मोतिन की[4] पटियाँ पीठिन की[5] आधै औधार।
किंकिन नूपुर चरन बिराजत बाजत चलत सुढार॥
यह विधि सब गाय सिंगारी[6] सोभा बड़ी अपार।
'परमानन्द' धेनु[7] खिलावत पहिरावत सबै गुवार॥

---

१ ह हा जु दिवारी
२ परवनी की पैया
३ रग
४ मुरज के कडुला
५ पीवित को अव छार
६ व्रज धेनु सवारी
७ नद

[२५९] राग देवगांधार

सब गायन में धूमर खेली ।
स्त्रवन पूँछ उचकाई सूधि ह्वै ग्वाल भजावत फिरत अकेली ।।
पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली ।
चुम्बत मुख आटो भरि भेटी टेर कहत लाओ गुर भेली ।।
आप गोपाल खवाय खिलावत सब गायन को हेली ।
'परमानन्द' देखे बनि आवै जब धौरी की बछिया झेली ।।

[२६०] राग देवगांधार

विफर गई धूमर अरु कारी ।
कूकत ग्वाल बछरा ग्वालिन बदन पिछोरी डारी ।।
तब तो हूंक हूँक सन्मुख ह्वै भली भाँति सँभारी ।
पूँछ उठाय कर दौरी दोऊ कुँवर भरे अंकवारी ।।
भीर खिरक के अटा अटारी ठाड़ी हैं ब्रज नारी ।
'परमानन्द' देखे ही बनि आवें नवल लाल गिरधारी ।।

[२६१] राग देवगांधार

आज कुहूकी रात माधौ दीप मालिका मंगलचार ।
खेलो द्यूत सहित संकर्षन मोहन मूरति नंदकुमार ।।
कहत जसोदा सुनो मन मोहन चन्दन लेप सरीर करो ।
पान फूल चोवा दिव्य अम्बर मारमिला[1] लै कंठ धरो ।।
गो क्रीड़न पुनि काल्ह होयगी नंदादिक देखेंगे आय ।
'परमानन्ददास' संग लीने खिरक खिलावत धौरी गाय ।।

[२६२] राग देवगांधार

आज अमावस दीप मालिका बड़ी परबिनी है गोपाल ।
घर घर गोपी मंगल गावैं सुरभी वृषभ सिंगारो लाल ।।
कहत जसोदा सुनो मन मोहन अपने तात की आग्या लेहु ।
वारौं दीपक बहुत लाडिले करौ उजियारो आपुन गेह ।।
हँसि ब्रजनाथ कहत माता सो धौरी धेनु सिंगारो जाय ।
'परमानंददास' को ठाकुर जाहि भावत है निसदिन गाय ।।

---
१ आभूषण विशेष

हटरी के पद

[२६३] राग कान्हरो

गिरधर हटरी भली बनाई।
दीपावलि हीरा मनि राजत देखि हरख होत अति माई ॥
भांति अनेक पकवान बनाये अति नौतन व्यंजन सुखदाई।
सुन्दर भूखन पहरे सुन्दरि सौदा करन लाल सों आई ॥
सावधान ह्वै सौदा कीजे जो दीजै तो तौल पुराई।
राखो चित चंचल नहिं कीजे ग्वालिन हंसि मुसकाई ॥
कैसे बोली बोलति ग्वालिन कहत जसोदा माई।
'परमानन्द' हंसी नन्द घरनी सबै बात मैं पाई ॥

[२६४] राग सारंग

दीपदान दीपावलि देखौ हीरा दीप खंभ नग राजत।
जगमग जोति रही चहूँ दिसिते निविड तिमिर अतिभाजत ॥
बैठे लाल हटरिया वेचत मधु मेवा पकवान मिठाई।
देखि देखि सोभा व्रज सुन्दरि सौदा लेन लाल सों आई ॥
मृदु मुसकाय कहत मोहन सों घटि जिन तोलौ लाल।
'परमानन्द' प्रभु नंद नंदन विहँसे और सब व्रज की बाल ॥

गोवर्धन लीला के पद

[२६५] राग सारंग

आवहु रे आवहु रे ग्वालो या परवत की छहियाँ।
गावहु नाचहु करहु कुलाहल जिन डरपहु मन महियाँ ॥
जिनि तुम्हरी पकवान जो खायो अव[1] सोई रच्छा करि है।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर गोवर्धन कर धरि है ॥

---

१ अब

[२६६] राग सारंग

अद्भुत तेरी गति बारे कन्हैया ।
तुम जो तनिक गोवर्धन धार्यौ एक ही हाथ लियो कैसे भैया ।।
जमुना बैठि गह्यौ पुनि काली रहे सब लोक दिखैया ।
केसी तृनावर्त ते मारे और पूतना हती जदुरैया ।।
बच्छ बाल अघासुर लीला तुम ही भए ता ठौर नन्हैया ।
'परमानंद' प्रभु बहुतक ऐसो अपनो मरम कह्यौ नंद दुहैया ।।

[२६७] राग नट

सब मिल पूछें गोवर्धन क्यो धर्यौ ।*
कहो कृष्ण ऐसो डर काको[1] क्यो मधवा पायन पर्यो ।।
सोई मन्त्र हमहि सिखावो हम करें तुम्हारी सेवा ।
'परमानन्द' ऐसो ठाकुर तजि कित आराधत देवा[2] ।।

[२६८] राग नट

कैसो माई अचरज उपजै भारौ ।
पर्वत लियो उठाय अंक लै सात बरस को बारौ ।।
सात द्यौस निसि इकटक ही याने वाम पानि पर धार्यो ।
अति सुकुमार कुंवर नद कैसे बोझ सहार्यो ।।
बरखे मेघ महा प्रलय के तिनते घोष उबार्यो ।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुरपति गरब प्रहार्यो ।।
भगत हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होत जुग[3] चार्यो ।
'परमानन्द' प्रभु की बलि जैये जिन गोवर्धन धार्यो ।।

---

* बूझन लागे गोप गोवर्धन क्यों धार्यो ।

१ कान्ह काको कछु डर है ।

२ कौन उपासे देवा ।

३ प्रकट होनु जुग चारयो ।

[२६६] राग नट

महाकाय गोवर्धन पर्वत एक ही हाथ उठाय लियो ।
देवराज को गर्ब हर्यो हरि अभय दान ग्वालन[१] कों दीयो ॥
यह[२] बालक लीला अवतारी कही नन्द जू ग्वालिन आगे ।
सेवा[३] करी सनेह बिचारी कबहु बयार न ताती लागे ॥
तोर्यौ सकट पूतना मारी तृनावंत दानव संहार्यो ।
स्री जमुना[४] जल निरबिस कीनों काली नाग बाहर[५] निकार्यो ॥
अर्जुन बृच्छ छिनक में तोरे आपुन दाम ऊखल बंधाये ।
'परमानन्ददास'[६] को ठाकुर जाकों गरग मुनि गाये ॥

[२७०] राग अड़ानों

मति गिरि ! गिरै गोपाल के करते ।
अरे भैया ग्वाल लकुटिया टेकौ अपने अपने कर के बलते ॥
सात द्यौस मूसलधार बरख्यौ बूंद न परी एक जलधरतै ।
गोपी ग्वाल नंद सुराखे बरसि बरसि हार्यौ अम्बर तें ॥
अन्तरिच्छ जल जर्यो सिखर पर नन्द नंदनकी कोप अनलतें ।
'परमानन्द' प्रभु राखि लियो ब्रज अमरापति आयो पायनपरतें ॥

[२७१] राग नट

धन यह कूखि जनम जहँ लीनौ गिरि गोवर्धन धारी ।
लरिका कहा वहुत सोत जाये जौ न होय उपकारी ॥
एक सो लाख बराबर गिनिये करै जो कुल रखवारी ।
अति आनन्द कहत गोपीजन जन मन करम बचन बिचारी ॥
इन्द्र कोप कीनो ब्रज ऊपर मघवा गरब निवारी ।
'परमानन्द दास' कौ ठाकुर गो बृन्दावन चारी ॥

---

१ गोपालै दीनो ।
२ गर्ग वचन कहे सो साँचो यह वालक लीला अवतारी ।
३ कहे नन्द ग्वालन के आगे सेवा करहु सनेह विचारी ॥
४ कालिन्दी ।
५ विदेस
६ परमानन्द स्वामी मुसकाने किये भगत मन भाये ।

गोवर्धन लीला

[२७२] राग अड़ानो

छैल छबीले लाल कहत नंद रायसों ।
घर घर मंगल होत कहा है आजु तुम्हारे ॥
बहु बिधि करत रसोई मध हूं गयो सकारे ।
मोहि देखि सब कोई कह्यौ यहाँ जिन आवो लाल ॥
देव जग्य हम करत है करि पकवान रसाल ।
यह बिस्मय चित्त मोहि कौन की करत पुजाई ।
याको फल है कहा कहो तुम ब्रजपति राई ॥
नाम कहा या देब कौ कौन लोक को राज ।
इतनों बलि यह खात हमारो करत कहा है काज ॥
नंद हँसे मुसकाय कान्ह सो कहत सुनाई ।
इन्द्र पाक हम करत सदा तुमरी कुसलाई ।
ताल तलैया सब भरे बहुतृन उपजै भूमि ।
वृच्छ हरित सब होत हैं फूल लता रहे झूमि ॥
अमरावति को राज करत हैं निसिदिन कुसलाई ।
उरबसी को नृत्य होत है याते अधिकाई ॥
देव रिषि स्तुति करैं सब कोउ मानत आन ।
याते हम सब पूजहीं बरसो बरस निदान ॥
तब हरि कियो बिचार मतौ एक नयौ उपायौ ।
इनमे माया फेरि करौं आपनो मन भायौ ॥
सुनो तात एक बात हमारी मानौ जोई ।
गिरवर पूजा कोजिये इनते सब सुख होई ॥
वे प्रभु प्रत्यच्छ देव भूलि क्यो बुद्धि विचारो ।
वैकुण्ठ इनके माहि देव सब इनते न्यारो ॥
गाय गोप हम जात है इनको करत परनाम ।
गोवर्धन यह नाम है प्रकटे पूरन काम ॥

ब्रह्म रुद्र सनकादिक सबै इनको सिरनावै।
इनकी महिमा अखिल लोक निर्मल गुन गावैं॥
ऐसे प्रभुको छांड़ि के सक्रादि कों देत हो भोग।
अनेक विघन इन टारिये इनको पूजन जोग॥
यहै बात विस्वास रावजू के मन आई।
बड़े गोप सब कहत सुनो हरि कुंवर कन्हाई॥
गरग हम सों कह्यो जेहैं वासुदेव अवतार।
सकट पूतना इन हने बक आदि किये संहार॥
सबहिन के मन आय कियो इनको मन भायो।
सब ब्रज मे बात सुनाय गोवर्धन पूजन आयो॥
इनको सब मिल पूजिये ब्रज में होत कल्यान।
यह निसिचय सब दिन कियौ गिरि को कियो सनमान॥
सब सामिग्री सकट मांझ सबहिन जु धराई।
अपने सकट जुराय चली रोहिनी जसोदामाई॥
राम कृष्न को पास लै प्रफुलित मन आनंद।
बड़े गोप सब संग ले वृषभान बुलाये नन्द॥
सुन्दर गावत गीत चली ब्रजनारि सुहाय।
बहु विधि सौ बाजे बजे दिये निसान घुराय॥
ग्वाल गोप गो बच्छ लै चल्यो सकल ब्रज संग।
ब्रजवासी दरसन भयो गिरिवर गिरिधर अग॥
सबन नवायो सीस भये मन मुदित बिचारे।
किहि विधि पूजन करें पूछि पुरोहित उपचारे॥
हम नहि समझै महेर जू पूछो लाल बुलाय।
लाल कह्यो पूजन करौ बलि उपहार मँगाय॥
गोवर्धन पै दीप दान कियो मन भायो।
चहुं दिसि जगमग ज्योति कुहू निसि भयो सुहायो॥
परिक्रमा सब कोउ चले दाहिन दियो गिरिराय।
गीत नाद उद्घोष सों मगन भये ब्रज राय॥

प्रात समें सबसौं मिले लै आए नन्द राय।
उमग्यौ आनंद सिन्धु कृष्न बलदाऊ माय।।
बड़े गोप आये सबै वृषभान गोप संग लाय।
विप्र बुलाये नन्द जू पूजन कौं गिरिराय।।
पूजन को आरम्भ कियो षोडस उपचारें।
धौरी दूध अन्हवाय बहुरि यो गंगा जल डारें।।
केसर चंदन चरचहीं उबटन कियो बनाय।
मानसी गंगा नीर सों स्नान कराये नद राय।।
कुंकुम अच्छत तिलक दियो माला पहिराय।
पीताम्बर उरहार गोवर्धन तब ही उढाय।।
कुनवारो आगे धरचौ धूप दीप तहिं बार।
सुख सागर सबहिन भयो उमगे करि बलिहार।।
करवाय आचमन सुगंध बीराजु धराये।
बार बार करि आरतौ गीत मंगल जु गवाये।।
ग्वाल बुलाये नन्द जू कुनवारौ दियौ बाँट।
तिलक दिये थापे दिये माथे डोरा गाँठ।।
कान्ह कह्यौ सब ग्वाल बुलाय गाय खिलावौ।
धौरी धूमरि गाय सब बछरन संग लावौ।।
हूँकि हूँकि गायें सबै सम्मुख आई धाय।
खेलन को उत्साह भई धौरी आगे आय।।
सेली बाँधे सीस कर तबै लकुटी लीन्ही।
गायन सम्मुख आय लाल जू चकृत कीन्हीं।।
गायन के अनुकरन ते गोकरन[1] धारे सीस।
गोप भेष अद्भुत बन्यौ ज जै गोकुल ईस।।
अपनी गाय खिलावै कहियो तुम सबै खिलावो।
बछरन आगे लाय तीदरो[2] बहुरि बजावो।।

---

१ ग्वालों का शृङ्गार विशेष जो वे दीपावली पर सिर पर धारण करते हैं। —सम्पा०

२ वाद्य विशेष।

धैनु खिलाई जो सखी गुवालन कियो जुहार।
नए बसन भूषन दये सबनि मान त्यौहार ॥
अन्नकूट धर्‌यौ मौन सो काहे कौन बखाने।
बहु विधि के पकवान विबिध करि सम्मुख आने ॥
पेड़ा बरफी आदि लै सकल मिठाई जात।
भाँति भाँति मेवा धरे तर मेवा सब भांत ॥
चकुली पूवा महिल साठा घर घर तें आये।
भोग धरे नन्दराय सबन कैं मनुज बढ़ाये ॥
अरु काँजो धरी बनाय कैं बरा भिजोये छाछ।
बहुत मांट आगे धरे फल जु धरे भरि गाँछ ॥
पायस धरी अरु खीर धरी धौरि सुखदाई।
ओदन सेव सजाये धरी मन काजु[१] मिलाई ॥
बूरा डार्‌यौ अति घनो तामे बहुत मुकराय।
सैंया बरी मीठो घनो घृत नवनीत सिकाय ॥
फोग केरा द्राच्छा किये बिल सारू फेरी।
सिखरन सजोई धरी अति मीठी सौ तेरी ॥
बासोदी अति सुगंध कौ केसर रंग मिलाय।
दूध औटि मीठो धर्‌यो मिसरी बनी छनाय ॥
माखन मिसरी मिलाय दही मीठो जु धरायो।
तिन ढंग सिखरन छान मेलि बूरो मन भायो ॥
साक रायता सबै धरे सन्धाने गिने न जायँ।
कचरियां मुकवन की करी भुँजेना बहु भाय ॥
तेहि आगे हलदी को चौक पूर्‌यौ पदम सँवारे।
मीठो धर्‌यौ बनाय बहुत कीन्हौ बिस्तारे ॥
ओदन तिहि मध्य प्रेम सौं गिरि कौ कर्‌यौ सम्मान।
मध्य चक्र बांए धर्यो गूंजा शिखर समान ॥

---

१ ब्याजु

चार भाँति की दार मूँग ठाड़े जु बनाये।
घृत नवनीत मँगाय मूग मिलै भात सनाये॥
पापर करुए तेल मे तरे संवार बनाय।
उरद बड़ी तिल बड़ी ठवरा धरे भुँजवाय॥
सिखरन दही भात जीरा जु मिलायो।
बड़ी बैंगन को पीरो भात अति सुख सुहायो॥
मीठो खाटो भात लै आगे धर्यो बनाय।
बरी मूंगरी टीकरा चीला चकता लाय॥
सकरकंद मीठो शाक रुचिर धर्यो बनाई।
अरबी रतालू जिमीकंद इमली जु मिलाई॥
तीन कूँड़ा औटाय के चना बरी कौ कीन।
कढी करी बहु भाँति की भोजन करत प्रवीन॥
बैंगन भुरता शाक कई बहु भाँति बनाय।
और भुँजेना करि धरे अगनित गिने न जायं॥
यहि विधि पूर्यो मोद सो बरनत बरन्यौ न जाय।
जमुना जल के माट लै बाम भाग पधराय॥
धूप दीप करि भोग धर्यो मन अधिक बढाय।
तुलसी माल पहिराय नंद केसर चरचाई॥
संखोदक कीनो तबै अति प्रसन्न ब्रज राज।
हाथ जोड बिनती करी मान लेहु गिरि आज॥
गिरवर रूप धर्यौ जु स्याम भक्तन मन हारी।
ब्रजजन निरखें आय किये तन मन बलिहारी॥
सवन कह्यौ हरखे सवै उमँग उर न समाई।
धन धन सुवन नंदजु कौ यह सुख देख्यौ जाई॥
किंचित् छाक बनाय ग्वारि राख्यौ घर माँहीं।
सकुच रही मन माँझ सोच अतिसय चित जाही॥
आरति जानी वाहि की लीनौ भोग मंगाय।
सब देखत वाहि लियो खायो सराहि सराहि॥

जमुना जल झारी जु लाय अंचवन जु करायो।
मुख पोंछन के काज वस्त्र सब ही जु उठायो ।।
बीरी लाये संवारि कै देत बनाय बनाय।
आप अरोगत मुख भरे उगार कों भक्तन लियो आय ।।
यह उच्छव सुख देख बीन मे नारद गायो।
ब्रज जन मन उल्लास अंग अंग न समायो ।।
जसुमति कीन्हो आरतो बार बार सुख पाय।
चरनन मस्तक धारिकै के कुसल मनायो माय ।।
राई लौन उतारि बहु नौछावर कीन्ही।
मागध सूत बुलाय सबै मुठिया भरि दीन्ही ।।
आग्या माँगि सब चले अपुने गृह कों जात।
राम कृष्ण बन्दन कर्यो चले माय संग तात ।।
समो गयो सब चूकि इन्द्र मन बहुत रिसायौ।
दीनों दूत पठाय नंद ब्रज खबर मंगायौ ।।
उन सम्मुख आयसु कियौ सासति कह्यौ सुनाय।
परबत कौ पूजन कियौ दीने भोग लुटाय ।।
कोप कियो ब्रज माँह प्रलय के मेघ छुड़ाये।
बरसौ जाय निसंक[1] देहौ ब्रजै बहाये ।।
महा घोर बरसा भई बहत प्रचंड समीर।
कह्यो गोप ब्रज राज सो अब कैसे रहै धीर ।।
गिरिवर सम्मुख चाहि[2] कान्ह जु तबही उठायौ ।।
स्रम न कछू चित माँहि छत्रबल ऊपर आयौ ।।
अँदेसो सबहिन भयौ टेकि लकुटिया आय।
बेनु रंध्रन पूरि कै गिरि को दयौ उछलाय ।।
मानों सप्त सुरन सो फूंकि कै थिरकरि राख्यो।
गोपी जन गृह काज करहु आनन्द सों भाख्यौ ।।

१—निश्चित (पाठ भेद)

२—देख कर (अर्थ)

सात द्यौस लौ बरसियो मूसलधार प्रमान ।
तबहिं यह निस्चय भयौ परब्रह्म भगवान ।।
अपराध परचौचित जानि संग सुरभी लै आयौ ।
गंगा जल अभिषेक कियौ आनन्द बढायौ ।।
मुकुट चरनन पर धर्यो लोटत मघवा धरि ध्यान ।।
पीठ आप अपनो कियो यह ब्रज मेरो जान ।।
गिरिवर धरणी पै धरि आप मैया पै आये ।
मात तात पाँयन परे दोउन सिर नाए ।।
ग्वाल गोप सबहिन मिले कंठ लगे अँकवार ।
हरख हरख सब यों कह्यो चिरजीवौ नंद कुमार ।।
रानीजू गोद बैठाय चूमि मुख हियौ सिरायो ।
प्रेम समुद्र बाढचौ बहू उमग्यौ न समायो ।।
कान्ह जो मेरे एक हैं बाँयौ हाथ पिराय ।
सात द्यौस पर्वत धर्यौ कमला पति वैकुंठराय ।।
सखा भये मन मुदित दई ब्रजराज दुहाई ।
जै जै सबद उचारत हमारो देव कन्हाई ।।
तिहारो ऐसो पूत है बिघन नसे बहु कूर ।
गोविन्द इनको नाम है सोरह कला भरपूर ।।
भूषन बसन मँगाय बारि गुवालन को दीने ।
अति उदार नंदराय दान बहुतक से कीने ।।
आसिस दई विप्रन कह्यौ जीवौ सुत ब्रजराज ।
मदन मोहन ब्रज लाडिलौ 'परमानन्द' सिरताज ।।

[२७३] राग सारंग

वार वार हरि सिखवन लागे बोलत अमृत बानी ।
सुनोहो एक उपदेस हमारो चारि पदारथ दानी ।।
मेरो कह्यौ वेगि अब कीजै दूध भात घृत सानी ।
गोवर्धन कौ पूजन कीजै गोधन के सुख दानी ।।
यह परतीत नंदजु के आई कान्ह कही सोई मानी ।
'परमानन्द' प्रभु मान भंगकरि झूँठो कियौ पानी ।।

[२७४] राग सारंग

घरी एक छांड़ो तात विहार ।
राम कृष्न तुम दोउ भैया आवो बैठो करो सिंगार ।।
जसुमति कहत है आजु अमावस दीप मालिका मंगल नाम ।
घर घर बालक सबै सिंगारे सुनो स्यामघन राम ।।
खेलेंगी गाय ग्वाल सब नाचें गोपी गावें गीत ।
'परमानन्द दास' यह मंगल वेद पुरान पुनीत ।।

[२७५] राग सारंग

गोवर्धन पूजत परम उदार ।
गोपवृन्द मोहन की सोभा बाढ़ो परम अपार ।।
खटरस बिंजन भोग सैल कौं धरत विविध उपहार ।
पूजा करि पाँय लागि के परदच्छिना देत दिवावत ग्वार ।।
चहुँ ओर गोपी कंचन तन, मानों गिरि पर्यो हार ।
'परमानन्द' प्रभु की छबि निरखत रह्यौ विथकि तहँ मार ।।

[२७६] राग सारंग

गोवर्धन पूजिहैं हम आई ।
राखो भाग नन्द मघवा कौ करिहै कहा रिसाई ।।
आनन्द मगन ग्वाल चले सब गोरस माँटि भराई ।
सखन सहित अति राम कन्हैया खिरक सिंगारत जाई ।।
दीप[१] मालिका महामहोच्छब ग्वालन लेहु बुलाई ।
'परमानन्द प्रभु' लै दधि ओदन बैठि रहे सब खाई ।।

[२७७] राग सारंग

नन्द गोवर्धन पूजो आज ।
जाते गोप गुवाल गोपिका सुखी सबन को राज ।।
जाकौं रुचि-रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सों काज ।
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ।।
मेरो कह्यौ मान अब लीजे भर भर सकटन साज ।
'परमानन्द' आन के अर्पत वृथा करत कित नाज[२] ।।

---

१ आपुन धारि लियो गिरि मूरति अतर प्रीतिहू पाई ।
२ अभिमान अथवा गौरव [फारसी प्रयोग अर्थ]

सात द्यौस लौं बरसियो मूसलधार प्रमान।
तबहिं यह निस्चय भयो परब्रह्म भगवान॥
अपराध परचौचित जानि संग सुरभी लै आयौ।
गंगा जल अभिषेक कियौ आनन्द बढ़ायौ॥
मुकुट चरनन पर धर्यो लोटत मघवा धरि ध्यान॥
पीठ आप अपनो कियो यह ब्रज मेरो जान॥
गिरिवर धरणी पै धरि आप मैया पै आये।
मात तात पाँयन परे दोउन सिर नाए॥
ग्वाल गोप सबहिन मिले कंठ लगे अँकवार।
हरख हरख सब यों कह्यो चिरजीवौ नंद कुमार॥
रानीजू गोद बैठाय चूमि मुख हियौ सिरायो।
प्रेम समुद्र बाढचौ बहू उमग्यौ न समायो॥
कान्ह जो मेरे एक हैं बाँयौ हाथ पिराय।
सात द्यौस पर्वत धर्यौ कमला पति वैकुंठराय॥
सखा भये मन मुदित दई ब्रजराज दुहाई।
जै जै सबद उचारत हमारो देव कन्हाई॥
तिहारो ऐसो पूत है बिघन नसे बहु कूर।
गोविन्द इनको नाम है सोरह कला भरपूर॥
भूषन बसन मँगाय बारि गुवालन को दीने।
अति उदार नदराय दान बहुतक से कीने॥
आसिस दई विप्रन कह्यौ जीवौ सुत ब्रजराज।
मदन मोहन व्रज लाडिलौ 'परमानन्द' सिरताज॥

[२७३] राग सारंग

वार वार हरि सिखवन लागे बोलत अमृत बानी।
सुनोहो एक उपदेस हमारो चारि पदारथ दानी॥
मेरो कह्यौ वेगि अब कीजे दूध भात घृत सानी।
गोवर्धन कौ पूजन कीजै गोधन के सुख दानी॥
यह परतीत नंदजु के आई कान्ह कही सोई मानी।
'परमानन्द' प्रभु मान भंगकरि झूँठो कियौ पानी॥

[२७४] राग सारंग

घरी एक छांड़ो तात विहार ।
राम कृष्न तुम दोउ भैया आवो बैठो करो सिंगार ।।
जसुमति कहत है आजु अमावस दीप मालिका मंगल नाम ।
घर घर बालक सबै सिंगारै सुनो स्यामघन राम ।।
खेलेंगी गाय ग्वाल सब नाचें गोपी गावें गीत ।
'परमानन्द दास' यह मंगल वेद पुरान पुनीत ।।

[२७५] राग सारंग

गोवर्धन पूजत परम उदार ।
गोपवृन्द मोहन की सोभा बाढ़ो परम अपार ।।
खटरस बिंजन भोग सैल कौं धरत विविध उपहार ।
पूजा करि पाँय लागि के परदच्छिना देत दिवावत ग्वार ।।
चहुँ ओर गोपी कंचन तन, मानों गिरि पर्यौ हार ।
'परमानन्द' प्रभु की छबि निरखत रह्यौ बिथकि तहँ मार ।।

[२७६] राग सारंग

गोवर्धन पूजिहैं हम आई ।
राखो भाग नन्द मघवा कौ करिहै कहा रिसाई ।।
आनन्द मगन ग्वाल चले सब गोरस माँटि भराई ।
सखन सहित अति राम कन्हैया खिरक सिंगारत जाई ।।
दीप[1] मालिका महामहोच्छब ग्वालन लेहु बुलाई ।
'परमानन्द प्रभु' लै दधि ओदन बैठि रहे सब खाई ।।

[२७७] राग सारंग

नन्द गोवर्धन पूजो आज ।
जाते गोप गुवाल गोपिका सुखी सबन को राज ।।
जाकौं रुचि-रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सों काज ।
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ।।
मेरो कह्यौ मान अब लीजै भर भर सकटन साज ।
'परमानन्द' आन के अर्पत वृथा करत कित नाज[2] ।।

---

१ आपुन धारि लियो गिरि मूरति अतर प्रीतिहू पाई ।
२ अभिमान अथवा गौरव [फारसी प्रयोग अर्थ]

[२७८] राग सारंग

गोधन पूजें गोधन गावें ।
गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही कों माथों नावें ॥
गोधन मात पिता गुरु गोधन गोधन देव जाहि नित ध्यावें ।
गोधन कामधेनु कल्पतरु गोधन पै माँगें सोई पावें ॥
गोधन खिरक खोरि[१] गिरि गह्वर रखवारो घर बन जहँ धावें ।
'परमानन्द' भावतो गोधन गोधन को हमहूं पुनि भावें ॥

[२७९] राग सारंग

हमारो देव गोवर्धन रानो ।
जाकी छत्र छाँह हम बैठे ताकौं तजि और को मानो ॥
नीको तृन सुन्दर जल नीको नीको गोधन रहत अघानो ।
नीको सब ब्रज होत सुखारो सुरपति कोप कहा पहचानो ॥
खीर खांड घृत भोजन मेवा ओदन सबल अनूपम आनो ।
'परमानन्द' गोवर्धन उच्छव अन्नकोट अलौकिक जानों ॥

[२८०] राग सारंग

गोवर्धन पूजि कै घर आये ।
जननी जसोदा करत आरती मोतिन चौक पुराये ॥
मंगल कलस बिराजित द्वारे वंदनबारि बनाये ।
'परमानन्द' गिरिधर गिरि पूज्यौ भये भोजन मन भाये ॥

[२८१] राग बिलावल

गोवर्धन नख पर धर्यौ मेरे बारे कन्हैया ।
दधि अच्छत फल फूल लै भुज अरचत मैय्या ॥
जुरि आई सब घोख की नारी ओरे जु अढैया[२] ।
ग्वाल बाल पांयन परे गोपी लेत बलैय्या ॥
बलदाऊ फूल्यौ फिरै जग जीत्यौ रे भैया ॥
'परमानन्द' आनन्द मे ब्रज बजत बधैय्या ॥

---

१ गली [अर्थ]
२ टेक अथवा सहारा लगाने वाले [अर्थ]

[२८२] राग सारंग

बरषन देरे बरषन दै हमारो गोकुल नाथ सहाय ।
एकहि हाथ नंद के नंदन परवत लियो उठाय ।।
मोहि भरोसो कमलनैन को बार न बाँकौं जाय ।
महाबली घनस्याम मनोहर समरथ जादौंराय ।।
सात दिवस जल बरसि सिरानो मघवा चल्यो खिसाय ।
'परमानन्द स्वामी' के गोपा निकसे बेनु बजाय ।।

[२८३] राग बिलावल

हमें सरन तुम्हारी राखौ जीउ ।
गोपी ग्वाल पुकारत हरि पै जुरि जुरि बादर गरजत पीउ ।।
इन्द्र कोप कीनौ हम ऊपर मेघ समूह पठाये ।
मूसलधार घन बरषन लागे रिपु समाज कै धाये ।।
जिनि डराऊ हौं नाथ तुम्हारो हँसि-हँसि कहत मुरारी ।
अनायास छानो[1] लेउ परवत कर धरि लियो उपारी ।।
सात दिवस अपनो सो कीनों मघवा गयो खिसाई ।
'परमानन्द स्वामी' के गोपा बसे निसान बजाई ।।

इन्द्र मान भंग के पद

[२८४] राग बिलावल

चिरजीवौ लाल गोवर्धन धारी ।
सात द्यौस जल बृद्धि निवारी या ढोटा पर वारी ।।
देवराज परतिग्या मेटी गोप भेख लीला अवतारी ।
नल कूबर मनिग्रीव उबारे बालक दसा पूतना मारी ।।
देत असीस सकल गोपी जन राज करो वृन्दावन चारी ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर अनुदिन आरति हरत हमारी ।।

१ छाया आश्रय [अर्थ]

[२८५] राग बिलावल

गोपी ग्वाल पुकारन लागे सरन तिहारी राखो जू ।
बादर जुरि जुरि गाजन लागे भली होय सो भाखौ जू ।।
इन्द्र कोप हम ऊपर कीनौ मेघ समूह पठाये जू ।
मूसलधार बरखत सेना पर रिपु समान उठि धाये जू ।।
जिन डरपो हौं नाथ तिहारो हँसि हँसि कहत मुरारी जू ।
अनायास छत्र जो छायो पर्वत लियो उखारी जू ।।
सातद्यौस अपनो सो कीनो मधवा रह्यौ खिस्याई जू ।
'परमानन्द' कहो गोपी जन कैसे बेनु बजाई जू ।।

[२८६] राग बिलावल

गोवर्धन धरनी धर्‌यो मेरे बारे कन्हैया ।
दधि अच्छत फल फूल लैलै भुज पूजत मैया ।।
बिप्र बोलि बरनी करी दीनी बहु गैया ।
ग्वाल बाल पायन परे गोपी लेत बलैया ।।
नंद मुदित मन फूलहिं कीरति जुग जुग भैया ।
'परमानंद' ब्रज राखि लियो खेलत लरकैया ।।

[२८७] राग धनाश्री

माधो जू राखो अपनी ओट ।
वे देखो गोवर्धन ऊपर उठे है मेघ के कोट ।।
तुम जो सक्र की पूजा मेटी वैर कियो उन भोट[१] ।
नाहिन नाथ महातम जान्यो भयौ है खरेते खोट ।।
सात द्यौस जल बरसि सिरानो अचयो एकही घोट ।[२]
लियो उठाय गरूवो गिरि करपर कीनो निपट निघोट[३] ।।
गिरि धार्यो तृनावर्त पार्‌यो[४] जियो नंद को ढोट ।।
'परमानन्द प्रभु' इन्द्र खिसयानो मुकुट चरन तर लोट ।।

---

१ बडा, बहुत [अर्थ]
२ घूंट ।
३ हल्का
४ मार्यो

[२८८] राग धनाश्री

महाबल कीनो हे ब्रजनाथ !
इत मुरली उत गोपिन सों रति इन गोवर्धन हाथ ॥
उत बालक पय पान करावत इत सुरभो तृन खात ।
उतहि चरत बछरा अपने रस ग्वाल बजावत पात ॥
कोप्यौ इन्द्र महाप्रलय को भर लायो दिन सात ॥
'परमानंद प्रभु' राखि लियो ब्रज मेटि इन्द्र की घात ॥

[२८९] राग धनाश्री

अब न छांड़ो चरण कमल महिमा मैं जानी ।
सुरपति मेरो नाम धर्यो लोक लोक अभिमानी ॥
अबलौं मैं नही जानत ठाकुर है कोई ।
गोपी ग्वाल राखि लिये सब मेरी पति खोई ॥
ऐरावत कामधेनु अरु गंगाजल आनी ।
हरि को अभिषेक कियो जय जय सुर बानी ॥
बारंबार परनाम करत गोवर्धन धारी ।
'परमानंद' गोप भेष [महँ] लीला अवतारी ॥

गोपाष्टमी के पद

[२९०] राग सारंग

गोपाल माई कानन चले सवारे ।
छींके कांधे बांधि दधि ओदन गोधन के रखवारे ॥
प्रात समय गोरंभन सुनि कैं गोपन पूरे स्त्रिग ।
बजावत पत्र कमल दल लोचन जानो उठि चले भृंग ॥
करतल वेनु लकुटिया लीने मोर पंख सिर सोहै ।
नटवर भेष बन्यो नंदनंदन देखत सुर नर मोहै ॥
खग मृग तरु पंछी सचुपायो गोप बधू बिलिखानी ।
बिछुरत कृष्ण प्रेम की वेदन कछु परमानंद जानी ॥

[२६१] राग रामकली

मैया री मैं गाय चरावन जैहौं ।
तू कहि महर नंद बाबा सौं बड़ो भयो न डरैहौं ॥
स्रीदामा आदि सखा सब और हलधर संगै लैहौं ।
दह्यौ भात कांवरि भरि लैहौं भूख लगै तब खैहौं ॥
बंसीबट की सीतल छैयां खेलत में सुख पैहौं ।
'परमानन्ददास' सग खेलो जाय जमुना जल न्हैहौ* ॥

[२६२] राग सारंग

ब्रज जन फूले अंग न मात ।
आज कहूँ गए गौ चारन आग्या दीनी तात ॥
मंगल कलस अलंकृत गोपी जसुमति गृह उठि आई प्रात ।
साज सिंगार पहिरि पट भूषन सुन्दर स्यामल गात ॥
गाय सिंगारि ग्वाल लै आये भई भामती बात ।
'परमानन्द' कहत नंदरानी बालक दूर न जात ॥

[२६३] राग सारंग

मैया री मैं कैसी गाय चराई ।
बूझि देखि बलभद्र ददा सौं कैसी मैं टेरि बुलाई ॥
बिडरि चली सघन वन महियां हेरी दै ठहराई ।
ग्वालन के लरिका पचिहारे वे सब मेरी दांई ॥
भलो भलो कहि महरि हँसत है फूली अंग न माई[1] ।
'परमानंद प्रभु' वीर वचन सुनि जसुमति देत वधाई ॥

---

* 'परमानंद' प्रभु तृसा लगे पं जमुना जलहि अचैहो । [पाठभेद]

१ मात

[२९४] राग सारंग

मैया हौं न चरैहौं गाय ।
सबरे ग्वाल घिरावत मोपै दूखत मेरे पांय ॥
जब हौं घेरन जात नहीं कितनी बेर चराय ।
मोहि न पत्याइ वूझि बलदाऊ कौं अपनी सौंह दिवाय ॥
ही जानत मेरे कुंवर कन्हैया लेत हिरदय लगाय ।
'परमानंददास' को जीवन ग्वालन पर जसुमतिजु रिसाय ॥

[२९५] राग सारंग

चले हरि बछरा चरावन माई ।
टेरे[1] पहिलें तोक स्रीदामा लीने संग लगाई ॥
कहत गोपाल सुनत सब बृन्दावन में जैये ।
मधुमेवा पकवान मिठाई भूख लगें तब खैये ॥
खेलत हँसत करत कोलाहल आये यमुना तीर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर राम कृस्न दोऊ बीर ॥

[२९६] राग बिलावल

सोहत लाल लकुटी कर राती ।
सूथन कटि चोलना अरुन रंग पीताम्बर की गाती ॥
ऐसे गोप सबै बनि आए जो सब स्याम संगाती ।
प्रथम गोपाल चले जु बच्छ लै असीस पढ़त द्विज जाती ॥
निकट निहारत रोहिनी जसोदा आनंद उपज्यो छाती ।
'परमानंद' नन्द आनंदित ह्वै दान देत बहु भांती ॥

---

१ रे रे तोक [परमानन्ददास लीला में तोक सखा हैं अत इसे आत्म सकेत की सुन्दर पद्धति मानी जा सकती है—सम्पादक]

[२९७] राग भैरव

मेरी भरी मटुकिया लै गयोरी ।
कछु खायो कछु ग्वालन खवायो रीती करि मोहि दै गयोरी ॥
वृन्दावन की कुंज गलिन मे ऊँची नीची मोते कहि गयोरी ।
'परमानन्द' ब्रज वासी सांवरो अँगूठा दिखाय रस लैगयो री ॥

[२९८] राग गौरी

हो[१] प्यारी लागे ब्रज डगर ।
लुकि लुकि खेलत आंख मचौनी चरन पहारी उपर ॥
सात पांच मिल खेलन निकसी कोकिलाबन की डगर ।
'परमानन्द प्रभु' की छबि निरखत मोहि रहो ब्रज सगर ॥

[२९९] राग सारंग

चले बन गोचारन सब गोप ।
प्रात समै सर कमल खण्ड तें मानों मधुपन के ओप ॥
स्याम पीत पट राम नीलपट जानु काछे[२] सिसु पुंज ।
महुवर बेनु बखान बांसुरी जनु साजे अलि गुंज ॥
तिन मे नंद नंदन की सोभा ज्यो उडुगन मँह चन्द ।
'परमानन्द' जसोदा गृह प्रकटे आनन्दकन्द ॥

[३००] राग सारग

नीके नीके गोपाल माई चलत देखियत नीके ।
मध्य गोपाल मंडली बल मोहन कांधे धर लिये छींके ॥
वछरा हांक किये सव आगे सेली आप बनाये ।
मानो कमल सरोवर तजि के मधुप उनीदें आये ॥
वृन्दावन प्रवेस अघ मर्दन वालक लीला भावै ।
प्रेम समुद्र लोक त्रय पावन जन 'परमानन्द गावै ॥

---
१ मोहि
२ पाछे

देव प्रबोधिनी के पद

[३०१] राग बिलावल

लाल कौं सिंगार करावत मैया।
करि उबटनो अन्हवायें रुचि सों हरि हलधर दोऊ भैया॥
हँसुली हेम हमेल अरु दुलरी वन माला उर पहरैया।
'परमानन्ददास' को जीवन जसुमति लेत बलैया॥

[३०२] राग कान्हरो

जागे जग जीवन जग नायक।
कियो प्रबोध देवगन जबहीं उठे जगत सुखदायक॥
जा प्रभु की प्रभुताई भारी सिव ब्रह्मादिक पायक।
कमला दासी पांय, पलोटें निपुन निगम से गायक॥
जहाँ जहाँ भीर परी भक्तन कौं तहँ तहँ होत सहायक।
'परमानन्द प्रभु' भक्त बछल हरि जिनके मन बच कायक॥

[३०३] राग कान्हरो

देव दिवारी सुभ एकादसी हरि प्रबोध कीजे हो आज।
निद्रा तजों उठो हे गोविन्द सकल बिस्व हित काज॥
घर घर मंगल होत सवन के ठौर ठौर गावत ब्रज नारी॥
'परमानन्ददास' को ठाकुर भक्त हेत लीला अवतारी॥

[३०४] राग कान्हरो

देव जगावत जसोदा रानी बहु उपहार पूजा कै करिकै।
इच्छु दण्ड मंडप पोहपन के चौक चहुं दिसि दीवा धरिकै॥
ताल पखावज भेरि संख धुनि गावत निसि मिलि जागरन करिकै।
धूप दीप करि भोग लगावत दै पोहपावलि अंजलि भरिकै॥
घृत पकवान रुचिर परम रुचि बिंजन सगरे सुघरे सरकै।
'परमानन्द' जगदीस बिराजे गोकुलनाथ सुमरि पद हरिकै॥

[३०५] राग कान्हरो

आनन्द आज कुंज के दुवार ।
सखी सकल मिलि मंगल गावत नयनन निरखत नंद दुलार ।।
नव नव बसन नवल नव भूषन पौढ़ाये सब सुभग सिंगार ।
मंडप मध्य बैठि मन मोहन संग लिये श्री राधा नार ।।
दीपमालिका रची चहुँ दिसि जगमगात अंग जोति अपार ।
वारि आरती जुगल रूप पर 'परमानन्ददास' बलिहार ।।

[३०६] राग बिलावल

आज ललन की होति सगाई ।
आवोरी गोपीजन मिलिकें गावो मंगलचार बधाई ।।
चोटी चुपुरि गुहो सुत तेरो छाँडो चंचलताई ।
वृषभान गोप टीका दै पठयो सुन्दर जाति कन्हाई ।।
जो तुमको या भांति देखिकें करै कहा बड़ाई ।
पहरि बसन आभूषन सुन्दर उनको देउँ दिखाई ।।
नख सिख अंग सिंगार महर मनि मोतिन की माला पहराई ।
बैठे आप रतन चौकी पर नर नारिन की भीर सुहाई ।।
विप्र प्रवीन तिलक कर मस्तक अच्छत चांप लियो अपनाई ।
वाजत ढोल भेरि और महुवर नौबत धुनि घनघोर बजाई ।।
फूली फिरत जसोदा रानी वारि कुँवर पर बसन लुटाई ।
'परमानन्द' नंद के आँगन प्रमर गन पोहोपन की झर लाई ।।

[३०७] राग सारंग

व्याह की बात चलावत मैया ।
वरसाने वृषभान्द गोप कें लाल की भई सगैया ।।
ग्वाल वाल सव वरात चलेंगे और चलं वल भैया ।
'परमानन्द' नंद के आनन्द हंसि हँसि लेत वलैया ।।

[३०८] राग सारंग

छांड़ो मेरे लाल अजहूँ लरकाई।
यहै काल देखिकें तोकों ब्याह की बात चलावन आई॥
डरि हैं सास सुसर चोरी तें सुन हँसि हैं दुल्हैया सुहाई।
उबटि न्हवाय गूंथि चुटीया बल देख भलो बर करिहैं बड़ाई॥
मात बचन सुन बिहँसि बोले दे भई बड़ी बेर कालि तोताँई।
जब सोवै, काल तब ह्वै है नयन मूँदत, पौढ़े कन्हाई॥
उठि कह्यौ भोर भयो अँगुली दे मुदित मन लखि आतुरताई।
बिहँसे गोपाल जान 'परमानन्द' सकुच चले जननी उरभाई।

[३०६] राग सारंग

ब्याह की बात चलावन आये।
अपने अपने गाम तें ग्वालिनि कहि कहि दूत पठाये॥
नन्द महर मिलि समधानो कीनों देख जसोदा आनद आये।
कब देखोगो दुलह दुलहनी अपने कुल के देव मनाये॥
यह सुनिकै हरषे संकर्षण प्रभु कहुंक प्रभुता जनाये।
'परमानन्द' मैया स्रीपति छिन भूषन बसन बनाये॥

[३१०] राग सारंग

पुरवो साध नन्द मेरे मन की।
करो ब्याह देखो इन आँखिन दुलहिनी अपने ललन की॥
व्रजपुर माँहि विचारो कन्या काहू गोप सजन की।
रूप अनूप सकल गुन सुन्दर जोरी सामल तन की॥
कब देखोंगी मौर धरें सिर ऊपर पनरथ ढांप बदन की।
अति उतंग नीली घोरी चढ़ि और छवि चंवर ढुरन की॥
राई लौन उतार डुहूकर लगे दृष्टि न दुरजन की।
'परमानंद' करे न्यौछावर सोभा रूप सदन की॥

[३११] राग सारंग

बिनती सुनहु जसोदा रानी ।
अकसमात हमारी गैयां तुम्हरे सुत पतियानी ।।
आज[१] सांझ बन तें चरिआई हरि बिछुरत अकुलानी ।
कैसेहि भाँति न देति दुहाई[२] केतिक रैन बिहानी ।।
मैं चलि आइ जमाइ दियौ अब दूध बृथा भयौ जानी ।
कैसें कै बोली नन्दराय सों इतनी कहति सँकानी ।।
री तू बेगि जाय लै मदन गोपालै नन्द घरनि सुख मानी ।
'परमानन्द' प्रभु चले संग उठि कापै परत बखानी ।।

ब्याह के पद

[३१२] राग सूहा व आसावरी[१]

मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावै ।
जैसी यह काहू की डिठौनियां रुनक झुनक घर आवे ।।
कर पकवान रसाल रसोई अपने कर लै मोहि जिमावें ।
कर अंचल पट ओट बाबा को ठाड़ी ब्यार ढुरावै ।।
मोहि उठाय गोद बैठारै कर मनुहार मनावै ।
अहो मेरे लाल कहो बाबा सो तेरौ ब्याह करावै ।।
नंदराय नंदरानी हिल-मिल सुख समुद्र बढावै ।
'परमानन्द' प्रभु की बातें सुन आनंद उर न समावै ।।

प्रस्तुत पद राधा माधव के प्रथम और प्रगाढ स्नेह का परिचायक है ।

—संपादक

१ अब सु

२ दुही नहीं जाती [अर्थ]

[३१३] राग सारंग

अपने लाल को ब्याह करूँगो बड़े गोप की बेटी ।
जासों हमरो जतिया चारो भोजन भेटा भेटी ॥
मात जसोदा लाड लड़ावे अंग सिंगार करावे ।
कस्तूरी को तिलक बनावें चन्दन पीत चढ़ावे ॥
कह री मैया कब लावेगी मोकू है दुलहिनीया नीको ।
परोस परोस के मोहि खवावें रोटी चुपरी घी की ॥
सब सखा बरात चलेंगे हौंऽब चंढिगो घोरी ।
'जन परमानन्द' पान खवावे बीरा राखे भर झोरी ॥

[३१४] राग नट

सजनी री गावो मंगलचार ।
चिरजीवो वृषभान नंदिनी दुल्है नन्दकुमार ॥
मोहन के सिर मुकुट बिराजत राधा के उर हार ।
नीलाम्बर पीताम्बर की छबि सोभा अमित अपार ॥
मंडप छायो देखि बरसाने बैठे नंद उदार ।
भामर लेत प्रिया और प्रीतम तन मन दीजै वार ॥
यह जोरी अविचल स्री बृन्दावन क्रीडत करत विहार ।
'परमानन्द' मनोरथ पूरन भक्तन प्रान आधार ॥

[३१५] राग कान्हरो

सोहै सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे ।
मनि मोतिन कौ सेहरा सोहै बसियो मन मेरे ॥
मुख पून्यो को चन्दा है मुक्ताहल तारे ।
उनके नयन चकोर है सब देखन हारे ॥
पाग बने प्यारी परम आगरी बन आई ।
रूप नागरी गोपी ए सब देखन आई ॥
दुलहनि रैन सुहाग की दूलह वर पायो ।
नंदलाल को सेहरा 'परमानन्द' प्रभु गायो ॥

[३११] राग सारंग

बिनती सुनहु जसोदा रानी ।
अकसमात हमारी गैयां तुम्हरे सुत पतियानी ।।
आज[१] सांझ बन तें चरिआई हरि बिछुरत अकुलानी ।
कैसेहि भाँति न देति दुहाई[२] केतिक रैन बिहानी ।।
मैं चलि आइ जमाइ दियौ अब दूध बृथा भयौ जानी ।
कैसें कै बोली नन्दराय सो इतनी कहति सँकानी ।।
री तू बेगि जाय लै मदन गोपालै नन्द घरनि सुख मानी ।
'परमानन्द' प्रभु चले संग उठि कापै परत बखानी ।।

ब्याह के पद

[३१२] राग सूहा व आसावरी

मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावै ।
जैसी यह काहू की डिठौनियाँ रुनक झुनक घर आवे ।।
कर पकवान रसाल रसोई अपने कर लै मोहि जिमावैं ।
कर अंचल पट ओट बाबा को ठाढ़ी ब्यार ढुरावै ।।
मोहि उठाय गोद बैठारै कर मनुहार मनावै ।
अहो मेरे लाल कहो बाबा सों तेरौ ब्याह करावै ।।
नंदराय नंदरानी हिल-मिल सुख समुद्र बढ़ावै ।
'परमानन्द' प्रभु की बातें सुन आनंद उर न समावै ।।

प्रस्तुत पद राधा माधव के प्रथम और प्रगाढ स्नेह का परिचायक है ।

—संपादक

१ अब तु

२ दुही नहीं जाती [अर्थ]

[३१३] राग सारंग

अपने लाल को व्याह करूंगो बड़े गोप की बेटी ।
जासो हमरो जतिया चारो भोजन भेटा भेटी ॥
मात जसोदा लाड लड़ावे अंग सिगार करावे ।
कस्तूरी को तिलक बनावें चन्दन पीत चढ़ावे ॥
कह री मैया कब लावेगो मोकू है दुलहिनीया नीकी ।
परोस परोस के मोहि खवावे रोटी चुपरी घी की ॥
सब सखा बरात चलेंगे हौंऽब चढिगो घोरी ।
'जन परमानन्द' पान खवावे बीरा राखे भर झोरी ॥

[३१४] राग नट

सजनी री गावो मंगलचार ।
चिरजीवो वृषभान नंदिनी दुल्है नन्दकुमार ॥
मोहन के सिर मुकुट बिराजत राधा के उर हार ।
नीलाम्बर पीताम्बर की छबि सोभा अमित अपार ॥
मंडप छायो देखि बरसाने बैठे नंद उदार ।
भामर लेत प्रिया और प्रीतम तन मन दीजे वार ॥
यह जोरी अविचल स्री बृन्दावन क्रीडत करत विहार ।
'परमानन्द' मनोरथ पूरन भक्तन प्रान आधार ॥

[३१५] राग कान्हरो

सोहै सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे ।
मनि मोतिन को सेहरा सोहै बसियो मन मेरे ॥
मुख पून्यो को चन्दा है मुक्ताहल तारे ।
उनके नयन चकोर है सब देखन हारे ॥
पाग बने प्यारो परम आगरी बन आई ।
रूप नागरी गोपी ए सब देखन आई ॥
दुलहनि रैन सुहाग की दूलह वर पायो ।
नंदलाल को सेहरा 'परमानन्द' प्रभु गायो ॥

[३१६] राग कान्हरो

मांगे सुवासिन द्वार रुकाई ।
झगरत अरत करत कौतूहल चिरजीवो तेरा कुंवर कन्हाई ।
चिरजीवौ वृषभान नन्दिनी रूप सील गुन सागर माई ।
निरख निरख मुख जीऊँ सजनी यहैं नेग बढ संपत जाई ।।
दीनी घूमरि धौरी पियरी और तिनकों सारी पहिराई ।
फिर सबहिन की भहर जसोदा मेवा गोद भराई ।।
आरती कर लिये रतन चौक मे बैठारे सुन्दर सुखदाई ।
'परमानंद' आनन्द नन्द के भाग बडे घर नवनिधि आई ।।

[३१७] राग कान्हरो

आज बने सखी नंद कुमार ।
वाम भाग वृषभान नंदिनी ललितादिक गावें सिंघ द्वार ।।
कंचन थार लिये कर मुक्ताफल अरु फूलन के हार ।
रोरी केसर तिलक विराजत करत आरती हरख अपार ।।
यह जोरी अविचल स्री वृन्दावन देत असीस सकल ब्रज नार ।
कुंज महल मे राजत दोऊ 'परमानन्ददास' बलिहार ।।

[३१८] राग केदारा

कुंज भवन मे मंगलचार ✱
नव दुलहिन वृषभान नन्दिनी दूल्हे स्री वृजराज कुमार ।।
नव नव पुष्प कुंज के तोरत नव पल्लव की बन्दनवार ।
चोकी रची कदम खंडी मेंह सघन लता मंडप विस्तार ।।
करत वेद धुनि विप्र मधुप गन कोकिल पिय गावत अनुहार ।
दीने भूरि 'दास परमानंद' प्रेम भक्ति रतनन के हार ।।

✱ प्रस्तुत पद परमानददास जी के नाम से प्राचीन प्रतियो में मिलता है किन्तु परीख जी को इनके विषय में सदेह है । देखो—कीο मο पृο ११५ —सपादक

भोगी संक्रान्ति के पद

[३१९] राग मालकोस

भोगी के दिन अभ्यंग स्नान करि साज सिंगार स्याम सुभगतन ।
पुनि फूलितिलवा भोग धरिकें परम सुंदर आरोगावत सब निजजन ॥
स्री घनस्याम मनोहर मूरत करत बिहार नित ब्रज बृन्दावन ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करत रंग निस दिन ॥

मकर संक्रान्ति के पद

[३२०] राग आसावरी

भोगी भोग करत सब रस को ।
नन्द नन्दन जसोदा कौ जीवन गोपी जन पति सरबस को ॥
तिल भरि संग तजत नहीं निज जन गान करत मनमोहन जस को ।
तिल तिल भोग धरत मन भावत 'परमानंद' सुख लै यह रस को ॥

[३२१] राग आसावरी

भयो नंदराय के घर खिच ।*
सब गोकुल के लरकन के संग बैठे हैं आये बिच ॥
परोसि थार धरे लै आगे सद माखन घी खिच[१] ।
'परमानंद' प्रभु भोजन कीनो अति रुचि मांग्यो इछ ॥

[३२२] राग भूपाली

आज भूख अति लागी रे बाबा ।**
भोजन भयो अघानो नीकौ तृपति होय रुचि भागी ।
अचवन कों यमुनोदक लैके आई परम सुहागी ।
भोजन अन्त सीत अति 'परमानंद' दीजिये मेरी आँगी ॥

---

* यह पद मकर सक्रान्ति के दिन राजभोग के समय गाया जाता है । सपा०

१ छछ ।

** यह पद सक्रान्ति की सध्या का है ।

[३२३] राग सारंग

गहै रहै भामिनी की बाँह ।
मदन गोपाल चतुर चिंतामनि जानत हो मन[१] माँह ॥
ठाढ़े बात करत राधा सौं, तहाँ जसोदा आई ।
झूठो मिस करि रोवन लागे इन मेरी गेंद चुराई ॥
कौन टेव तेरे ढोटा की बरजत काहे न माई ।
या गोकुल में स्याम मनोहर उलटी चाल चलाई ॥
सुनि सुत बचन तबै स्यामा के महरि चली मुसकाई ।
'परमानन्द' अटपटी हरि की सबै बात मन भाई ॥

[३२४] राग सारग

देखो कौन मन राखि सकै री ।
वह मुसकान बहै चारु बिलोकनि अवलोकत दोऊ नैन छकैरी ।
जिनको अनुभव कबहूँ नाहिन तै घर बैठे न्यान बकैरी ।
जिने न सुनि मुरली वहै कानन ते पसु पच्छी मृग न भकैरी ॥
'परमानंददास' प्रभु यहै अवस्था जे हरि आप निरख अटकैरी ।
विनु देखे अब रह्यो न परै हो सुन्दर बदन कुटिल अलकैरी ॥

[३२५] राग बिहाग

सुन्दर नंद नंदन जो पाऊँ ।
द्वार कपाट बनाय जतन के नीके माखन दूध खवाऊँ ॥
अति विचित्र सुन्दर मुख निरखो करि मनुहार वनाऊँ ।
'परमानन्द' प्रभु या जाडे कौ देस निकासो दिवाऊँ ॥

---

१ मव ।

[३२६] राग विहाग

माई मौहि मोहन लागै प्यारो।
जब देखों तन नैनन निरखों इन अँखियन को तारो॥
कंपित तन[१] सीत अति धूजत थरथरात तन भारो।
'परमानन्द' प्रभु या जाड़े कौ कीजिये मुँह कारो॥

[३२७]

मदन मन कीनो री मतवारौ।
नागर नवल प्रेम रस बस कीनों नंद दुलारौ॥
कैधों प्रीतम पराये भवन मँह करत हैं नित ढारौ।
आजु रैनि अकेलो सोई सीत दहत तन भारौ॥
प्रथम कियो कर जोरि मिलन हित पायो प्रान पियारौ।
'परमानन्द' प्रभु या जाडे को दीजै देस निकारौ॥

[३२८] राग मालकोस

मदन मन कीनो री मतवारो।
नागरी नवल प्रेम रस बस कीनो नंद दुलारो॥
कैधो प्रीतम पराये भवन में करत रहत नित ढारो।
आजु रैन अकेलो सोयी सीत दहत तन भारो॥
प्रथम कियो बर जोरी मिलन हित पायो प्रान पियारो।
परमानन्द' प्रभु या जाड़े कौं दीजै देस निकारो॥

---

१ शीत का व्यतीत होना इन पदों मे ध्वनित होता है। प्रस्तुत पद से श्री परीख जी परमानन्ददास जी की शारीरिक स्थूलता का अनुमान लगाते हैं: इससे कवि के आत्म परिचय की ओर भी संकेत मिलता है। —सम्पादक

एकन लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी मोहन कों सौरी ।
एक फुलेल अरगजा चोवा कुंकुम रस गगरी सिर ढोरी ॥
बिबिध भांति फूल्यो वृन्दावन कूजत कीर षटपद पिक मोरी ।
निरखत नेह भरी अँखियांसों ज्यो निसचंद चकोरी ॥
थकें देव किन्नर मुनिगन सब मन्मथ निज मन गयौ लज्यौरी ।
'परमानन्ददास' या सुखको जाचत विमल मुक्तिपद छोरी ॥

[३३४] राग जैतश्री

रितु वसंत के आगमन प्रचुर मदन को जोर ।
राधा गोरी सुन्दरी सुन्दर नन्द किसोर ॥
केलि रस झूमकरारे झूमकरा ॥ टेक
झुंडन मिलि गावत चली झूमत नंद के द्वार ।
नृत्त करें ब्रज सुन्दरी मोहि लियो मन मार ॥ केलिरस०
विपिन गली सुन्दर बनी ललित लवंगन मेलि ।
अम्ब मनोहर मौरियौ करन केतुकी बेलि ॥ केलिरस०
गोकुल ग्राम सुहावनो वृन्दावन सो ठौर ।
खेलहि ग्वालिन ग्वारिया रसिक कान्ह सिरमौर ॥ केलिरस०
इक गोरी इक साँवरी एक चंद वदनी सोहे बाल ।
एकन कुंडल जगमगे एकन तिलक सुभाल ॥ केलिरस०
एकन चोली अध खुली एक रही बंद छूटि ।
एक अलकावलि उर धरे एक रही लटखूटि ॥ केलिरस०
एकन चीर जो सखि भरे एकन लटकत लूम ।
एक अधर रस धूंट ही एक रही कठ झूम ॥ केलिरस०
ताल पखावज बाज हो बीना वेनु रसाल ।
महुवरी चंग जो बांसुरी वजावत गिरधर लाल ॥ केलिरस०
चोवा चदन कुंकमा उठत गुलाल अबीर ।
सुर नर मुनिमन मानियो व्योम विमानन भीर ॥ केलिरस०
तुरत समागम रमि रहो मनहु महागज मंत ।
'परमानन्द' प्रभु श्रीपति रसिक राधिका कत ॥ केलिरस०

[३३५]

राग काफी

तुम आवो री तुम आवो।
मोहन जू कौं गारी सुनावौ ॥
हरि कारो री हरि कारो।
यह द्वै बापन बिच वारौ ॥
हरि नटवा री हरि नटवा।
राधा जू के आगे लटुवा ॥
हरि मधुकर री हरि मधुकर।
रस चाखत डोलत घर घर ॥
हरि खंजन री हरि खंजन।
राधा जू के मन कौं रंजन ॥
हरि रंजन री ररि रंजन।
ललिता लै आई अंजन ॥
हरि नागर री हरि नागर।
जाकौ बाबा नंद उजागर ॥
हम जानै री हम जानें।
राधा गहि मोहन आने ॥
मुख मांडौ री मुख माँडौ।
हरि हाहा खाय तौ छांडौ ॥
हम भेरे हैं री हम भेरे।
काहू ते नेक न डरे हैं ॥
हरि होरी हो हरि होरी।
स्यामा जू केसरि ढोरी ॥
हरि भावै री हरि भावै।
राधा मन मोद बढ़ावै ॥
रंग भीनो री रंग भीनो।
राधा मोहन वस कीनो ॥

एकन लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी
एक फुलेल अरगजा चोवा कुंकुम रस ग
बिबिध भांति फूल्यो वृन्दावन कूजत कीर
निरखत नेह भरी अँखियांसों ज्यो (
थके देव किन्नर मुनिगन सब मन्मथ निज
'परमानन्ददास' या सुखको जाचत विमल

[३३४]

रितु वसत के आगमन प्रचुर मदन
राधा गोरी सुन्दरी सुन्दर नन्द
केलि रस झूमकरारे ?
झुंडन मिलि गावत चली झूमत नंद
नृत्त करें व्रज सुन्दरी मोहि लियो मन
विपिन गली सुन्दर बनी ललित लवंगन
अम्ब मनोहर मौरियौं करन केतुकी
गोकुल ग्राम सुहावनो वृन्दावन सो
खेलहि ग्वालिन ग्वारिया रसिक कान्ह सिरमं।
इक गोरी इक साँवरी एक चंद वदनी सोहे ब
एकन कुंडल जगमगे एकन तिलक सुभाल
एकन चोली अध खुली एक रही बंद छूटि
एक अलकावलि उर धरे एक रही लटखूटि
एकन चीर जो सखि भरे एकन लटकत लूम
एक अधर रस धूंट ही एक रही कठ भूम ॥
ताल पखावज बाज हो बीना वेनु रसाल।
महुवरी चंग जो बाँसुरी बजावत गिरधर लाल ॥के
चोवा चदन कुंकमा उठत गुलाल अबीर।
सुर नर मुनिमन मानियो व्योम विमानन भीर ॥के
सुरत समागम रमि रहो मनहु महागज मत।
'परमानन्द' प्रभु स्रीपति रसिक राधिका कत ॥केलिर

संवत्सर उत्सव

[३३६] राग सारंग

चैत्रमास संवत्सर परिवा बरस प्रवेस भयौ है आज ।
कुंज महल बैठे पिय प्यारी लाल तन हेरैं नौतन साज ॥
आपु ही कुसुमहार गुहि लीने क्रीड़ा करत लाल मन भावत ।
बीरी देत 'दास परमानंद' हरखि निरखि जस गावत ॥

श्री रामनौमी की बधाई के पद

[३३७] राग विलावल

नौमी के दिन नौबत बाजे कौसल्या सुत जायौ ।
सात घरी दिन उदित भयो है सब सखियन मंगल गायौ ॥
कांप्यो सिंधु कंगूरा ढरियो लंका आगम जनायो ।
सब लंका मे सोक[1] पर्यो है रामदेव[2] गृह आयो ॥
दसरथ मन आनन्द भयो है बंस हमारे गृह आयो ।
विप्र बुलाय साधना कीनी अभै[3] भंडार लुटायो ॥
कंचन के बहु कलस बनाये मोतिन चौक पुराये ।
घरी एक निगम सोच हिय भाख्यौ रामचंद्र गृह आये ॥
गृह गृहते सब सखीं बुलाईं आनंद मंगल गाये ।
दसरथ राय दोऊ आँगन मे आदर करि बैठाये ॥
दसरथ उठ बजार पधारे सारी सुरंग बसायो ॥
जो जाके जैसो मन भायो तैसो ताहि पहरायो ॥
पाट पटंबर खासा झीनों जैसौ नाहि मन भायौ ।
'परमानन्ददास' कहां लौं बरनौं तीन लोक जस छायौ ॥

---

१ सोर
२ राजदेव
३ अछै

हरि प्यारो री हरि प्यारो।
राधा नयन को तारो ॥
हम लैहैं री हम लैहैं।
फगुवा लै गारी न देहैं ॥
यह जस 'परमानन्द' गावै।
कछु रहसि बधाई पावै ॥

संवत्सर उत्सव

[३३६] राग सारंग

चैत्रमास संवत्सर परिवा बरस प्रवेस भयौ है आज ।
कुंज महल बैठे पिय प्यारी लाल तन हेरै नौतन साज ॥
आपु ही कुसुमहार गुहि लीने क्रीड़ा करत लाल मन भावत ।
बीरी देत 'दास परमानंद' हरखि निरखि जस गावत ॥

श्री रामनौमी की बधाई के पद

[३३७] राग विलावल

नौमी के दिन नौबत बाजे कौसल्या सुत जायौ ।
सात घरी दिन उदित भयो है सब सखियन मंगल गायौ ॥
कांप्यो सिंधु कंगूरा ढरियो लंका आगम जनायो ।
सब लंका मे सोक[१] पर्यो है रामदेव[२] गृह आयो ॥
दसरथ मन आनन्द भयो है बंस हमारे गृह आयो ।
विप्र बुलाय साधना कीनी अभै[३] भंडार लुटायो ॥
कंचन के वहु कलस बनाये मोतिन चौक पुराये ।
घरी एक निगम सोच हिय भाख्यौ रामचंद्र गृह आये ॥
गृह गृहते सब सखीं बुलाईं आनंद मंगल गाये ।
दसरथ राय दोऊ आंगन मे आदर करि बैठाये ॥
दसरथ उठ बजार पधारे सारी सुरंग बसायो ॥
जो जाके जैसो मन भायो तैसो ताहि पहरायो ॥
पाट पटंबर खासा झीनों जैसौ नाहि मन भायौ ।
'परमानन्ददास' कहां लौं बरनौं तीन लोक जस छायौ ॥

---

१ सोर
२ राजदेव
३ अछै

[३३८] राग सारंग

माई प्रकट भये हैं राम ।
हत्या तीन गई दशरथ की सुनत मनोहर नाम ।।
बन्दीजन सब कौतुक भूले राघव जनम निधान ।
हरखे लोग सबै भुवपुर के जुवतीजन करत हैं गान ।।
जय जयकार भयो बसुधा पर संतन मन अभिराम ।
'परमानन्ददास' बलिहारी चरन कमल बिस्राम ।।

[३३९] राग सारंग

आज अयोध्या मंगल चार ।
मंगल कलस माल अरु तोरन बंदीजन गावत सब द्वार ।।
दसरथ कौसल्या कैकेई बैठे आये मंदिर के द्वार ।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन बैठे चारो धीर उदार ।।
इक नाचत इक करत कोलाहल पायन नूपुर की झनकार ।
'परमानन्ददास' मन मोहन प्रगटे असुर संघार ।।

[३४०] राग सारंग

आज सखी रघुनन्दन जाये ।
सुन्दर रूप नयन भर देखौं गावत मंगलचार वधाये ।।
परम कौतूहल नगर अयोध्या घर घर मोतिन चौक पुराये ।
द्वार-द्वार मारग गरियारे तोरन कंचन कलस धराये ।।
पूरन सकल सनातन कहियत जे हरि वेद पुरानन गाये ।
महाभाग्य र'जा दसरथ कौ जिंहिघर रघुपति जनमही आये ।।
बृह्मघोष मिलि करत वेद धुनि जय जय दुंदभि वजाये ।
गुनि गंदर्भ चारन जस बोले भुवन चतुर्दस आनन्द पाये ।।
पान फूल फल चोवाचंदन बहु उपहार लोग लै आये ।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन कौं कौसल्या जननी गोद खिलाये ।।

[३४१] राग सारंग

हमारे मदन गोपाल हैं राम ।
धनुष बान ब्रिमल बेनुकर पीत बसन और तन घनस्याम ॥
अपनी भुज जिन जलनिधि बांध्यो रास रच्यौ जिन कोटिक काम
दससिर हति जिन असुर संघारे गोवर्धन राख्यौ कर वाम ॥
वे रघुवर यह जदुवर मोहन लीला ललित विमल बहुनाम ।
'परमानन्द' प्रभु भेद रहित हरि संतन मिलि गावत गुन ग्राम ॥

[३४२] राग सारंग

आज अयोध्या प्रगटे राम ।
दसरथ वंस उदै कुल दीपक सिव बिरंचि मुनि भयौ बिस्राम ॥
घर घर तोरन वंदन माला मोतिन चौक पुर्‌यौ निजधाम ।
'परमानन्ददास' तेहि अवसर बन्दी जन के पूरन[1] काम ॥

रामनौमी पलना के पद

[३४३] राग बिलावल

श्री रघुनाथ पालना झूलें कौसल्या गुन गावें ।
बल अवतार देव मुनि वंदित राजिव लोचन भावें ॥
राजा दसरथ पलना गढ़ायो नव चंदन को साज ।
हीरा जटित पाटकी डोरी रत्न जराये वाग ॥
ऐते चरन कमल कर अति नील जलद तन सोहै ।
मृगमद तिलक अलक घुंघरारी मृदुल हास मन मोहै ॥
घर घर उतसव चारू अयोध्या राघव जनम निवास ।
गावत सुनत लोक त्रै पावन बलि 'परमानन्ददास' ॥

---

१ पूरत

[३३८] राग सारंग

माई प्रकट भये हैं राम ।
हत्या तीन गई दशरथ की सुनत मनोहर नाम ।।
बन्दीजन सब कौतुक भूले राघव जनम निधान ।
हरखे लोग सबै भुवपुर के जुवतीजन करत हैं गान ।।
जय जयकार भयो बसुधा पर संतन मन अभिराम ।
'परमानन्ददास' बलिहारी चरन कमल बिस्राम ।।

[३३९] राग सारंग

आज अयोध्या मंगल चार ।
मंगल कलस माल अरु तोरन बंदीजन गावत सब द्वार ।।
दसरथ कौसल्या कैकेई बैठे आये मंदिर के द्वार ।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन बैठे चारों धीर उदार ।।
इक नाचत इक करत कोलाहल पायन नूपुर की झनकार ।
'परमानन्ददास' मन मोहन प्रगटे असुर संघार ।।

[३४०] राग सारंग

आज सखी रघुनन्दन जाये ।
सुन्दर रूप नयन भर देखौं गावत मंगलचार बधाये ।।
परम कौतूहल नगर अयोध्या घर घर मोतिन चौक पुराये ।
द्वार-द्वार मारग गरियारे तोरन कंचन कलस धराये ।।
पूरन सकल सनातन कहियत जे हरि वेद पुरानन गाये ।
महाभाग्य र'जा दसरथ कौ जिहिंघर रघुपति जनमही आये ।।
वृह्मघोष मिलि करत वेद धुनि जय जय दुंदभि बजाये ।
गुनि गंदर्भ चारन जस बोले भुवन चतुर्दस आनन्द पाये ।।
पान फूल फल चोवाचंदन बहु उपहार लोग लै आये ।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन कौं कौसल्या जननी गोद खिलाये ।।

[३४१] राग सारंग

हमारे मदन गोपाल हैं राम ।
धनुष बान बिमल बेनुकर पीत बसन और तन घनस्याम ।।
अपनी भुज जिन जलनिधि बाँध्यौ रास रच्यौ जिन कोटिक काम
दससिर हति जिन असुर संघारे गोवर्धन राख्यौ कर वाम ।।
वे रघुवर यह जदुवर मोहन लीला ललित विमल बहुनाम ।
'परमानन्द' प्रभु भेद रहित हरि संतन मिलि गावत गुन ग्राम ।।

[३४२] राग सारंग

आज अयोध्या प्रगटे राम ।
दसरथ बंस उदै कुल दीपक सिव बिरंचि मुनि भयौ बिस्राम ।।
घर घर तोरन वंदन माला मोतिन चौक पुर्यौ निजधाम ।
'परमानन्ददास' तेहि अवसर बन्दी जन के पूरन[१] काम ।।

रामनौमी पलना के पद

[३४३] राग बिलावल

श्री रघुनाथ पालना झूलें कौसल्या गुन गावें ।
बल अवतार देव मुनि बंदित राजिव लोचन भावें ।।
राजा दसरथ पलना गढ़ायो नव चंदन को साज ।
हीरा जटित पाटकी डोरी रत्न जराये बाग ।।
ऐते चरन कमल कर अति नील जलद तन सौहै ।
मृगमद तिलक अलक घुंघरारी मृदुल हास मन मोहै ।।
घर घर उत्सव चारू अयोध्या राघव जनम निवास ।
गावत सुनत लोक त्रै पावन बलि 'परमानन्ददास' ।।

---

१ पूरत

[३३८] राग सारंग

माई प्रकट भये हैं राम ।
हत्या तीन गई दशरथ की सुनत मनोहर नाम ।।
बन्दीजन सब कौतुक भूले राघव जनम निधान ।
हरखे लोग सबै भुवपुर के जुवतीजन करत हैं गान ।।
जय जयकार भयो बसुधा पर संतन मन अभिराम ।
'परमानन्ददास' बलिहारी चरन कमल बिस्राम ।।

[३३९] राग सारंग

आज अयोध्या मंगल चार ।
मंगल कलस माल अरु तोरन बंदीजन गावत सब द्वार ।।
दसरथ कौसल्या कैकेई बैठे आये मंदिर के द्वार ।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन बैठे चारो धीर उदार ।।
इक नाचत इक करत कोलाहल पायन नूपुर की झनकार ।
'परमानन्ददास' मन मोहन प्रगटे असुर संघार ।।

[३४०] राग सारंग

आज सखी रघुनन्दन जाये ।
सुन्दर रूप नयन भर देखौं गावत मंगलचार वधाये ।।
परम कौतूहल नगर अयोध्या घर घर मोतिन चौक पुराये ।
द्वार-द्वार मारग गरियारे तोरन कंचन कलस धराये ।।
पूरन सकल सनातन कहियत जे हरि वेद पुरानन गाये ।
महाभाग्य राजा दसरथ कौ जिहिघर रघुपति जनमही आये ।।
बृह्मघोष मिलि करत वेद धुनि जय जय दुंदभि वजाये ।
मुनि गंदर्भ चारन जस वोले भुवन चतुर्दस आनन्द पाये ।।
पान फूल फल चोवाचंदन वहु उपहार लोग लै आये ।
'परमानन्द' प्रभु मनमोहन कौं कौसल्या जननी गोद खिलाये ।।

[३४१] राग सारंग

हमारे मदन गोपाल हैं राम ।
धनुष बान बिमल बेनुकर पीत बसन और तन घनस्याम ।।
अपनी भुज जिन जलनिधि बाँध्यौ रास रच्यौ जिन कोटिक काम
दससिर हति जिन असुर संघारे गोवर्धन राख्यौ कर वाम ।।
वे रघुवर यह जदुवर मोहन लीला ललित विमल बहुनाम ।
'परमानन्द' प्रभु भेद रहित हरि संतन मिलि गावत गुन ग्राम ।।

[३४२] राग सारंग

आज अयोध्या प्रगटे राम ।
दसरथ बंस उदै कुल दीपक सिव बिरंचि मुनि भयौ बिस्राम ।।
घर घर तोरन वंदन माला मोतिन चौक पुर्यौ निजधाम ।
'परमानन्ददास' तेहि अवसर बन्दी जन के पूरन[१] काम ।।

रामनौमी पलना के पद

[३४३] राग बिलावल

श्री रघुनाथ पालना झूलें कौसल्या गुन गावें ।
बल अवतार देव मुनि वंदित राजिव लोचन भावें ।।
राजा दसरथ पलना गढ़ायो नव चंदन को साज ।
हीरा जटित पाटकी डोरी रत्न जराये बाग ।।
ऐते चरन कमल कर अति नील जलद तन सोहै ।
मृगमद तिलक अलक घुंघरारी मृदुल हास मन मोहै ।।
घर घर उत्सव चारू अयोध्या राघव जनम निवास ।
गावत सुनत लोक त्रै पावन बलि 'परमानन्ददास' ।।

---

१ पूरत

श्री आचार्य जी की बधाई

[पलना के पद]

[३४४] राग आसावरी

स्री बल्लभ लाल खेलत मध्य आँगन ।
पहले प्रगट नंद जसोदा गोपिन कों रस देतन ।
अब भे प्रकट स्री लक्ष्मण नन्दन स्री भागवत रस प्रकटन ।
'परमानन्द दास' प्रभु की छबि सुख कविजन नहीं कहतन ।।

श्री नृसिंह चतुर्दशी के पद

[३४५] राग बिलावल

गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति नेति गावै ।
भगत हेत स्याम सुन्दर देह धरें आवै ।।
योगी मुनि ग्यानी ध्यानी सुपने नहीं पावै ।
नंद घरनि बाँधि बाँधि कपि ज्यौं लै नचावै ।।
गोपी जन प्रेम आतुर संग लागी बालै बोलै ।
मुरली के नाद सुनत गृह तजि बनडोलै ।।
स्रुतिसुमृति वेद पुरान कहत मुनि बिचारी ।
'परमानन्द' प्रेम कथा सबहिन ते न्यारी ।।

[३४६] राग विलावल

यह व्रत माधौ प्रथम लियौ ।
जो मेरे भगतन को दुखवै ताकों फारौं नखन हियौ ।
जो भगतन सों वैर करत है परमेसुरसों वैर करे ।
रखवारी कौं चक्र सुदर्सन मेरौ सदा फिरे ।।
पराधीन हूँ अपने भगत को जा कारन अवतार धर्यो ।
यहजु कही हरि मुनिजन आगें अभिमानी को गर्व हर्यो ।।
भजते भजौं तजौं नहि कवहूँ पारथप्रति स्रीपति यो भाखी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अखिल भुवन सब साखी ।।

[३४७] राग कान्हरो

जाको तुम अंगीकार कियो ।
तिन के कोटि बिघन हरि टारे अभयदान[१] भगतन दियो ।।
वहु सनमान[२] दियो प्रहलादै सबही निसंक जियो ।
निकसे खंभ फारके[३] नरहरि आपुन राखि लियो ।।
दुर्बासा अंबरीष सतायौ सो पुनि सरन गयो ।
परतिग्या राखी मन[४] मोहन पुनि उनही पै पठयो[५] ।।
मृतक भये हरि सबै जिवाये दृष्टिहू अमृत पियौ ।
'परमानन्द' भक्त बस केसव उपमा कौन वियौ ।।

[३४८] राग कान्हरो

हरि राखै ताहि डर काको ।
महापुरुष समरथ कमलापति नरहरी से ईस है जाको ।।
अनेक साधना करि करि देखीं निस्फल भई खिस्याय रह्यौ ।
ता बालक कौ बार न बाँकौ हरि की सरन प्रह्लाद गयो ।।
हिरनकसिपु को उदर बिदार्यो अभयराज प्रह्लादै दीनों ।
'परमानंद' दयाल दयानिधि अपने भगत कौ नीकौ कीनों ।।

---

१ प्रताप ।

२ सासना ।

३ मध्य ।

४ मदन ।

५ पठै दियो ।

[३४९] राग कान्हरो

श्री नरसिंह भगत भयभंजन जनरंजन मन सुखकारी ।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनी जंत्र भव भय हारी ॥
सर्व मंत्रते अधिक नाम जन रहत निरंतर उरधारी ।
निज जन सबद सुनत आनंदित गिरि गये गर्भ दनुज नारी ॥
कोटिक काल दुरासद बिघनहिं महाकाल को काल सँघारी ।
श्री नरसिंह चरन पंकज रज 'जन परमानन्द' बलिहारी ॥

[३५०] राग कान्हरो

जय जय श्री नरसिंह हरी ।
जय जगदीस भगत भय मोचन खंभ फारि प्रकटे करुना करी ॥
हिरनकसिपुको नखन विदार्यो तिलक दियो प्रह्लाद अभयसिर ।
'परमानंददास' को ठाकुर नाम लेत सब पाप जात जर ॥

———

साक्षात् स्वामिनी जी के आसक्ति वचन

[३५१] राग सारंग

तुमहि जु चाहति काननि डोली ।
देखि गोपाल अवस्था मेरी स्रम जल भीजी चोली ।।
हौं अपने गृह काज करत ही वेनु व्याज कत बोली ।
तुम अटपटे मनोहर नागर हम अहीर मति भोरी ।।
ऐसी बहुरि करहु जिन बलि जाऊँ अरु ओडति हौं ओली ।
'परमानन्द' प्रभु प्रेम जानि कै तमकि कंचुकी खोली ।।

[३५२] राग आसावरी

गोपाल तेरी मुरली हौं मारी ।
सबद बान बेधी उर अंतर नंद किसोर मुरारी ।।
कहति राधिका सुनि मन[१] मोहन तुम्हरी दासिन चेरी ।
रूप निधान स्याम घन सुन्दर या बंदसि परवारी ।।
रह्यौ न परै कनक मंदिर मं आई बनहु सवारी ।।
'परमानन्द स्वामी' सुख कारन सही लोक की गारी ।।

[३५३] राग केदारा

गोविन्द ग्वालिन ठगौरी लाई ।
बंसी, बट जमुना के तट मुरलो मधुर बजाई ।।
रह्यौ न परै देखे बिनु मोहन अलप कलप सम जाई ।
निस दिन गोहन लागी डोलै लाज सबै बिसराई ।।
उठत बैठत सोवत जागत जपत कन्हाई कन्हाई ।
'परमानन्द स्वामी' मिलवै कौं और न कछू सुहाई ।।

---

[१] जग

[३५४] राग सारंग

आजु तुम ह्यांई रहौ कान्हर प्यारे ।
निसि अंधियारी भवन दूरि है चल न सकत पां हारे ।।
तोरि पत्र की सेज बिछाऊं वा तरवर की छांह ।
नंद के लाल तुम से निकट देहुँगी उसीसे बांह ।।
संग के सखा सब घर कौं विदा करो हम तुम रहेगे दोऊ
'परमानन्द प्रभु'मन राधा भावै अनख करो मतिकोऊ ।।

[३५५] राग बिलावत

तैं मेरी लाज गंवाई हौ दिखनौते ढोटा ।
देह बिदेही ह्वै गई मिटो घूंघट की ओटा ।।
कमल नयन तुम कुंवर हो हलधर ते छोटा ।
छैल छबीले रूप पै मैं भई लोटकपोटा ।।
स्री गोपाल तुम चतुर हौ हम मति की बोटा ।
'परमानंद' सोई जानि है जाहि प्रेम की चोटा ।।

[३५६] राग गौरी

पिय मुख देखत ही पै रहिये ।
नैंननि कौ सुख कहत न आवै जा कारन सब सहिये ।।
सुनहु गोपाल लाल पांइ लागी भलो पोच ले बहिये ।
हौ आसक्त भई या रूपै बड़े भाग तै लहिये ।।
तुम बहु नायक चतुर सिरोमनि मेरो बांह दृढ़ गहिये ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन तुम ही निरवहिये ।।

[३५७] राग कानरो

तिहारे बदन के हौं रूप राची ।
आऊ गोपाल खेलौ मेरे आँगन इहि मिस लाल प्रीति कर सांची ।।
अब के दुराये क्यो दुरति है प्रगट भई सब गोकुल मांची ।
घर घर घोन मथन सबहिन के अकेली मात जसोदा बांची ।।
ऐसी करि सुन्दर ब्रजनायक मरकत मनि कचन ज्यों पांची ।
'परमानंद प्रभु' लोग हँसन दे हौतौ दृढ़ नाहिन मति कांची ।।

[३५८] राग का•हरो

माधो भली जु करति मेरे द्वारे के पाऊँ धारत ।
साँझ संवारे देखत हौं हीयो भरि प्रीति के भूखे मेरे लोचन आरत ।।
बोलत यामें नागरता नित प्रति उठि चित्त लगति विचारत ।
यह जु भली गृहपति नहीं जानत प्रीतम मिलन हित गोसुत चारत ।
कुनित वेनु सुनि खग मृग मोहे मुनि मनसा समाधि टारत ।
'परमानन्द प्रभु' चलत ललित गति बासर जात ब्रजताप निवारत ।

[३५६] राग कान्हरो

हौं रीझी तेरे दोऊ नैन ।
थकित भई हौं चल न सकति मारग एको गैन ।।
चलत छबीलो देखत छबीलो कमल छबीले बैन ।
'परमानंद प्रभु' गिरवर लाल छबीलो बोल छबीली सैन ।।

[३६०] राग सारंग

मदन गोपाल बलैये लेहौं ।
वृन्दा बिपिन तरनि तनया तट चलि ब्रजनाथ आलिगन देहौं ।।
सघन निकुंज सुखद रति आलय नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं ।
त्रिगुन समीर पंथ पग बिहरत मिलि तुम संग सुरति सुख पैहो ।।
अपनी चौंप ते जब बोलहुगे तब गृह छांडि अकेली अैहों ।
'परमानंद' प्रभु चारु वदन को उचित उगार मुदित ह्वै खैहों ।।

[३६१] राग कानरो

कहति है राधिका अहीरि ।
आजु गोपाल हमारे आवहु न्यौति जिवाऊँ खीरि ।।
बहुत प्रीति अंतर गति मेरे नैन ओट दुख पाऊँ ।
जानति हौं पिय कुंवर छैल को संग मिले जसुगाऊँ ।।
तुम्हरो कोऊ विलगु नहीं मानै लरिकाई की बात ।
'परमानंद प्रभु' नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात ।।

[३६२] राग सारंग

गुवालनि न्याय तजे गृह वास ।
कैसे धीरज रहे लाल मति देखहु कृष्न मुख हास ।।
मेघ स्याम तन नख सिख सुन्दर पहिरे पिंगल वास ।
चलत ललित गति जगत विमोहन जानु दै सीमेके लास ।।
अग अंग प्रति सखी ठगौरी काम विनोद विलास ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नागरि छांड़ौं यह उपहास ।।

[३६३] राग सारंग

सुन्दर मुख की हौ बलि बलि जाऊँ ।
लावन निधि गुन निधि सोभा निधि देखि देखि जीवत सब गाऊँ ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटत रस रुचिर ठाऊँ ।।
तामैं मृदु मुसिकानि हरत मन न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ ।।
सखा अंस पर बाम बाहू धरै यह छवि की बिनु मोल बिकाऊँ ।
'परमानन्द' नंदनंदन कौ निरखि निरखि उर नैन सिराऊँ ।।

[३६४] राग कान्हरा

गोविंद प्रीति के बस कीनो ।
अन्तरगत ते स्याम मनोहर अनत जान नहि दीनो ।।
नहि सहि सकत बिछुरनो पल भरि भलौ नेम तें लीनो ।
'परमानन्द प्रभु' मोहन मूरति चरन कमल चित दीनो ।।

[३६५] राग धनाश्री

गुवालिनी ठाड़ीए मथति दह्यौ ।
या भेदै कोऊ नाहिन जानति नीके मरम लह्यौ ।।
उलटी रई मथनिया टेढ़ी बिनहि नेत कर चंचल ।
निरखि चंद मुख लोन्यो काढ़ति थकित नैन के अंचल ।।
सबै बिपरीत भई तिहि औसर मन गिरिधर हरि लीनो ।
'परमानंद' संभार न तन की यहै प्रीति को चीन्हो ।।

[३६६] राग सारंग

राधा माधौ सों रति बाढ़ी ।*
चितवति तहां जहां नंद नंदन सब तौ लियो मन काढी ॥
एक द्यौस जमुना मज्जन करि निकसि तीर भई ठाड़ी ।
सुकवति बार बार कर सिर धरि बनी है कंचुकी गाढ़ी ॥
स्याम नवल कनक चपंक तन नागरि मनसिज ठाड़ी ।
चाहति मिल्यो प्रान प्यारे कों 'परमानन्द' गुन श्राढ़ी ॥

[३६७] राग सारंग

अतिरति स्याम सुन्दर सों बाढ़ी ।
देखि सरूप गोपाल लाल कौ रही ठगी सी ठाढ़ी ॥
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि बलनि गति थाकी ।
हरि ज्यों हरि को मगु जोवति काम मुगुधमति ताकी ॥
नैनहिं नैन मिले मन अरुझ्यो यह नागरि वह नागर ।
'परमानंद' वीच ही बन में बात जु भई उजागर ॥

[३६८] राग कान्हरो

नव रंग कंचुकी तन गाढ़ी ।
नव रंग सुरंग चूनरी ओढ़े चंद्रबधू सी ठाढ़ी ॥
नवरंग मदन गोपाल लाल सौं प्रीति निरंतर बाढ़ी ।
स्याम तमाल लाल उर लपटी कनक लता सी आढ़ी ॥
सब अंग सुन्दर नवल किसोरी कोक कला गुन पाढी ।
'परमानंद स्वामी' की जीवनि रस सागर मथि काढ़ी ॥

---

* प्रस्तुत पदों में चरम आसक्ति की अवस्था द्रष्टव्य है । —संपादक

[३६९] राग कान्हरो

राधा रसिक गोपालहिं भावै ।
सब गुन निपुन नवल अंग सुंदरि प्रेम मुदित कोकिल सुर गावै ।।
पहिर कसुंभी कटाँव की चोली चंद्र वधू सी ठाढी सोहै ।
सावन मास भूमि हरियारी मृग नयनी देखत मन मोहै ।।
उपमा कहा देन को लाइक कै हरि कै वाही मृग लोचनि ।
'परमानंद प्रभु' प्रान बल्लभ चितवनि चारु काम सर मोचन ।।

[३७०] राग कान्हरो

राधा माधौ बिनु क्यों रहै ।
एक स्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निंदन सहै ।।
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि ते इन मोहन मन हरयो ।
पिय के पाछे लागी डोलें बधुबरग सौं बैर बस्यो ।।
मन क्रम बचन और गति नाहीं बेद लोक की लाज तजी ।
'परमानंद' तब ते सुख पायौ जब ते यह अम्भोज भजी ।।

[३७१] राग कान्हरो

राधे बैठी तिलक संवारति ।
मृगनयनी कुसुमायुध के उर सुभग नद सुत रूप विचारति ।।
दरपन हाथ सिंगार बनावत बासर जाम जुगति यों डारति ।
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सौं प्रथम समागम केलि संभारति ।।
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्धन धारी ।
'परमानंद स्वामी' के संगम रति रस मगन मुदित ब्रजनारी ।।

सख्यता सूचक पद

[३७२] राग सारंग

मोहन लई बातन लाई ।*
खेलन मिस आऊँ तेरे राखि दूब जमाई ॥
कनक वरन सुढार सुन्दर देखि सुरत सुसिकाई ।
रूप राधे स्याम सुन्दर नैन रहे अरुझाई ॥
गुपुत प्रीति जिन प्रगट कीजै लाल रहो अरगाई ।
'दास परमानंद' संग है नातर परती पांइ¹ ॥

[३७३] राग कान्हरो

आवत हुती साँकरी खोरि ।
दोऊ हाथ पसार रहे हरि हौं बाल लजाइ रही मुख मोरि ॥
बालक सों अब कहा कहूँ सखी लीनी दोहनी हाथ मरोरि ।
ऐसो चपल हठीलो ढोटा भाज्यो बहुरि मटुकिया फोरि ॥
कहि प्रकार अटपटी बतियां अंगिया हार लियो मेरो तोरि ।
ताको मागि 'दास परमानन्द' इक टुक लाल लहै लखि कोरि ॥

[३७४] राग नट

चंद में देखौ मोर मुकुट को ।*
टेढ़ी बातन छाँड़ि देहु अब सगरी यहाँ सों सटको ॥
देखें लोग चबाय करि हैं यह मेरे मन खटको ॥
जाने सास ननद बैरिन सब, बन में आजु न भटको ।
मोको पिय मिलेंगे तब ही मिस जमुना जल घट को ॥
मिले आपुन को ओड़² करेंगो प्रान है नागर नटको ॥
घर घर डोलत ग्वाल लरकरा नाहिन काहू के बटको ।
'परमानंद' लागी ना छूटै लाज कुँआँ में पटको ॥

---

* प्रस्तुत पद सख्यता सूचक है। —संपादक
१. 'दास परमानन्द' संग रैबतु नांतर स्वनि पांइ।
* प्रस्तुत पद में किशोर लीला के साथ दाम्पत्य भाव की झलक है। —संपादक
२ ओट

[३७५] राग सारग

री अबला तेरे बलहि न और ।
बांधे मदन गोपाल महागज कुटिल कटाच्छ नयन की कार ॥
जमुना तीर तमाल लतावन फिरत निरंकुस नन्द किसोर ।
भौंह बिलास पास बस कीने मोहन अगह गहे ते जोर ॥
ले राखे कुच बीच निरंतर प्रेम सृंखला सुदृढ का डोर ।
यहै उचित होय ब्रज सुन्दर 'परमानन्द' चपल चित चोर ॥

[३७६] राग सारग

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी ।
बारंबार सराहत राधा परम गुनी ॥
जे भूषन पहिरत सो तै सोहत चोली चारु तनी ।
मदन गोपाल लाल तै मोहे जे त्रैलोक मनी ॥
अंग अंग बरनो कहा भामिनि राजत खुभी अनी ।
'परमानन्द स्वामी' की जीवनि जुवतिन रतन गनी । ※

[३७७] राग बसन्त

बदन छबि मानौ चंद बियौ ।
मदन गोपाल लाल प्यारे को क्यो न जुड़ाइ हियो ॥
साथ रह्यौ स्रयो नैननि तं तब मुनि तप न कियो ।
जुग की आदि निचोड़ प्रेम जल बिधि जसु तिलक दियो ॥
अबलगि राखि दुराइ सबनि तै खग नर सुरनि छियो ।
पूरन सकल प्रगट 'परमानंद' जग जस गाय जियो ॥

[३७८] राग बसन्त

आवति आनंद कंद दुलारी ।
बिधु बदनी मृग नयनी राधा दामोदर की प्यारी ॥
जाके रूप कहत नहिं आवै गुन विचित्र सुकुमारी ।
मानो कछू परचौ घन आखरि, बिधना रच्यो संवारी ॥
प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटे ब्रजजन रहे बिचारी ।
'परमानंददास' बलिहारी मानो साँचे ढारी ॥

※ प्रस्तुत पदों में स्वामिनी जी का स्वरूप वर्णन दृष्टव्य है । —सपादक

[३७६] राग वसंत

चलि राधे तोहि स्याम बुलावैं ।
वह सुनि देखि बेनु मधुरे सुर तेरो नाम हि लैलै गावें ॥
देखौ वृन्दावन की सोभा ठौर ठौर द्रुम फूलें ।
कोकिल नाद सुनत मन आनन्द मिथुन विहंगम झूलें ॥
उन्मद जोवन मदन कुलाहल यह औसर है नीको ।
'परमानन्द प्रभु' प्रथम समागम मिल्यो भावतो जीको ॥

[३८०] राग वसंत

खेलत मदन गोपाल वसंत ।
नागर नवल रसिक चूड़ामनि सब विधि राधिका कंत ॥
नैन नैन प्रति चारु विलोकी बदन बदन प्रति सुन्दर हास ।
अंग-अंग प्रति प्रीति निरंतर रति आगम सजाई विलास ॥
बाजत ताल मृदंग अघोरी डफ बांसुरी कोलाहल केलि ।
'परमानंद स्वामी' के संग मिलि नाचत गावत रंगरेलि ॥

[३८१] राग वसंत

खेलि खेलिहौ लडैती राधे हरि के संग बसंत ।
मदन गोपाल मनोहर मूरति मिल्यो भावतो कंत ॥
कौन पुन्य तप को फल भामिनि चरन कमल अनुराग ।
कमल नैन कमला कौ वल्लभ तोकूं मिल्यौ सुहाग ॥
यह कालिन्दी यह बृन्दावन यह तरुवर की पाँति ।
'परमानंद स्वामी' संग क्रीडत द्यौस न जानी राति ॥

[३८२] राग वसंत

सहज प्रीति गोपालै भावै ।
मुख देखे सुख होय सखीरी प्रीतम नैनसों नैन मिलावै ॥
सहज प्रीति कमल भौंर मानै सहज प्रीति कमोदिनी चंद ।
सहज प्रीति कोकिला वंस ते सहज प्रीति राधा नंद नंद ॥
सहज प्रीति चातक और स्वाँति सहज धरनी जल धारै ।
मन क्रम बचन 'दास परमानन्द' सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ॥

[३८३] राग वसंत

राधे देखि बन के चैन।
भृंग कोकिल सबद सुनि सुनि प्रमुदित नैन ॥
जहाँ बहत मन्द सुगन्ध सीतल भामिनी सुखसेन।
कौन पुन्य अगाध को फल तू जो बिलसत ऐन[१] ॥
लाल गिरिधर मिल्यौ चाहत मोहन मधुरे बैंन।
'दास परमानंद' प्रभु हरि चारु पंकज नैंन ॥

[३८४] राग वसत

फिर फिर पछिताइगी हो राधा।
कित तू कित हरि कित यह औसर करत प्रेम रस बाधा ॥
बहुरि गोपाल भेष कब धरिहैं कब इन कुंजन बसिहैं।
यह जड़ता तेरे जिय उपजी चतुर नारि सुनि हंसिहैं ॥
रसिक गोपाल सुनत सुख उपजै आगम निगम पुकारैं।
'परमानन्द स्वामी' पै आवत को यह नीति बिचारैं ॥

[३८५] राग वसत

सुनि प्यारी कहैं लाल बिहारी खेलन चलो खेलै।
चन्दन वंदन और अरगजा कुंकुम रस लै पेलै ॥
लिये अबीर अरगजा कुमकुम कुंज कुंज मे खेलै।
तुम हमकौं हम तुमकौं छिरकै रंग परस्पर झेलै ॥
अंतरसुख मन ही मन हम जानै मुसुकि छबीली छेलै।
'परमानंद' रसिक रस जानत बाढ़त रस की रेलै ॥

१ ठीक ठीक, पूर्ण [अर्थ]

[३८६] राग सारंग

हरिजू के आवन की बलिहारी
बासर गति देखत हौ ठाड़ी[१] प्रेम मुदित ब्रजनारी।
रितु बसन्त कुसुमित बन देखियत[२] मधुप बृन्द जस गावै।
जे मुनि आय रहत बृन्दावन स्याम मनोहर भावै।
नीको भेष बन्यौ[३] मन मोहन राजत[४] मनि उर हार।
मोर पच्छ सिर मुकुट बिराजत नंद कुमार उदार॥
घोष प्रबेस कियौ है संगमिलि[५] गोरज मंडित देह।
'परमानंद स्वामी' हित कारन जसुमति नंद सनेह॥

[३८७] राग वसंत

अब जनि मोहि मारो नंदनंदन हौं व्याकुल भई भारी।
कहत ही रहत, कह्यौ नहिं मानत देखे नये खिलारी॥
काल्हि गुलाल पर्यो आँखिन मँह अजहूँ भई नहि सारी।
'परमानंद' नन्द के आँगन खेलत ब्रज की नारी॥

[३८८] राग सारंग

खेलत गिरिधर रंगमँगे रंग।
गोप सखा बनि बनि आए हैं हरि हलधर के संग॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज उपंग।
अपनी अपनी फेंटन भरि भरि लिये गुलाल सुरंग॥
पिचकाई नीके करि छिरकत गावत तान तरंग।
उत आई ब्रज वनिता बनि बनि मुक्ताहल भरि मंग[६]॥

१—ठाढ़ी हैं देखति
२—राजत
३—भेपनि चित्र
४—गु जा
५—इह विधि
६—माँग [अर्थ]

[३६४] राग सारंग

सुनतउ जिय धरि मुरि मुसिकानी।
कौन स्याम नंद सुत कैसी अनगढ़ छोली वानी ॥
कछु अनुराग हृदय कौ जनायौ अलक लड़ेती मति ठानी।
ले स्याम नैन भरि राखी अंजन रेख सयानी ॥
जिय की बातनि प्रगट जनावति चौप रहत क्यो छानी[1]।
'परमानन्द' प्यारी चितवनि रूखि हियहिं समानी ॥

[३६५] राग सारंग

राधा माधौ कुंज बुलावै।
सुनि सुंदरि मुरली की घोरैं तेरो नाउँ लैलै गावै ॥
कौन सुकृत फल तेरो बदन सुधाकर भावै।
कमला को पति पावन लीला लोचन प्रगट दिखावै ॥
अब चल मुगधि बिलंब न कीजै चरन कमल रस लीजै।
ऐसी प्रीति करै जो भामिन ताकौ सरबसु दीजै ॥
सरद निसा सखी पूरन चंदा खेल बनेगौ माई।
या सुख की परमित परमानन्द मोपै बरनी न जाई ॥

[३६६] राग सारंग

चलि सखी मदन गोपाल बुलावै।
तेरोई नियाव[2] लैले बेनु मजावै ॥
यह संकेत बद्यो बन महियां।
सघन कदंब मनोहर तहियाँ[3] ॥
मिलन परम सुख अदभुत लीला।
'परमानद' प्रभु भावन सीला ॥

१—अर्थ—गुप्त
२—नाम
३—छहियाँ

[३९७] राग सारंग

चलि लै मिलउँ सदन गोपालहिं ।
भले ठौर बैठे मन मोहन कूजत वेनु रसालहिं ।।
चतुर सखी माधौ जी की पठई सिखवत है ब्रज बालहिं ।
मान मनायो पाँ लागति हौं और बात जिन चालहिं ।।
मात पिता बन्धु अरु गुरू जन लाज छाँड़ि भजि लालहिं ।
'परमानंद' प्रभु भलो मॉनिहै चित्त दैबो बनमालहि ।।

[३९८] राग सारंग

चलिरी ग्वालि बोलत ताहि हरे ।
एते जतन नवति नाही, कौन दूती तेरे कान भरे ।।
हौं पठई मनुहारि बहुत करि तेरे कारन कुंज खरे ।
ऐसी कृपा प्रीति में देखी ना जानें कवन गुन हृदय धरे ।।
वे कमला पति मोहन ठाकुर हाथ तुम्हारे गरे परे ।
'परमानन्द प्रभु' सरबसु दाता जाही के भाग ताही के ढरे ।।

[३९९] राग सारंग

छाँड़ि न देत झूठे अति अभिमान ।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सो सुदर[१] हैं भगवान ।।
यह जौवन धन द्यौस च्यारि को पलटत रंग सो पान ।
बहुरि कहां यह अवसर मिलि है गोप भेष को ठान ।।
बार बार दूतिका सिखवै करहि अधर रसपान ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर सब गुन रूप निधान ।।

१—सुनत रहैं

[४००] राग बसंत

कालिन्दी तीर कलोल लोल।
मधुर तू माधौ मधुर बोल॥
सुन्दर गावत वेनु गीत।
बन माला रची है पुनीत॥
सखा संग बल भाइ साथ।
आनन्द कन्द वैकुंठ नाथ॥
देवकी नंदन जनम बाद।
माया मानुष तन देवराज॥
'परमानंद स्वामी' दयाल।
भव भंजन भय हरन काल॥

[४०१] राग बसंत

राधा माधौ संग खेलै।
बार बार लपटात स्याम तन कनक बाँह पिय के गल मेलै॥
चोबा चंदन साथ कुमकुमा बहुत सुगंध अबीर।
कुसुम माल राजत उर अंतर प्रहसित जादौबीर॥
मदन महोछव फाग मनोहर रति रस फागुन मास।
गोपबधू गावत नाना रंग बलि 'परमानंददास'॥

[४०२] राग बिहागरो

मनावत हार परी मेरी माई।
तू चट[१] ते मट होति[२] नहि राधे उन मोहि लैन पठाई।
राजकुमारी होय सो जाने कै गुरु सीख[३] सिखाई॥
नंद नंदन कौ छाँडि महातम अपनी रार बढ़ाई॥
ठोड़ी हाथ दे चली दूतिका, तिरछी भौंह चढ़ाई।
'परमानन्द प्रभु' करूंगी दुल्हैया, तौ बाबा की जाई॥

---

१ चस ते मस
२ हौं हरि
३ होय

[४०३] राग गौरी

ग्वालिन बीच ठाढ़ो नंद की पौरी[1] ।
बेर बेर इति उत फिरि आवति बिजिया खाय भई बौरी ॥
सुंदर स्याम सलोने से ढोटा उन दधि लैन कह्योरी ।
हम कों कह गए नैंक खड़ी रहि आपुन बैठ रह्यो री ॥
नौलख धेनु नंद बाबा घर तेरो ही लैन कह्यो री ।
जोबन माती फिरत ग्वालिनी तैं मेरे लाल ठगियो री ॥
इतनी सुनत निकस आये मोहन दधि को मोल कह्योरी ।
'परमानंद स्वामी' रूप लुभाने यह दधि भलो बिक्यो री ॥

मानापनोदन

[४०४] राग टोडी

हरि को भलौ मनाइये ।
मांन छाड़ि उठि चन्द्रबदनी उहाँ लौ चलि आइये ॥
निबड कदंब छाँह तहाँ सीतल किसलय सेज बिछाइये ।
एकौ घरी जु ता बिन रहिये सो कत वृथा गँवाइये ॥
दान नेम व्रत सोइ कीजे जिहि गोपाल पति पाइये ।
'परमानंद स्वामी' सौ मिलि के मानस दुख बिसराइये ॥

[४०५] राग आसावरी

कमल नयन बोलत रूप निधान ।
बेग चलहिं राधिका मुगध मति उदय करन चहत भान ॥
सुनहि कृसोदरि निसा कृसा भई कृस न भयो यह तेरो मान ।
प्राची दिसा सब अरुण देखियत तै न दियो अनुराग कौ दान ।
चरनायुध बर बोलन लागे तै नहिं मौन तजो मति मूढ़ ।
फिरि पाछे पछितैहैं मिलन को नंद कुमार नागर गुन गूढ़ ॥
इतनी बात सुनी जब स्रवननि गहे दूती के चरन अरु बांह ।
'परमानंद स्वामी' पै लै चलि जो बोलौ प्यारे निज नांह ॥

१—चोरी

[४०६] राग ललित

राधे जू हारावली टूटी ।
उरज कमल दल माल अरगजी वाम कपोल अलक लट छूटी ।।
बर उर उरज करज कर अंकित बाँह जुगल वलयावलि फूटी ।
कंचुकी चीर बिबिध रग रंगति गिरिधर अधर माधुरी घूटी ।।
आलस बलित नैन अनियारे अरुन उनीदे रजनी घूटी ।
'परमानंद' प्रभु सुरत[१] सने रस मदन नृपति की सेवा लूटी ।।

[४०७] राग ललित

भली बनी बृषभान नंदिनी प्रात समै रन जीते आवै ।
नूपुर मधुप अलक लट छूटी मधुर चाल मद गजहि लजावै ।।
नागर छैल रसिकिनी नागरि सुरति हिंडोरे झूलै गावै ।
वे दोउ सुघर केलि रस मंडित तहँ सत मदन ठौर नहीं पावै ।।
पिय की नख मनि उरहि बिराजति बिन सूतै ही माल बनावै ।
'परमानंद' रूपनिधि नागरि बदन कांति रबि जोति छिपावै ।।

[४०८] राग सारंग

बाँह डुलावति आवति राधा ।
बदन कमल झांपति न उघारति रह्यो है तिलक मिटि आधा ।।
गिरिधर लाल कुंवर नंद नंदन ते जु प्रेम करि लाधा ।
रहसि मिली प्राण प्यारे कौं रही न एको साधा ।।
काजर अधर मिल्यो नैननि कौ मिटी कॉम की बाधा ।
'परमानंद' स्वामी रति नागर तेरौ पुन्य अगाधा ।।

१—समय

[४०९] राग सारंग

रस पायो मदन गोपाल कौ।
सुनि सुंदरि तोहि नीको लाग्यो या मोहन अवतार को ॥
कंठ बाहू धरि अधर पान दै प्रमुदित हसत विहार को।
गाढ आलिंगन दै दें मिलबो बीच न राखत हार को ॥
लोकपाल पावन जसु गावति भक्तन प्रान अधार को।
सेस अंक तजि गोकुल आये देखौ चरित उदार को ॥
वेनु बजावत नाचत गावत अह विनोद सुख सार को।
'परमानंद दास' को जीवन रास परिग्रहे दार को ॥

[४१०] राग विलावल

यह पट पीत कहाँ तै पायो।
इतनिक प्रीति गुपत मोहन की तै राधै त्रैलोक सुनायो ॥
ना याको मोल न याको गाहक न लियो मोल न घर उपजायो।
एक बार खेलत बृन्दाबन बहुत जतन करि मोहि उढायो ॥
सुमरत भजत बसत उर अन्तर इहि मिस कर लालन समुझायो।
प्रीति की रीति चतुर सोई जानै 'परमानंद' प्रभु यों बोहोरायो ॥

[४११] राग सारंग

यह हरि के उर को गज मोती।
चन्द्रावली कहाँ तै पायो दूरि करत दिनमनि की जोती ॥
ढीठ भई पहिरै तन डोलति बूझै ते कहा कहा उत्तर देहै।
भूलि भवन जिन जाहु नंद कै निरखि छिडाइ जसोदा लैहै ॥
अजहू तौ नृप कंस जीवतु है मै दधि कै पलटै है पायो।
जौ न पत्याहू तो सपथ दे बुझहू 'परमानंद' ता दिन संग आयो ॥

[४१२] राग सारंग

सोहत नव कुंजन छवि भारी।
अद्भुत रूप तमाल सों लिपटी, कनक वेलि सुकमारी॥
बदन सरोज डहडहे लोचन निरखत छवि सुखकारी।
'परमानन्द' प्रभु मत्त मधुप हैं वृषभांन सुता फुलवारी॥

[४१३] राग कान्हरो

मानिनी ऐतो मान न कीजे।
ये जोवन अंजलि की जल ज्यों जब गुपाल मांगे तब दीजै॥
दिन दिन घटे रैनहिं सुंदरि, जैसे कला चन्द की छीजै।
पूरब पुन्न, सुकृत फल तेरो, क्यों न रूप नैन भरि पीजे॥
चरन कमल की सपथि करत हो ऐसो जीवन दिन दस जीजै।
'परमानंद' स्वामी सों मिलकें अपनो जनम सफल करि लीजै॥

[४१४] राग धनाश्री

कहा करौं मेरी माई नंद लड़ैते मेरो मन चोरयो।
स्याम सरीर कमल दल लोचन चितवत चले कछू मुख मोरयौ॥
हौं अपने आंगन ठाडी ही तब ही हरि निकसि ह्वै आए[१]।
नैक दृष्टि दीनी उन ऊपर कर मुख मूंदि चले मुसिकाए॥
तबतै मोहि घर की सुधि भूली जब तै मेरे नैननि लाई।
'परमानन्द' काम करत बरजै कबहि मिलै कब देखौं जाई॥

१— तब इतै हरि निकसि ह्वै आए।

[४१५] राग आसावरी

सखी हौं अटकी इहि ठौर री।
देखि कमल मुख स्याम सुन्दर को नैनाँउ भए भौंर री॥
मोहि गृह ब्यौहार करत नहिं आवै स्रवन सुनै कलगीत री।
अपनी ओर वेध हौं लीनी सुबल सुदामा मीत री॥
अरी मैं लोकवेद कौ मारग छांड़्यौ मातपिता की लाज री।
सबै अंग सुध गई 'परमानन्द' भए राम के राज री॥

[४१६] राग आसावरी

कमल दल नैना।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु मांधौ बैना॥
कहा करौं घर गयौ न भावै चलनि बलनि गति थाकी।
स्याम सुंदर रहमि दासी कीनी लखि न परै गति ताकी॥
कछु उपदेस सहचरी मोसौं कहाँ जाऊँ कहाँ पाऊँ।
'परमानन्द दास' को ठाकुर जहाँ लै नैन मिलाऊँ॥

[४१७] राग आसावरी

कैसे छूटे वेद सगाई।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अबतौ यह बनि आई॥
मोहन मदन मनोहर मूरति सकल काम सुखदाई।
देखत रूप अनूप स्याम कौ नैननि परै जुड़ाई॥
लोक वेद की लाज तजी मैं जिन कोई बरजौ माई।
'परमानन्द' स्वामी पै जैहौं मिलिहौं ढोल बजाई॥

[४२४] राग धनाश्री

सखीरी उजिलु हौं मुख हेरं ।
को मेरो सगो न हौं काहू की कहति सवनि सौं टेरं ॥
जहँ मन गयो सोई भलौ करिहैं कहा भयो कहे तेरे ।
'परमानंद' हिलग की बातें निवरत नाहि निवेरं ॥

[४२५] राग धनाश्री

री माधौ के पाँयन परिहौं ॥
स्याम सनेही जब मेटौंगी तन न्गौछावर करिहौं ॥
लोक बेद की कानि न करि हौं नहि काहू ते डरिहौं ।
नंद नंदन को निज चेरी ह्वं पिय कौ पान्यौ भरिहौं ॥
कमल नैन कौं नैननि राखौ तब सरबस आगे धरिहौं ।
'परमानंद स्वामी' सौं मिलिकं अपने नेम न टरिहौं ॥

[४२६] राग धनाश्री

कब की तू दह्यौ धरे सिर डोलति ।
झूठे ही इत उत फिरि आवति इहाई आइकं बोलति ॥
मुँह लौं भरी मटुकिया तेरी तोहि रटति भई साँझ ।
गोरस कौ लेवा जानति हौ याही बाखर माँझ ॥
आगे आऊ बात इक बूझौं कहति बिलगु जिनि मानै ।
तेरे घर मे तू ही सयानी और बेचि नहिं जानै ॥
ता दिन ते नीके जानति हौं जापै चित चुरवायौ ।
आँचर खोलि दै हरजा[१] को जन 'परमानंद' गायौ ॥

१—देइ राजा को ।

[४२७] राग गौरी

फिर फिर कहा हेरति री माई ।
को प्रीतम पाछें आवत है मानउँ नंद कुमार कन्हाई ।।
गोरस बेचन चली री मधुपुरी पाँय परत नहीं आगे ।
ऐसी ठगोरी मेली री कौनें मन तरसत ताहि लागें ।।
देखत रूप चिहुटि चित लाग्यौ ताहो के हाथ बिकानो ।
'परमानन्द' प्रीति है ऐसी कहा रंक कहा रानो ।।

[४२८] राग गौरी-कानरो

नैननि को टकुउकु तेरो ।
न्याइ गोपाल लाल बस कीनो मोहन रूप जगत केरो ।।
बेही[1] काज नंदजू के आंगन बारंबार करत है फेरो ।
जानी बात बदन पहिचान्यो औरहि भाँति प्रेम घेरो ।।
उरहन के मिस भई लगनिया चंचल चित कीनो है चेरो ।
'परमानंद प्रभु' रस अटकी बाँध्यो है सखी मदन बेरो ।।

[४२६] राग कान्हरो

दोऊ नैननि मे तैं लायो टकुऊकु ।
बार बार द्वार में झाँकत[2] मदन गोपाल की मूरति कौतुक ।
जौलौं हरि को रूप न देखति हिरदै तलप नीके लागति ।
परोस बास हमारो तेरो ग्वालिनि चरन कमल अनुरागति ।।
तू नागरी और सब मूरख अपनो सहज सुभाव जनावति ।।
'परमानंद स्वामी' रस अटकी गीधी दिन प्रति आवति ।।

१—बिनाही (अर्थ)

२—देखत

[४२४] राग धनाश्री

सखीरी उजिलु हौ मुख हेरैं ।
को मेरो सगो न हौ काहू को कहति सबनि सौं टेरैं ॥
जहँ मन गयो सोई भली करिहैं कहा भयो कहे तेरे ।
'परमानंद' हिलग की बातें निवरत नाहि निबेरैं ॥

[४२५] राग धनाश्री

री माधौ के पॉयन परिहौं ॥
स्याम सनेही जब मेटौंगी तन न्यौछावर करिहौं ॥
लोक बेद की कानि न करि हौं नहि काहू ते डरिहौं ।
नंद नंदन की निज चेरी ह्वै पिय कौ पान्यौ भरिहौं ॥
कमल नैन कौं नैननि राखौ तब सरबस आगे धरिहौं ।
'परमानंद स्वामी' सौं मिलिकै अपने नेम न टरिहौं ॥

[४२६] राग धनाश्री

कब की तू दह्यौ धरे सिर डोलति ।
झूठे ही इत उत फिरि आवति इहांई आइकै बोलति ॥
मुँह लौ भरी मटुकिया तेरी तोहि रटति भई साँझ ।
गोरस कौ लेवा जानति हौ याही बाखर माँझ ॥
आगे आऊ बात इक बूझौं कहति बिलगु जिनि मानै ।
तेरे घर मे तू ही सयानी और बेचि नहिं जानै ॥
ता दिन ते नीके जानति हौं जापै चित चुरवायौ ।
आँचर खोलि दै हरजा[1] को जन 'परमानंद' गायौ ॥

१—देइ राजा को ।

[४३३] राग सारंग

क्योंरी तू दिन आवति इहि ओर ।
गोचारन की बाट रोकि कैं बाढ़ि रही मन मोर ॥
कै तैं स्याम नयन भरि देखे पीताम्बर की छोर ।
कै तैं सुनी अचानक बन में वा मुरली की घोर ॥
कै तैं मोहन आप बस कीने कान्ह कुँवर चितचोर ।
'परमानंद प्रभु' मिल्यो चाहत हैं नागर नंद किसोर ॥

[४३४] राग सारंग

कहि री भट्ट तोहि कहाधौं भयो ।
उमगि रहति निस अरु बासर छूटि गाँठिते कहा धौं गयो ॥
कै तोहि मात पिता घर त्रासैं कै कोऊ कछु तोसों कह्यो ।
कै जसुदा के लाल लाडिले चितै चित चोरि लह्यो ॥
कै तें सुनी घोर मुरली की कै कछु पढ़ि बदयौ ।
'परमानंद' प्यारे मिलिबे धौं तरसत है मेरो हियो ॥

[४३५] राग सारंग

बिकल भई फिरत राधे जू काऊ की लई ।
काके बिरह बदन अकुलानों तन की आब गई ॥
को प्रीतम ऐसो जिय भावै जिनि यह दसा दई ।
मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हई ॥
कहा करौं इक स्याम ढिटोना तासौं प्रीति नई ।
'परमानंद' कोऊ आन मिलावै हरि आनंद मई ॥

[४३०] राग कान्हरो

सुनि री सखी तेरो दोस नही मेरो पीउ रसिया ।
जो देखत सो भूलि रहत है कौन कौन के मन बसिया ॥
सो को जो न करो बस अपने जा तन पै हँसिकै चितैया ।
'परमानंद प्रभु' कुँवर लाडिलो अवहि कछू भीजत मसिया ॥[१]

[४३१] राग सारंग

चितवो छाँड़ि दै नैक राधा ।
कै मिलि रसिक नंदनंदन सौं करति काम मन बाधा ॥
कै बैठी रहि भवन आपने मे, काहे कौं बन आवै ।
मृगनयनी हरि कौ मन मोहे जब खरिक दुहावै ॥
कबहुँ हाथ तै गिरत दोहनी बिसरि जात है नोई ।
कबऊ व्रषभ गोवत घन सुंदर को जानै कहा होई ॥
तेरे नैन बिसाल काम सर आगै आगै धावै ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन उर लागे सचुपावै ॥+

[४३२] राग सारंग

तेरो कान्हा सो मन लाग्यो ।
कहति फिरति दामोदर माधौ लोक वेद अरू भाग्यो ॥
हम किन भई घोखकी गुवालिन एक गाँव मिलि बसतीं ।
गाढ़े आलिंगन लैलै मिलती रास केलि मिलि हँसती ॥
सुनि री सखी भाग कहा बरनों बार बार बलि जाऊँ ।
'परमानंद स्वामी' मोहन कौ निकसत है मुख नाऊँ ॥

१—मसि भीजना—मूछों की रेख उगना ।
+ प्रस्तुत पद में चित्रोपम वर्णन एव कृष्ण की राधा के प्रति आसक्ति दृष्टव्य है—
सपादक

[४३३] राग सारंग

क्योंरी तू दिन आवति इहि ओर ।
गोचारन की बाट रोकि कै बाढ़ि रही मन मोर ।।
कै तैं स्याम नयन भरि देखे पीताम्बर की छोर ।
कै तैं सुनी अचानक बन में वा मुरली की घोर ।।
कै तैं मोहन आप बस कीने कान्ह कुँवर चितचोर ।
'परमानंद प्रभु' मिल्यो चाहत हैं नागर नंद किसोर ।।

[४३४] राग सारंग

कहि री भटू तोहि कहाधौं भयो ।
उमगि रहति निस अरु बासर छूटि गाँठिते कहा धौं गयो ।।
कै तोहि मात पिता घर त्रासै कै कोऊ कछु तोसों कह्यो ।
कै जसुदा के लाल लाडिले चितै चित चोरि लह्यो ।।
कै तैं सुनी घोर मुरली की कै कछु पढ़ि बदयौ ।
'परमानंद' प्यारे मिलिबे धौं तरसत है मेरो हियो ।।

[४३५] राग सारंग

बिकल भई फिरत राधे जू काऊ की लई ।
काके बिरह बदन अकुलानों तन की आव गई ।।
को प्रीतम ऐसो जिय भावै जिनि यह दसा दई ।
मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हई ।।
कहा करौं इक स्याम ढिटोना तासौं प्रीति नई ।
'परमानंद' कोऊ आन मिलावै हरि आनंद मई ।।

[४३६] राग सारंग

मैं तू कै बिरियां समुझाई ।
उठि उठि उझकि उझकि चंचल टेव न जाई ॥
छिनु छिनु पलु पलु रह्यो न परै तब सहचरि ओट लगाई ।
कमल नयन कौं फिरि फिरि देखै लोक की लाज मिटाई ॥
को प्रति उत्तर देइ सखी कौं गिरिधर बुद्धि चुराई ।
मदन मोहन राधा रस लीला कछु 'परमानंद' गाई ॥

[४३७] राग सारंग

अभिसार

सुनि राधा इक बात भली ।
तू जिन डरै रैनि अंधियारी मेरे पाछे आउ चली ॥
तहाँ लै जाऊँ मदन मोहन पै मैं देखी इक बंक गली ।
सघन निकुंज कुसुमनि रचि भूतल आछी विटप तली[1] ॥
हरि की कृपा कौ मोहि भरोसो प्रेम चतुर चित करत अली ।
'परमानंद स्वामी' को मिलिकै मित्र उदै जैसे कंवल कली ॥

[४३८] राग सारंग

लाल नेक देखिये भवन हमारो ।
दुतिया[2] पाट सिंहासन बैठे अविचल राज तिहारो ॥
सास हमारी खरिक सिधारी पिय बन गयो सवारो ।
आस पास घर कोऊ[3] नाहीं यह इकन्त है न्यारो ॥
औटचौ[4] दूध सद्य धौरी कौ लेहु स्यामघन पीजै[5] ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कछु कह्यो हमारो कीजै[6] ।※

१—थली ।
२—शीतल सुखद
३—सबे बसत हैं
४—आछो सद्य जमाई
५—इतनिक अचबहु वारी
६—की जीवनि यह रति केलि तुम्हारी
※ ये पद द्वितीया पाठ के हैं—संपादक

[४३९] राग सारंग

लाल नेकु भवन हमारे आवो ।
जो माँगो सों देहौं मोहन लै मुरली कल गावो ।
मंगलचार करौ गृह मेरे संग के सखा बुलावो ।
करो विनोद सुन्दर जुवतिन सों प्रेम पियूष पिवावो ।।
बलि बलि जाऊँ मुखारविंद को ललित त्रिभंग दिखावो ।
'परमानंद' सहचरि रस भरि लै चली करत उपावो ।।

[४४०] राग सारंग

राधे तेरे भवन हौ आऊँ ।
सादर कहत साँवरो मोहन नेंक दूध जो पाऊँ ।
मात पिता यह बिलगु न मानें और इहि भेद न जाने ।
जो तू सौंह करे बावा की तो मेरे मन माने ।।
सब दिन खेलों मेरे आँगन अपने नैन सिराऊं ।
'परमानंद प्रभु' विनती कीनी अपने मित्र बुलाऊं[१] ।।

[४४१] राग सारंग

कुंचित अधर पीत रज मंडित, जनु भँवरनि की पाँति ।
कमल कोस मेंते ढिग बैठे पाण्डुर बरन सुजाति ।।
चंद्रक चारु मुकुट सिर सोभा बीच बीच मनि गुंजा ।
गोपी मोहन अभिमत मूरति, प्रगट प्रेम के पुंजा ।।
कंट कंठमनि स्याम मनोहर पीताम्बर बन माल ।
'परमानन्द' स्रवन मनि मंगल कूजत बेनु रसाल ।।*

१—निरखत रहौं चद मुख सीतल प्रेम मुदित सुख पाऊ।
*प्रस्तुत पद रूप माधुरी एव रूपासक्ति के सुंदर उदाहरण हैं । सम्पादक

[४३६] राग सारंग

मैं तू कै बिरियाँ समुझाई।
उठि उठि उझकि उझकि चंचल टेव न जाई ।।
छिनु छिनु पलु पलु रह्यो न परै तब सहचरि ओट लगाई।
कमल नयन कौं फिरि फिरि देखै लोक की लाज मिटाई ।।
को प्रति उत्तर देइ सखी कौं गिरिधर बुद्धि चुराई।
मदन मोहन राधा रस लीला कछु 'परमानंद' गाई ।।

[४३७] राग सारंग

अभिसार

सुनि राधा इक बात भली।
तू जिन डरै रैनि अंधियारी मेरे पाछे आउ चली ।।
तहाँ लै जाऊँ मदन मोहन पै मैं देखी इक बंक गली।
सघन निकुंज कुसुमनि रचि भूतल आछी विटप तली[1] ।।
हरि की कृपा कौ मोहि भरोसो प्रेम चतुर चित करत अली।
'परमानंद स्वामी' को मिलिकै मित्र उदै जैसे कंवल कली ।।

[४३८] राग सारंग

लाल नेक देखिये भवन हमारो।
दुतिया[2] पाट सिहासन बैठे अविचल राज तिहारो ।।
सास हमारी खरिक सिधारी पिय बन गयो सवारो।
आस पास घर कोऊ[3] नाही यह इकन्त है न्यारो ।।
औटचौ[4] दूध सद्य धौरी कौ लेहु स्यामघन पीजै[5]।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कछु कह्यो हमारो कीजै[6] ।※

१—थली।
२—शीतल सुखद
३—सबे बसत हैं
४—आछो सद्य जमाई
५—इतनिक अचबहु बारी
६—की जीवनि यह रति केलि तुम्हारी
※ ये पद द्वितीया पाट के हैं—संपादक

[४३९] राग सारंग

लाल नेकु भवन हमारे आवो ।
जो माँगो सो देहौं मोहन लै मुरली कल गावो ।
मंगलचार करौं गृह मेरे संग के सखा बुलावो ।
करो विनोद सुन्दर जुवतिन सों प्रेम पियूष पिवावो ॥
बलि बलि जाऊँ मुखारविंद की ललित त्रिभंग दिखावो ।
'परमानंद' सहचरि रस भरि लै चली करत उपावो ॥

[४४०] राग सारंग

राधे तेरे भवन हौं आऊँ ।
सादर कहत साँवरो मोहन नेंक दूध जो पाऊँ ।
मात पिता यह बिलगु न मानें और इहि भेद न जाने ।
जो तू सौंह करे बाबा की तो मेरे मन माने ॥
सब दिन खेलो मेरे आँगन अपने नैन सिराऊं ।
'परमानंद प्रभु' बिनती कीनी अपने मित्र बुलाऊं[१] ॥

[४४१] राग सारंग

कुंचित अधर पीत रज मंडित, जनु भँवरनि की पाँति ।
कमल कोस मेते ढिग बैठे पाण्डुर बरन सुजाति ॥
चंद्रक चारु मुकुट सिर सोभा बीच बीच मनि गुंजा ।
गोपी मोहन अभिमत मूरति, प्रगट प्रेम के पुंजा ॥
कंट कंठमनि स्याम मनोहर पीताम्बर बन माल ।
'परमानन्द' स्रवन मनि मंगल कूजत वेनु रसाल ॥*

१—निरखत रहौं चद मुख सीतल प्रेम मुदित सुख पाऊं।

*प्रस्तुत पद रूप माधुरी एव रूपाशक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं। सम्पादक

[४४२] राग सारंग

श्रौंचकहि हरि श्राइ गये ।
हौं दरपन लै मांग संभारत चार्यौ ह्वै नैना एक भये ॥
नेक चितै मुसकाये हरि जू मेरे प्रान जुराइ लये ।
श्रब तौ भई है चोंप मिलन की बिसरे देह सिंगार ठये ॥
तब तें कछु न सुहाय बिकल मन ठगी नंद सुत स्याम नये ।
'परमानंद प्रभु' सों रति बाढ़ी, गिरिधर लाल श्रानंदमये ॥*

[४४३] राग सारंग-बिलावल

श्ररी गुपाल सों मेरौ मन मान्यों, कहा करैगौ कोउ री ।
हौं[1] तौ चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ री ॥
माइ रिसाई, बाप घर मारै, हंसे बटाऊ लोग री ।
श्रब तौ जिय ऐसी बनि श्राई बिधनाँ रच्यो संजोग री ॥
बरू ये लोक जाइ किन मेरो श्ररु परलोक नसाइ री ।
नंद नंदन हौं तऊ न छांड़ों मिलोंगी निसान बजाइ री ॥
बहुरयो यह तन धरि कहां पैहौं बल्लभ भेष मुरारि री ।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर सरबसु देहों बारि री ॥

[४४४] राग धनाश्री

भावै मोहि मोहन बेनु बजावन ।
मदनगुपाल देखि हौं रीझी, मोहन की मटकावन ॥
कुंडल लोल कपोल मधुरतम लोचन चारु चलावन ।
कुंतल कुटिल मनोहर श्रानन मीठे बेनु बजावन ॥
स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर कर श्रंग नचावन ।
'परमानंद' ठगी नन्द नंदन दसन कुंद मुसकावन ॥

---

* प्रस्तुत पद रूपमाधुरी एवं रूपासक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं ।

१. श्रब

[४४५] राग धनाश्री

जब नंद लाल नैन भरि देखै ।
एक टक रही संभार न तनक की मोहन मूरति पेखै ॥
स्याम बरन पीताम्बर काछे अरु चन्दन की खोर ।
कटि किंकनी कल सब्द मनोहर सकल त्रियन चितचोर ॥
कुंडल झलक परत गंडनि पर आय अचानक निकसौ भोर ।
स्रीमुख कमल मंद मृदु मुसकनि लेत कर्षि मन नंदकिसोर ॥
मुक्तमाल राजत उर ऊपर चितए सखी जबै इहि ओर ।
'परमानंद' निरखि अंग सोभा ब्रज बनिता डारति तृनतोर ॥

[४४६] राग धनाश्री

जबते प्रीति स्याम सो कीनी ।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नेंकहुँ नींद न लीनी ॥
सदा रहति चित चाक चढ्यौ सो और न कछू सुहाय ।
मन में करत उपाय मिलन कौ इहै बिचारत जाय ॥
'परमानंद प्रभु' पीर प्रेम की काहू सो नहिं कहिऐ ।
जैसे व्यथा मूक बालक की अपने तन मन सहिऐ ॥

[४४७] राग सारंग

चारु कपोलनि की झलक ।
हरि कौ मुख कमल पेखै लागति नहीं पलक ॥
कुमकुम कौ तिलक बन्यो कुटिल निबड़ अलक ।
मोर मुकुट चंद्रिका सीस पै मनसिज की ढलक ॥
स्याम सुन्दर देखन को आवत जिय ललक ।
'परमानंद स्वामी' गोपाल नैनन के सलक ॥

[४४८] राग सारंग

मदन गोपाल देखिरी माई ।
द्विभुज त्रिभंगी स्याम मनोहर सुन्दर निधि जुवतिन सुखदाई ।।
माथे बने मोर के चंदवा रुचिर चित्र बन छात बनाई ।
गुंजाहार माल बैजंती पीताम्बर छवि वरनि न जाई ।।
अरुन अधरकृत मधुर मुरलिका तैसीऐ चंदन तिलक निकाई ।
मनो दुतिया दिन उदित अर्ध ससि निकसि जलद में देत दिखाई ।।
अद्भुत मनि कुंडल कपोल मुख अदभुत उठत परस्पर झांई ।।
मानौं विधु मीन बिहार करत दोऊ जल तरंग मे चलिचलि आई ।।
तैसे अनूपम नैन लाल के चितवनि लेत चुराई ।
सोभा और कहाँ लौं बरनौ 'परमानंददास' मुख गाई ।।

[४४९] राग सारग

सुन्दरता गोपालहिं सोहै ।
कहत न बने नैन मन आनन्द जा देखत रति नायक मोहै ।।
सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर, सुन्दर गुंजाफल अवतंस ।
सुन्दर बनमाला उर मंडित सुन्दर गिरा मनो कल हंस ।।
सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर सुन्दर सब अंग स्याम सरीर ।
सुन्दर बदन अबलोकनि सुन्दर सुन्दर ते बलवीर ।।
बेद पुरान निरूपत बहुविधि ब्रह्म नराकृति रूप निवास ।
बलि बलि जाऊँ मनोहर मूरति हृदय बसो परमानंददास ।।

[४५०] राग सारंग

बन्दसि बनी कमल दल लोचन ।
चितवनि चारु चतुर चिन्तामनि बिन गुन चाप मदन सर मोचन ।
कटि पीताम्बर लाल उपरना माथे पाग मनोहर कुण्डल ।
मुक्ता कण्ठ हाथ मे बीरा पांय पावँरी गति ब्रज मण्डल ।।
नन्दकिसोर कूल कालिंदी संग गोपाल सभा मँह मन्डन ।
'परमानन्ददास' बलिहारी जो जगदीस कंसकुल खंडन ।

[४५१] राग सारंग

बदन की बलि बलि जाउँ बोलत मधुर रस ।
बचन वचन प्रति सकल भुवन बस ॥
चंद निचोय रचे अंबुज दल नाँउ धरयो कमल नैन ।
यह अवलोकनि सुरनर मोहै केसि रिपु जरयौ जिवायो मैंन ।
अंग अंग प्रति मदन कोटि दुति जहाँ परति तहँ तहँ रहति ।
'परमानंद' चपलता तजि मनु स्वस्थ भयो व्रजनाथ निहारत ॥

[४५२] राग सारंग

कान्ह कमल दल नैन तिहारे ।
अरू विसाल बंक अवलोकनि हठि मनु हरत हमारे ॥
तिन पर बनी कुटिल अलकावलि मानहुँ मधुप हुंकारे ।
अतिसै रसिक रसाल रसभरे चित तें टरत न टारे ॥
मदन कोटि रवि कोटि कोटि ससि ते तुम ऊपर वारे ।
'परमानंददास' की जीवनि गिरधर नंद दुलारे ॥

[४५३] राग सारंग

जो रस रसिक कीर मुनि[१] गायो ।
सो रस रटत रहत निस बासर सेष सहस मुख पार न पायो ॥
गावत सिव सारद मुनि नारद कमलकोस[२] नैकों न चखायो ।
जद्यपि रमा रहत चरनन तर निगमनि अगम अगाध बतायो ॥
तरनि तनया तट बंसीबट निकट बृन्दावन बीथिन बहायो ।
सो रस रसिक दास 'परमानंद' व्रखभानु सुता उरमाँझ समायो ॥

१—कीर मुनि=शुक

२—कमलकोस—ब्रह्मा

[४५४] राग सारंग

आनन्द सिंधु वढ्यो हरि तन मे ।
श्री राधा पूरन ससि निरखति उमगि चल्यो ब्रज वृन्दावन मे ॥
उतरो क्यौ जमुना इत गोपिन कछुयक फैलि परचो त्रिभुवन मे ।
नहि परस्यो करमठ और ग्यानिनु अटकि रह्यो रसिकन के मन मे ॥
मंद मंद अवगाहत बुधि वल भगति हेत प्रगटे छिनु छिनु में ।
कछुक लहत नंद सुवन कृपाते सो दिखियत 'परमानंद' जन मे ॥

[४५५] राग आसावरी

सुनि मेरो वचन छबीली राधा ।
तै पायौ रस सिंधु अगाधा ॥
जो रस निगम नेति नित भाख्यो ।
ताको तै अधरामृत चाख्यो ॥
सिव बिरंचि जाके ध्यान न आवै ।
ताकौ कुंजनि कुसुम बिनावै ॥
तू बृखभान गोप की बेटी ।
मोहन लाल भावते भेंटी ।
तेरो भाग्य मोहि कहत न आवै ।
कछुयक रस 'परमानंद' गावै ॥

[४५६] राग गौरी

रसिक सिरोमनि नंदनंदन ।
रसमय रूप अनूप बिराजित गोपबधू उरू सीतल चंदन ।
नैननि मे रस चितवनि में रस बातनि मे रस ठगत मनुज पसु ।
गावनि मे रस मिलवनि में रस बेनु मधुर रस प्रगट पावन जसु ॥
जिहि रस मत्त फिरत मुनि मधुकर सो रस संचित ब्रज ब्रन्दाबन ।
स्याम धाम रस रसिक उपासित प्रेम प्रवाह सु 'परमानंद' मन ॥

[४५७] राग गौरी

नंद नंदन जिय भावते तेरे चंचल डोल।
इंदु बदन भ्रू नासिका सुभ चारु कपोल॥
भाल तिलक अलकावलि स्त्रुति कुंडल लोल।
अधर मधुर मुसकावनी मृदु मीठे बोल॥
अंग बास रस संग ह्वै रहैं मधुपनि के टोल।
'परमानंद प्रभु' लै मिली नव उरज अमोल॥

[४५८] राग गौरी

जा दिन तें सुन्दर बदन निहार्यौ।
ता दिन तें मधुकर मनसो मैं बहुत करी निकस्यौ न निकार्यौ॥
लोकलाज कुलकांनि जानि जिय दुसह बिलोकि मिटो करि छांड्यौ।
मात तात पतियात भुवन मे सबहिन कौ कहिबौ सिर धार्यौ॥
होनी होइ सु होउ कर्म बस सजनी जिय को सोच निवार्यौ।
दासी भई 'दास परमानंद' भलो पोच अपनो न विचार्यौ॥

[४५९] राग गौरी

बेधी हौं पदअंबुज मूल।
रह्यौ न परे स्याम सुंदर बिन नैन मुख देखे इन मूल॥
लरिका बृन्द संग करि लीने खेलत हैं यमुना के कूल।
बलिहारी मन मोहन मूरति नाहिन जनाइ कोउ समतूल॥
मारग चलत अचानक मखौरो लागो कुसुम बान को ऊल।
तनमय भई ठगौरी लागी उपजो उर मदन की सूल॥
बिसर्यो गृह ब्यौहार प्रेम मुख निरखत भयो चित लूल।
'परमानंद' हर्यौ मन कोसौं लोचन चारु कमल के फूल॥

[४६०] राग कान्हरो

नयना सदा स्याम संग माते ।
नयनन रस बरखत उर अन्तर तातें अधिकाते ॥
देख देख थाकी सुघराई वहु नायक जो लुभाने ।
'परमानंद दास' को ठाकुर स्रीमुख तें जो बखाने ॥

[४६१] राग सारंग

मोल लई इन नैनन की सैन ।
स्रवन सुनत सब सुधि वुधि बिसरी लुब्धी मोहन बैन ॥
कमल नयन खिरक सो एक जो बात कही हँस ऐन ।
'परमानंद' प्रभु' नंद दुलारे मेरी गाय कहीं दुहि देन ॥

[४६२] राग सारंग

मेरो माई माधौ सों मन लाग्यौ ।
अपनो तन और या ढोटा को एकमेक करिसान्यौ ॥
लोक बेद[१] कुल कान त्यजी मैं न्योति आपने आन्यौ ।
एक नंद नंदन[२] के कारन बैर सबन सों ठान्यौ ॥
अब क्यों मिन्न[३] होय मेरी सजनी मिल्यौ[४] दूध अस पान्यौ ।
'परमानंद दास' कों ठाकुर पहिले[५] ही पहिचान्यौ ॥

—की कान तजी
—गोविंद
—भिन्न
—जस
—मिलि गिरधर पहचान्यौ

[४६३] राग सारंग

मैं अपनो मन हरि सों जोर्यो ।
हरि सों जोरि सबनि सो तोरचो ॥
नाच नच्यो तब घूंघट कैसो लोक लाज डर पटकि पछोर्यो ।
आगे पाछें सोच मिटचो जिय बाट मांझ मटुका लै फोर्यो ॥
कहनो होय सो कहो सखीरी कहा भयो काहू मुख मोर्यो ।
नवल लाल गिरिधरन पिया संग प्रेम रंग यह मे तन बोर्यो ॥
'परमानंद प्रभु' लोग हँसन दै लोक बेद तिनुका सो तोर्यो ।

[४६४] राग धनाश्री

मेरो मन बावरो भयो ।
लरिका एक इहाँ हुतो ठाड़ो ताही के संग गयो ॥
जानों नहीं कौन को ढोटा चित्र विचित्र ठयो ।
पीताम्बर छबि निरख हर्यौ मन पढ़ि कछु मोहि दयो ॥
ग्वालिनी एक पाहुनी आई ताकी यह गति कीनी ।
'परमानंद प्रभु' हँसत सैन दे प्रेम पानि गहि लीनी ॥

[४६५] राग सारंग

मेरो मन कान्ह हर्यौ ।
गयो जो संग नंद नंदन के वहाँ ते नहीं टर्यौ ॥
कहा कहूं जो बगद न[1] आयो स्याम समुद्र पर्यौ ।
अति गम्भीर बुद्धि को आलय प्रेम पीयूष भर्यौ ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भवन काज बिसर्यौ ।
'परमानंद' भलें ठाँ अटक्यो यह सब रह्यो धर्यौ ॥

१—लौट न आना

[४६०] राग कान्हरो

नयना सदा स्याम संग माते ।
नयनन रस बरखत उर अन्तर तातें अधिकाते ॥
देख देख थाकी सुघराई बहु नायक जो लुभाने ।
'परमानंद दास' को ठाकुर स्रीमुख तें जो बखाने ॥

[४६१] राग सारंग

मोल लई इन नैनन की सैन ।
स्रवन सुनत सब सुधि बुधि बिसरी लुब्धी मोहन बैन ॥
कमल नयन खिरक सों एक जो बात कही हँस ऐन ।
'परमानंद' प्रभु' नंद दुलारे मेरी गाय कहीं दुहि देन ॥

[४६२] राग सारंग

मेरो माई माधौ सों मन लाग्यौ ।
अपनो तन और या ढोटा को एकमेक करिसान्यौ ॥
लोक बेद[१] कुल कान त्यजी मैं न्योति आपने आन्यौ ।
एक नंद नंदन[२] के कारन बैर सबन सों ठान्यौ ॥
अब क्यों मिन्न[३] होय मेरी सजनी मिल्यौ[४] दूध अस पान्यौ ।
'परमानंद दास' कों ठाकुर पहिले[५] ही पहिचान्यौ ॥

१—की कान तजी
२—गोविंद
३—भिन्न
४—जस
५—मिलि गिरधर पहचान्यौ

[४६३] राग सारंग

मैं अपनो मन हरि सों जोर्यो ।
हरि सों जोरि सबनि सो तोरचो ॥
नाच नच्यो तब घूंघट कैसो लोक लाज डर पटकि पछोर्यो ।
आगे पाछें सोच मिटचो जिय बाट मांझ मटुका लै फोर्यो ॥
कहनो होय सो कहो सखीरी कहा भयो काहू मुख मोर्यो ।
नवल लाल गिरिधरन पिया संग प्रेम रंग यह मे तन बोर्यो ॥
'परमानंद प्रभु' लोग हँसन दै लोक वेद तिनुका सो तोर्यो ।

[४६४] राग धनाश्री

मेरो मन बाबरो भयो ।
लरिका एक इहां हुतो ठाड़ो ताही के संग गयो ॥
जानों नहीं कौन को ढोटा चित्र विचित्र ठयो ।
पीताम्बर छबि निरख हर्यो मन पढ़ि कछु मोहि दयो ॥
ग्वालिनी एक पाहुनी आई ताको यह गति कीनी ।
'परमानंद प्रभु' हँसत सैन दे प्रेम पानि गहि लीनी ॥

[४६५] राग सारंग

मेरो मन कान्ह हर्यौ ।
गयो जो संग नंद नंदन के वहाँ ते नहीं टर्यौ ॥
कहा कहूं जो बगद न[1] आयो स्याम सुमुद्र पर्यौ ।
अति गम्भीर बुद्धि को आलय प्रेम पीयूष भर्यौ ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भवन काज बिसर्यौ ।
'परमानंद' भलें ठाँ अटक्यो यह सब रह्यो धर्यौ ॥

१—लौट न आना

[४६६] राग सारंग

मेरो मन हर्यो दुहुँ ओर।
सुन्दर बदन मुकुट की सोभा स्रवनन मुरली घोर ॥
तब हौं भाजि भवन ते निकसी हरि आये इहि ओर।
मृदु मुसिकाय वंक अवलोकनि सर्बसु लीनो चोर ॥
हौं बहुतै समुझाय रही ये कछु बस नाहिन मोर।
रहो उपचार 'दास परमानंद' बिन नागर नंदकिसोर ॥

[४६७] राग सारंग

जा दिन ते आँगन खेलत देखौ स्री जसोदा कौ पूत री।
तब तें गृह सूँ नातो टूट्यो जैसे काचौ सूतरी ॥
अति बिसाल बारिज लोचन पट राजत काजर रेखरी।
रच्छा दै मकरंद लेत मनों अलि गोलक के वेष री ॥
राजत द्वै द्वै दूध की दतियाँ जगमग जगमग होत री।
मनो महातम मन्दिर मे परी रतनन की जोत री ॥
स्रवनन उत्कंठा रहत सदाई जब बोलत बोल तुतराय री।
मानों कुमुदिनी कामना पूजी पूरन चन्द्रहिं पाय री ॥
'परमानन्द' देख सुन्दरतन आनन्द उर नि समाय री।
चले प्रवाह नयन मारगह्वै कापै रोक्यो जायरी ॥

[४६८] राग सारंग

मेरो मन गोविन्द सों मान्यौ ताते और न जिय भावै।
जागत सोवत यह उत्कंठा कोऊ ब्रजनाथ मिलावै ॥
बाढी प्रीति आन उर अन्तर चरन कमल चित दीनो।
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी घर ही मे वन कीनो ॥
छांड़ि अहार विहार सुख यह और न चाहत काऊ।
'परमानंद' बसत हैं घर में जैसे रहत बटाऊ ॥

[४६९] राग सारंग

मन हरि लै गये नन्द कुमार ।
बारक दिष्टि परी चरनन तन देख न पायो वदन सुचार ।।
हौं अपने घर सुच सों बैठी पोवत ही मोतिन कौ हार ।
कांकर डारि द्वारह्वै निकसे बिसर गयो तन करत सिंगार ।।
कहा री करौं क्यों मिलहै गिरधर किहि मिस हौं जसोदा घर जाऊँ ।
'परमानंद' प्रभु ठगोरी अचानक मदन गोपाल भावतो नाऊँ ।।

[४७०] राग सारंग

मैं तो प्रीति स्याम सो कीनी ।
कोउ निंदों कोउ बंदो अब तो यह घर दीनी ।।
जो पतिब्रत तो या ठोटा सौं इन्हैं समर्प्यो देह ।
जो व्यभिचार तो नंदनंदन सों बाढ्यो अधिक सनेह ।।
जो ब्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग ।
'परमानंद' लाल गिरिधर कौ पायौ मोटो संग ।।

[४७१] राग सारंग

करन दे लोगन कों उपहास ।
मन क्रम वचन नंद नंदन कौ निमिष न छाँडौ पास ।।
सब कुटुम्ब के लोग चिकनिया मेरे जाने घास ।
अब तों जिय ऐसी बनि आई क्यो मानो खल त्रास ।।
अब क्यो रह्यौ परे सुन सजनी एक गाँव कौ बास ।
ये बातें नीकी जानत है जन 'परमानंद दास' ।।

[४७२]

हौं नंद लाल विना न रहू ।
मनसा बाचा कर्मना हित की तोसो कहूँ ।
जो कछु कहौ सोई सिर ऊपर सो हौं सबै सहूँ।
सदा समीप रहूँ गिरिधर के सुन्दर बदन चहूँ ।।
यह तन अरपन हरि कौं कीनो वह सुख कहाँ लहूँ ।
'परमानंद' मदन मोहन के चरन सरोज गहूँ ।।

[४७३]

सखीरी लोभी मेरे नैन ।
बिन देखे चटपटी लागत देखत उपजे चैन ।।
मोर मुकुट काँछे पीताम्बर सुन्दरता के ऐन[१] ।
अंग अंग छवि कही न परत हैं निरखि थकित भयो मैन ।।
मुरली ऐसी लागत स्रवनन चितवन खग मृग धेन ।
'परमानंद' प्रेमी के ठाकुर वे देखो ठाड़े एन ।।

[४७४]

हौं लोभी लटकन लाल की ।
मुरि मुसिकानि आन उर अंतर निकसत नहीं खरसान की ।।
बाँकी पाग राग मुख सारंग मधुर लपट लट माल की ।
सखा सुबल के अंस बाहु दिये, बलि गई दैन उगाल की ।।
चंपक दाम बोजु उरं चमकत गंध सुमन गुलाब की ।
चंचल दिष्टि समर की सोभा हूलनि कमल कर माल की ।।
उन मेरो सरबस चोर्यो सजनी अरु लई चाल मराल की ।
अब यह देह दूसरो न छूहै 'परमानंद' गोपाल की ।।

१—अयन = घर

मथुरागमन प्रसंग

[४७५]

कहति हौं बात डरात डरात।
हौं[1] मथुरा में सुनि आई तुम्हारी कथा बलभ्रात॥
धनुष जग्य को ठाठ कियो है चहौं दिसि रोपे मांच।
रंग भूमि नीकी कै खेली मल्ल सकेले पाँच॥
काल्हि दूत आवन चाहत है राम कृष्न को लैन।
नन्दादिक सब ग्वाल बुलाये अपनो वार्षिक[2] लैन॥
हँसि ब्रजनाथ कहो तू साँची तेरी कहो अब मानौं।
'परमानंद स्वामी' आयौ काल कंस कौ भानौं॥

[४७६]

राग सारंग

अरी तू अब मथुरा ते आई।
कहि धौं समाचार उहां के पूछत कुंवर कन्हाई॥
कहा धौं बात चलत है नागरि नृपति कंस के आगे।
काको भरोसो करत भूपति बैरु करत किहि मांगे॥
सुनहु कृष्न तुम्हरी सपथ करौं सब कोऊ यह गावै।
बल समेत नंद के नंदन मधुपुरी देखन आवैं॥
बातें कहत प्रेम रस बाढ़ो नैन रहे अरुझाई।
'परमानंददास' वह नागरि घरहि कौन विधि जाई॥

१—जो

२—कर (अर्थ)

[४७७] राग सारंग

गोपाल जू को सब कोऊ करत दुहाई ।
गोरस बेचन गई बाबा की सौं हौं मथुरा सुनि आई ॥
विद्यमान नृप कंस नगर मे राज तेज नहिं देख्यौ ।
जब तै बैरु कियो माधौं सों जीवत मृतक करि लेख्यौ ॥
करत प्रसंसा प्रजा लोक सब कंस अवग्या मानै ।
ठकुराई हलधर केसौ की जन 'परमानंद' जानै ॥

[४७८] राग सारंग

अपने हाथ कंस मैं मारो ।
हँसि गोपाल कहत ग्वालन सौं रंग भूमि मे डारचौ ॥
अहो बलराम अहो स्रीदामा आज रात कौ सपनो ।
हम तुम सबनि गये मधुपुरी मिल्यौ जाति कुल अपनो ॥
प्रातकाल भयौ अब तो आज संध्या पठयो दूत ।
'परमानंद प्रभु' भावी भाखी भयो चलन को सूत ॥

[४७९] राग सारग

गोकुल बैठे कान्ह मथुरा लैन कहै ।
सुनि रे राजा कंस तेरी बहुत सहै ॥
बासुदेव को नंदन बल्लभ छत्रो जाति कहावै ।
मानुष देह धरे कमलापति गोधन बृन्द चरावै ॥
समाचार सब नारद भाखे सावधान रिपु कीनो ।
सोवत सिंह जगायो पापी सन्तन को दुख दीनो ॥
बैठि मते अक्रूर पठायो राम कृष्ण कों लैन ।
'परमानंद स्वामी' आवँहगे कंसह पूजा दैन ॥

[४८०] राग सारंग

तैं यह बालक सुत करि पाल्यो ।
यह हम सुनी नाम कान्हर धार्यो धाइ जसोदा उर धरि लाल्यो ॥
राजा कंस सुहथ लिखि पठई गुपत ही नंद गोप कों पाती ।
यह न बूझिये पैनी कोनी राखी प्रगट सान धरि काती ॥
याकौ प्रति उत्तर लिखि पठवहु को यह आहि कहाँ तैं आयो ।
याको फल पावहिगो आगैं मरम 'दास परमानंद' गायो ॥

[४८१] राग कल्याण

ब्रज जन देखे ही जीयत ।
मेरे नैंन चकोर सुधाकर हरि मुख दिष्टि पीयत ॥
तुम अक्रूर चले लै मधुवन हरि मेरे प्रान अधार ।
राम कृष्न गोकुल के लोचन सुन्दर नंद कुमार ॥
इतनो करो पाइ लागति हौं वेगि घोष लै आवहु ।
'परमानंद स्वामी' हैं लरिका पांय लागि समुझावहुँ ॥

[४८२] राग सारंग

सुनियत ब्रज मे ऐसी चालि ।
माधौ राम संग काहू कैं मधुवन चलन कहत हैं कालि ।
सब मिलि गईं जसोदा के घर, कौन तुम्हारे पाहुनो आयो ।
कहा है नामु पुत्र है काकौ कौने हित करि घोख पठायो ॥
घर घर घोन मथन सबहिन के भली वात देखी नहीं माई ।
'परमानंद प्रभु' बिछुरन लागे विधिना विधि कछु और बनाई ॥

[४८३] राग सारंग

गोपालै मधुवन जिन लै जाऊ ।
मोहि प्रतीति कंस की नाहीं सोम बंम को राउ ॥
तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन मतिधीर ।
बैठत सभा सकल राजन की जानत हौ परपीर ॥
बहिन देवकी बसुदेव सुजन उनको दीनो त्रास ।
बालक हते निगड़ से राखे काराग्रह में वास ॥
कहत जसोदा सुनु सुफलक सुत हरि मेरे प्रान अधार ।
'परमानंददास' की जीवनि छाड़ि जाऊ इहिबार ॥

[४८४] राग सारंग

विधिना विधि करी विपरीत ।
स्याम मनोहर बिछुरन लागे बालदसा के मीत ॥
लै अक्रूर चले मधुबन कौं सब ब्रज भयो भयभीत ।
साँचे भये तबहि हम जाने गरग जु गाये गीत ॥
चूक परी सेवन नहि पाये चरन सरोज पुनीत ।
'परमानंद' अब कबहि मिलेंगे सुबल स्रीदामा मीत ॥

[४८५] राग सारंग

कैसे माई जान गोपालहि देहौं ।
कमल नयन मांनिक पर हम दांव कौन पै लैहौं ॥
कपटी कंस दूत पै कपटी कपटो सब परिवार ।
कपटी होंई राज के मंत्री कपट बन्यौ व्यौहार ॥
धनुष जग्य कौ काज[१] रच्यौ कछु मन में औरे बात ।
तदपि बैर अधिक करि मान्यौ सुनी पूतना खात ॥
'परमानंद स्वामी' की लीला कहा जसोदा जानै ।
ज्यों ज्यों पुरुषारथ दिखरावत बहुरि पुत्र करि मानै ॥

१ — व्याज

[४८६] राग सारंग

अब कैसे पावत हैं आवन ।
सुन्दरता सब गुन की पूरित ब्रज तजि चले मधुपुरी छावन ॥
कमल नयन मुख इन्दु मनोहर नर नारिन मन प्रीति बढ़ावन ।
नन्दकिसोर बाल लीला धरि बेनु नाद सीखे है गावन ॥
कंस तुषार त्रास तन दुर्बल नलिन देबकी दुख निवारन ।
जदुकुल कमल दिवाकर प्रमुदित तिमिर हरन प्रभु त्रिभुवन तारन ॥
रे अक्रूर क्रूर सुफलक सुत तोहि न बूझिये दूतहि घावन ।
'परमानंद स्वामी' मिलिवे कौ लागी है गोपी विधिहि मनावन ॥

[४८७] राग सारंग

गोविंद तुम जु चलत कौन राखै ।
ऐसे वचन कौन कहि जानै वचन अमीरस भाखै ॥
जो हौं कहा जाऊ जिन मथुरा नौ बड़ ढिठाई लागै ।
जो रथ गहौं अमंगल सूचक लोक लाज कुल भागे ॥
बिछुरत प्रान रहें कैसे मोहन सोचत ही तन छीजै ।
'परमानंद प्रभु' रसिक सिरोमनि परै विचार सो कीजै ॥

[४८८] राग सारंग

आजु की घरी बिलमि रहौ माधौ चलन कहत हो कालहि जाऊ ।
कहे पराये कत लागत हौ यह ब्रज अपनो नीको ठांऊ ॥
जो तुम त्याग करो गोकुल कौ तौ हौं काकै पेट समाऊं ।
'परमानन्द प्रभु' प्रान जीवन धन नैन ओट होत मरिजाऊँ ॥

[४८९]　　　　राग सारंग

वह तौ कठिन नगर की बात ।
देखि अवास लोग लोभ जिन उपजै तुम गोकुल ते पहिलै जात ॥
सबै गुवालिन मिलि सिखवन लागी सुनियत पोच कंस कौ राज ।
पठ्यो दूत कपट मनसा करि नातर घोख कहा है काज ॥
दधि रोचन को तिलक कियो सिर रूपा सहित सुपारी पाँच ।
'परमानन्द स्वामी' चिरजीवहु तुम जिन लागहु तातो आँच ॥

[४९०]　　　　राग सारंग

देखो माई कान्ह बटाऊ से रहे जात ।
तब की प्रीति अब की रूखाई फिर पाछे बूझत नहीं बात ॥
रथ आरूढ़ भये बल कंसो वे देखो विमल धुजा फहरात ।
दोऊ बीर चले अति आतुर कहाँ बसहिंगे आजु की रात ॥
मधुवन आज महामंगल रस सब कोऊ गावत हैं गीत ।
'परमानन्द'प्रभु' चले हैं दिखावन अपने चरन पुनीत ॥

मथुरा प्रवेश

[४९१]　　　　राग सारंग

संग तिहारे अब लैहुँगी रजधानी ।
कंस मारि लूटि रंग भू में आगे चलेगी कहानी ॥
करिहौं सत्य गिरा नारद की अहो अकास जु भई है बानी ।
कहत वात अक्रूर के आगे 'परमानन्द प्रभु' सबै सुखदानी ॥

[४६२] राग सारंग

आए आए सुनियत बाग मे एलान भयो ।
तब लगि मदन गोपाल देखन को जासूस गयो ॥
कान लागि कै कही मतै की हौं बसुदेव पठायो ।
नंद गोप तुम भलीए कीनी लै गोपाल हि आयो ॥
काली दमन पूतना सोषन यहै भरोसो आवै ।
मथुरा राज नंदनंदन को 'जन परमानन्द' गावै ॥

[४६३] राग सारंग

निंदक मारिये त्रास न कीजै ।
नाहिन दोष सुनहु नंदनंदन आपुन मधुपुरी लीजै ॥
यहै धर्म नित प्रति स्नुति गावै संतन कौं सुख दीजै ।
दानव सेन समुद्र बढ्यो है सो अगस्त ज्यो पीजै ॥
कहत ग्वाल सब हरि के आगै जदुकुल आनन्द छीजै ।
'परमानन्द स्वामी' सुख सागर सो करि आनन्द जीजै ॥

[४६४]

मथुरा देखिये नंदनंदन ।
भले अवास रचे कंचन के कैसौ कंस निकन्दन ॥
बैठे मोर झरोखा बोलत मारग सिंचित चन्दन ।
भले लोक सनमुख आवत है चरन कमल रज बंदन ॥
कहत स्रीदामा सुनहु स्याम घन मारि लेउ यह पाटन ।
'परमानंद स्वामी' को ठाकुर बहुतै दैत्यन को डाटन ॥

[४६५] राग बिलावल

ये बसुदेव के दोऊ ढोटा ।
गौर स्याम तन नील पीत पट फल हंसन के जोटा ॥
कुन्डल एक वाम स्रुति जाके सो रोहिनी को अंस ।
उर बनमाल देवकीनंदन जाहि डरत है कंस ॥
लै राखे ब्रज सखा नंद ग्रह बालक त्रास दुराई ।
द्वै समान विराट के से लोचन उदित भये हैं आई ॥
काली दमन पूतना सोषन लीला गुननि अगाध ।
'परमानंद प्रभु' प्रगट मर्दन खल अभय करन सुरसाध ॥

[४६६] राग बिलावल

आये आये हो दूर है नंद ढोटा ।
देखत मधुपुरी के सब तरुन बिरध अरु छोटा ॥
गौर स्याम तन नील पीत पट बनी दुहौ की जोटा ।
सुफलक सुत बालक कत ल्यायौ कंस असुर बड़ बोटा ॥
गहे केस कर धाइ माई पर सीस धरनि पर लोटा ।
'परमानंद' बलि जाइ वै भुजन कों हत्यौ कंसकुल मोटा ॥

[४६७] राग सारंग

मुकंदं देखि देखि जावति ।
सुन्दर रूप नैन भरि पीवति ॥
रे अक्रूर क्रूर बटमारे ।
प्रान काढ़ि लै चल्यौ हमारे ॥
बिरहाकुल भूली ब्रजनारी ।
बारपै[1] चित्र लिखि ज्यों सारी ॥
छाँड़ि लाज रथ पकर्‌यो धाई ।
चरन कमलन जियो रहौ कन्हाई ॥
प्रान गये तन केतिक आसा ।
कठिन प्रीति 'परमानंद दासा' ॥

१—द्वारपै

[४६८] राग सारंग

देखो माई गोविंद अपने रस को।
बल विद्या कैसेहू नहि पैये केवल एक भगत के बस को ॥
गुवालिन के संग गाय चरावत अनुदिन परचो दूध को चसको।
छीर समुद्र में बसत निरन्तर संग विचार करत वा जस को ॥
'परमानंद प्रभु' त्रिभुवन ठाकुर कैसे होत कंस के गस को।
मारे मल्ल असुर सब जीते जदपि कान्ह बरस है दस को ॥

[४६६] राग सारंग

आवे निरंकुस मातौ हाथी।
देखि नयन भरि कुँवर सांवरो संकरसन को साथी ॥
कहत नागरी सब मथुरा की कंस पगार ढहायौं।
सब काहू को भलो करेगो जो गोकुल तें आयो ॥
तोरचौ धनुष कुवलया मारचौ चारयों मल्ल पछारे।
'परमानंददास' बलिहारी मंगल किये हमारे ॥

[५००] राग सारंग

आयो मथुरा मध्य हठीलो।
देखउ माई मोहन मूरति, कंस हृदय को कीलो ॥
कुंजर दन्त कंध धर लीने रुधिर बिन्दु लपटाने।
सोभा भई स्याम सुन्दर तन मोरचंद सिर बाने ॥
गावउ नाचहु करहु कुलाहल घर घर मंगलचार।
'परमानंददास' को जीवनि नायक नंदकुमार ॥

[५०१] राग सारंग

देखो गोपाल कौ तमासो ।
अब केतो नीको विधि उनपै जाते वरजै वासौ ।।
मारे दुष्ट पंथ सब राखे सुवस कियौ अब देव निवासौ ।
'परमानन्ददास' बलिहारी आस कियौ है रासौ ।।

[५०२] राग सारंग

काहे कौं मारग में अध छेड़त ।
नंदराइ कौ मातो हाथी आवत असुर लपेटत ।।
कहत गुवाल सब सखा नंद के गल गरजत भुज ठोकत ।
कंस बंस को परिचित करि है कौन भरोसे रोकत ।।
नाहिन सुनी ? पूतना मारी तृनावर्त बध केसी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ये गोपाल पेरेसी ।।[१]

[५०३] राग सारंग

सुनियत मल्ल माधौ आए ।
चरन पखारि बैठारि सिंघासन विविध भाँति माला पहिराए ।
तोरयो धनुष असुर सब मारे बालक आनँद मोद बढ़ाए ।
मांगि लियौ कुबजा को चन्दन, बाँको[२] कूबर बाँह लगाए ।।
फिरि आए डेरा पै पुन पुन बाबा नंद तहाँ ही पाए ।
पाऊँ धारि[३] कै भोजन कीनो 'परमानन्ददास' गुन गाए ।।

१—पारसा (फारसी प्रयोग) अथवा परेश
साधु चरित—अर्थ
२—वाको
३—पाइँ धोइ कं

[५०४] राग गौरी

लाग्यौ प्रीति कौ मोहिला हो ।
देखन रूप नगर सब लागौ प्रीति कौ मोहिला हो ।।
जब ते सुने नन्दनन्दन कों लै गए अक्रूर ।
मथुरा ढोल दमामे बाजे कंस करेंगे चूर ।। प्रीति को०
नरनारी सब कौतुक आए ठाड़े देहिं असीस ।
'परमानन्द प्रभु' राज तिहारो इहाँ हीं रहो जगदीस ।। प्रीति को०

[५०५] राग सारंग

महावत मत करही हाथी हातो ।
जिमि रावन पड़हिगो पापी दै छाती पर लातो ।।
दन्त ऊपार मारि या गज कौं अबहि करौं भू पातो ।
तबहि पाऊँ धरौं आगे यह मारि कुबलिया मातो ।।
रंग भूमि में ग्रीवा कंस की अबहीं मैं तोरौं ।
बन्दि बास बसुदेव देवकी तिनके बन्धन छोरौं ।।
उग्रसैन सिर छत्र धरौं अरु मथुरा जादवराज ।
'परमानन्द प्रभु' कहत सदा ही मोहि भगतन सों काज ।।

[५०६] राग सारंग

काहे तै मदन गोपाल बिसारयौ[१] ।
कीन्हों बैर स्याम सुन्दर सो भोज बंस सब खोयौ ।।
माधौ तब मानुष करि जान्यौ परब्रह्म अवतारी ।
बीरसैन माइ कहत रुदन करि दास नृपति की नारी ।।
ऐसे जानि बहुरि जिनि कोऊ नन्दलाल सौं खोरै ।
'परमानन्द' कंस अभिमानो कितौ कि भीत पर दौरै ।।

१—बिगारयौ

[५०७] राग सारंग

मथुरानाथ सों बिगारी ।
रंग भूमि महँ पर्‌यौ भयानक क्यो पति रहै तुम्हारी ॥
तब काहे चेत्यौ नहिं पापी जबहिं पूतना मारी ।
मूरख अधम करम सब तेरे बालक सिष्टी पछारी ॥
बिलखि मही दोऊ कर मीडे कहै कंस की नारी ।
'परमानंददास' को ठाकुर गिरि गोवर्धन धारी ॥

[५०८] राग सारंग

माधौ सों कत तोरिये ।
कीजै प्रीत स्याम सुन्दर सों बैठे सिंह न रोरिये ॥
बहन देवकी पाँय लागिये वसुदेवै बंदि छिड़ाइये ।
'परमानंद' गोकुल को ठाकुर नंद गोप पहराइये ॥

[५०९] राग सारंग

केसी तृनावर्त जिन मार्‌यो ।
काली कौ बल नाथ्यो ॥
एक हाथ गोवर्धन गिरि पर ।
इहाँ आए पर साध्यौ ॥
सुनहो कंस हमारी बातें ।
मथुरा सचु जो चाहै ॥
'परमानन्द' स्वामी सो हिल ।
मिलि निज नातो निरबाहै ॥

[५१०] राग सारंग

गरब काहू की सहि न सके ।
रावन हिरनकसिपु की इहि गति भई काहेको कंस बके ॥
आंख देखि, कहा साखि बूझिये बलि इहि कहा कियो ।
जो विष देन गई ही गोकुल पूतना प्रान पियो ॥
सूधो करै ताही कौं नीको चरन सरोज गहै ।
'परमानन्द प्रभु' सब विधि समरथ वेद पुरान कहे ॥

[५११] राग सारंग

जीत्यौ री जीत्यौ नन्दनन्दन व्योम दमामे बाजे ।
बरषत कुसुम देवगन गावत रितु बरषा ज्यों गाजे ॥
नाचत ग्वाल बजावत मुरली रंग भूमि में राजे ।
मल्ल पछारि कंस सिर तोर्‌यो नौतन भूषन साजे ॥
तबहू हम आनंद में रहते मदन गोपाल निवाजे ।
'परमानंद प्रभु' गोधन चारत डोलत कानन भाजे ॥

[५१२] राग सारंग

अपने जन कौ राज दियौ ।
उग्रसैन बैठारि सिंहासन आपु जुहार कियौ ।
रंग भूमि में मल्ल पछारे कंस बाहु बल मार्‌यौ ।
हत्यो रजक लीने नानापट, पूरब बैर सम्हार्‌यौ ।
कांपे हियौ कौन करे ऐसी किहि इहि औसर आवै ।
ठाकुर करे दास की सेवा सुख दै काज करावै ॥
यामें कहा घटै स्रीपति को जानि गरीब निवाजे ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर जस तिहुँ लोक बिराजे ॥

[५१३]

नीको मथुरा नगरु ।
जोतिवंत[1] सदा संतन हित स्याम सगरु ॥
जनम मरन मुनि व्रत दायक मुक्ति अगरु ।
कोऊ कैसे रहौ करि नाही वगरु ॥
उत्तम मद्धिम अधम भेद नहि एकहि डगरु ।
'परमानंद स्वामी' महातम अधिक लगरु ॥

—— —

१—गतिवंत

नंद का गोकुल प्रत्यागमन

[५१४] राग मल्हार

रथ चढ़ि आवत गिरिधर लाल ।
रतन खचित अरु मुकुताहल लागे नव पदमन की माल ॥
वर दुलरी सिरमौर चंद्रिका कुंडल गंड बिसाल ।
बसन पीत परिधान मनोहर विमल गुंज वनमाल ॥
सोभित सुभग चारु लोचन मृग मोहत मन्मथ साल ।
झलकत ललित कपोल लोल पर स्रमजल बूंद रसाल ॥
अमर नारि अवलोकि रूप छवि देखि डिगे दिगपाल ।
तन मन धन बारत 'परमानंद' बिबस भईं ब्रजबाल ॥

[५१५]

जसोदा रथ देखन कों आई ।
देखो री मेरो लाल गिरेगो कहा करो मेरी माई ॥
मेरो ढोटा पालने सोवै उधरक उधरक रोवै ।
अघासुर, बकासुर मारे नैन निरंतर जोवै ॥
देहरी उलंघन गिर्‌यो री मोहन सोई घात मैं जानी ।
'परमानंद' होत तहाँ ठाड़े कहत नंदजू की रानी ॥

गोपिन के विरह के पद

[५१६] राग सारंग

कौन वेर भई चलेरी गोपालै ।
हौं ननसार गई ही न्योतै वारवार बूझत ब्रजवालै ॥
तेरे तन कौ रूप कहाँ गयो भामिन अरु मुख कमल सुकाइ रह्यौ ।
तवसौं भाग गयौ हरि के संग हृदै सुकोमल बिरह दह्यौ ॥
को बोलै को नैन उघारै को प्रति उत्तर देइ विकल मन ।
जो सरवस अक्रूर चुरायो 'परमानंद स्वामी' जीवनधन ॥

[५१७] राग सारंग

चलत न देखन पाए लाल ।
नीके करि न बिलोक्यौ हरि मुख इतनोई रह्यौ जिय साल ॥
लोचन मूँदि रहे जल पूरित दिष्टि भई कलिकाल ।
दूर भए रथ ऊपर देखे मोहन मदन गोपाल ॥
मींडत हाथ बिसूरत सुन्दरि आतुर बिरह बिहाल ।
'परमानंद स्वामी' पुनि चितवों[१] अंबुज नैन बिसाल ॥

[५१८] राग सारंग

चलत न कान्ह[२] कह्यौ रहनो ।
बिन ब्रजनाथ भई हम सब लागीं दुख सहनो ॥
गोकुल के ससि कान्ह बिना चाह्यो मन गहनो ।
लै अक्रूर चले गोविन्द कों मधुपुरी कौ लहनो ॥
माई बिरहा प्रचुर भयो अब लाग्यो देह दहनो ।
'परमानंददास' को ठाकुर संग समुझि लोचन जल बहनो ॥

१—चितयो
२—काहू

[५१९] राग सारंग

जिय की साध जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखन न पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥
एक दिन हों जु सखी इहि मारग बेचन जात दहीरी।
प्रीति कें लये दान मिस मोहन मेरी बाँह गहीरी ॥
बिनु देखें पल जात कलप भरि बिरहा अनल दहीरी।
'परमानंद स्वामी' दरसन बिन नैनन नदी बही री ॥

[५२०] राग सारंग

तहाँ ही अटक जहाँ प्रीति नहीं री।
वह रस गयो जु बाल दसा को अब गोपाल मति और भई री।
कौन दोष दीजै ब्रजनाथहिं सोइ परम्परा निबहीरी।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपी ताप तई री ॥

[५२१] राग सारंग

केते दिन भये रैनि सुख सोये।
कछु न सुहाई गोपालहि बिछुरे रहे पूंजी सी खोयें।
जबतें गए नंदलाल मधुपुरी चीर न काहू धोये।
मुख तंबोर नैन नहि काजर बिरह सरीर बिगोये ॥
ढूंढत बाट घाट बन परबत जहँ जहँ हरि खेल्यौ।
'परमानन्द प्रभु' अपनो पीताम्बर मेरे सीस पर मेल्यौ ॥

[५२२] राग सारंग

दिन दिन तोरन लागै नातो ।
मथुरा बसत गोपाल पियारो प्रेम कियो हठिहातो ।।
इतनी दूर जु आवत नाहिन मन औरे ठाँ रातो ।
मदन गोपाल हमारो ब्रज की चालत नाहिन वातो ।।
विरह विथा अब जारन लागी चंद भयौ अब तातो ।
'परमानन्द स्वामी' के विछुरे भूलि गई अब सातो ।।

[५२३] राग सारंग

माधौ काहे कौं दिखाई काम की कला ।
तुम सौं जोरि सबनि सौं तोरी नंद के लला ।।
जो गोपाल मधुबन ही बसते गोकुल बास न करते ।
जो हरि गोप भेष नहिं धरते कत मेरो मन हरते ।।
तुम्हरो रूप तजि और न भावै चरन कमल चित बाँध्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' द्रौन बान ज्यौ बहुरि न दूजो साँध्यौ ।।

[५२४] राग सारंग

कान्ह मनोहर मीठे बोलै ।
मोहन मूरति कब देखूँगी सरसिज चंचल डोलै ।।
स्याम सुभग तन चर्चित चंदन पहिरैं पीत निचोलै ।
हीरा लाल कंठ मनि माला नंद लये बहु मोलै ।।
वेनु बजावत गावत आवत उर कपाट प्रभु खोलै ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर बाल सखा सब बोलै ।।

राग सारंग

[५२५]

कमल नयन बिन और न भावै रुदन करि के नैन गँवावै ।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट बिलख बदन ठाढ़ी, जोबत बट ॥
तुमरे परस बिन ब्रथा जात है मेरे उरज के कंचन घट ।
नंदगोप सुत कबहि मिलहुगे जबहि हौंहिगो सीस सुबल लट ॥
दुर्बल भई देह छाड़े सुख और बात विसरी मलिन भये पट ।
'परमानंद प्रभु' सबहि बिसरि गयो हमरो तुमरो खेल जमुना तट ॥

[५२६]

माधौं तें प्रीति भई नयी ।
कितनी दूर यह मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ॥
कागद मसि खूटि गई पठयो न सन्देस ।
हरिनी ज्यौं जोवत मग ऊरध लेत ऊसास ।
यह दसा देखि जाहु 'परमानन्ददास' ॥

[५२७]

पथिक इहि पंथ न कोऊ आवै ।
गोकुल देख दहिनो बाँयो हमहि देखि दुखियावै ।
कासौं कुसल संदेसौं पाऊँ को प्रीतम मन भावै ॥
मथुरा निकट करी सत जोजन को हरि बात सुनावै ।
व्रजबनिता बिरहानल व्यापित को तन तपिन बुझावै ।
विधि प्रतिकूल 'दास परमानंद' कोउ न ताप नसावै ॥

[५२८] राग सारंग

गोविन्द बीच दै सर मारी ।
उर तन कुटी विरह दावानल फूँकि फूँकि सब जारी ॥
सोच सोच तन छीन भयो अति कैसी देह बिगारी ।
जो पहले विधि हरि के कारन अपने हाथ सँवारी ॥
बरू गोपी घर जन्म न लेती रहत गरभ मे डारी ।
'परमानंद' विरहनी हरि की सोचत अरु पछताई ॥

[५२९] राग सारंग

मेरौ मन गोविंद सौ मान्यौ तातै और न जिय भावै हो ।
जागत सोवत यहै उत्कंठा कोउ ब्रजनाथ मिलावै हो ॥
बाढ़ी प्रीति आनि उर अतर चरन कमल चित दीनौं ।
कृष्न बिरह गोकुल की गोपी घर ही मे बन कीनौं ॥
छाँड़ि अहार देह सुख और न चाहे काऊ ।
'परमानंद' बसत हैं घर में जैसे रहत बटाऊ ॥

[५३०] राग सारंग

माई ! को इहि गाय चरावै ।
दामोदर बिन अपनु संघातिन, कौन सिंगार करावै ॥
सब कोई पूजै दीप मालिका, हम कहा पूजै माई ।
राम गोपाल मधुपुरी गमने धाय धाय ब्रज खाई ॥
दाम दोहिनो माट मथानी गाय बाछि[१] को पूजें ।
काके मिलें चलें ये गोकुल कौन बेनु कल कूजें ॥
करत प्रलाप सकल गोपीजन, मन मुकुंद हरि लीनों ।
'परमानंद प्रभु' इतनो दूर बसि मिलन दोहिलौ कीनों ॥

१—पास (पाठभेद)

[५३१] राग केदारा

रात[1] पपीहा बोल्यौ री माई ।
नींद गई, चिंता चित बाढ़ी, सुरति स्याम की आई ॥
सामन मास देखि बरखा रितु हों उठि आँगन धाई ।
गरजत गगन दाँमिनी दमकत तामें जीउ उड़ाई ॥
राग मलार कियौ जब काहू मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिन बिकल 'दास परमानंद' धरनि परी मुरझाई ॥

[५३२] राग सारंग

मोहन वो क्यो प्रीति बिसारी ।
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी ॥
एक दिवस खेलत बन भीतर बैनो हाथ सम्हारी ।
बीनत फूल गयो चुभि काँटौ ऐसी सही बिथा री ॥
हम पै कठिन हृदै अब कीन्हों लाल गुबरधन धारी ।
'परमानन्द' बलवीर बिना हम मरत बिरह की मारी ॥

[५३३] राग गोरी

ब्रज की औरे रीत भई ।
प्रात समय अब नाहिन सुनीयत, घर घर चलत रई ।
ससि की किरन तरनि सम लागत, जागत निसा गई ।
उद्भट भूप मकर केतन की आग्या होत नई ॥
बृन्दाबन की भूमि भाँमती, ग्वालिन्ह छांड़ि दई ।
'परमानन्द स्वामी' के बिछुरै, बिधि कछु और ठई ॥

१—रैन (पाठभेद)

[५३४] राग सारंग

ता दिन सरवस देहुँगि वधाई ।
जा दिन दौरि कहै कोहु सजनी आए कुँवर कन्हाई ॥
मैं अपनो सौ बौहौत करत हो लाल न देत दिखाई ।
सोवत जागत दिन अवलोकत, सो मन कबहुँ न जाई ॥
मेरी उनकी प्रीति निरंतर बिछुरत पल न घटाई ।
'परमानंद' बिरहनी हरि की सोचत अरु पछिताई ॥

[५३५] राग कल्यान

हरि बिन बैरिन रैन वढ़ी ।
हम अपराधिन निठुर बिधाता काहे सँवारि गढ़ी ॥
तन धन जोवन बृथा जात है बिरहा अनल रढ़ी ।
नंद नंदन कौ रूप विचारत निस दिन होरि चढी ॥
जिहि गुपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढ़ी ।
'परमानंद स्वामी' न मिलै तो घर ते भली मढ़ी ॥

[५३६] राग सारंग

उधौ नाहिन परत कही ।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे बौहोतहि बिथा सही ॥
सुमरि सुरति वा स्याम को बिरहा अनल दही ।
निकसत प्रांन अटकि में राखे अब धौं जान रही ॥
'परमानन्द स्वामी' के विन अब नैनन नदी बही ।

[५३७] राग सारंग

माईरी चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहाँ वौ देस, कहाँ मन मोहन कहाँ सुख को रैन ॥
तारे गिनत गईरो सब निस नेंक न लागे नैन ।
'परमानन्द प्रभु' पिय बिछुरे ते पल न परत चित चैन ॥

[५३८] राग गौरी

बदरिया तू कित ब्रज पै दौरी ॥
असलन साल सलामन लागी बिधना लिख्यौ बिछौहरी ॥
रहो जु रही जाहु घर अपने दुख पावत है किसोरी ।
'परमानन्द प्रभु' सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी ॥

[५३९] राग सारंग

पतियाँ बाचेंहू न आवै ।
देखत अंक नैन जल पूरे गद्‌गद्‌ प्रेम जनावै ॥
नंदकिसोर सुहथ अच्छर लिखि ऊधौ हाथ पठाए ।
समाचार मधुबन गोकुल में मुख ही बाँचि सुनाए ॥
ऐसी दिसा देखि गोपिन की भगत मरम सब जान्यों ।
मन क्रम बचन प्रेम पद अंबुज 'परमानंद' मन मान्यो ॥

[५४०] राग सारंग

गोपाल बिन कैसे ब्रज रहिबौ ।
धूसर अंग उठाइ गोद ले लाल कोन सों कहिबौ ॥
जो मधुपुरी दिवस लागत है सोच सूल तन सहिबौ ।
'परमानंद स्वामी' को तजिकें सरन कोंन की गहिबौ ॥

[५४१] राग सारंग

कमल नयन बिन ग्रौर न भावै ग्रह निस रसना कान्ह कान्ह रट ।*
रोदन करिकै नैन गंवाये बिलख बदन ठाढ़ी जोवति बट ।।
तुमरे परस बिन बृथा जात है मेरे उरज धरे कंचन घट ।
नंद गोप सुत जबहि मिलहुगे तबहि होहिंगी सीस सकुल लट ।।
दुर्लभ देह छाड़े सबहि सुख बातें बिसरी मलिन भये पट ।
'परमानंद प्रभु' ग्रबहि बिसरि गयो हमरो तुम्हरो खेल जमुन तट ।।

[५४२] राग सारंग

कौन रसिक है इन बातन को ।
नंदनंदन बिनु कासौं कहिये सुनि री सखी मेरे दुखिया मन को ।
कहाँ वे जमुना पुलिन मनोहर कहाँ वह चंद सरद रातिन को ।
कहाँ वे मन्द सुगंध ग्रमल रस कह वे षट्पद जलजातन कौ ।।
कहाँ वे सेज पौढ़िबौ बन को फूल बिछौना मृदु पातन को ।
कह वे दरस परस 'परमानन्द' कोमल जन कोमल गातन को ।।

[५४३] राग सारंग

माई को मिलबै नंद किसोरै ।
एक बार को नैन दिखावे मेरे मन के चोरै ।।
जागत जाम गिनत नहीं खूंटत क्यों पाऊंगी भोरै ।
सुनरी सखी ग्रब कैसे जीजै सुन तमचुर खग रौरै ।।
जो यह प्रीति सत्य ग्रंतरगति जिन काहूऽब निहोरै ।
'परमानंद प्रभु' ग्रान मिलेंगे सखी सीस जिन फौरै ।।

---

* प्रस्तुत पद में विप्रलभ शृङ्गार दृष्टव्य है—सपादक

[५४४] राग सारंग

ता दिन काजर देहौं सखीरी ।
जा दिन नंदनंदन के नैना अपने नैना मिलै हौं सखीरी ॥
करो न तिलक तबसो न रतन बसन पलटि पहरै हौं सखीरी ।
करौं हरतार सिंगार सबन को कंगना माँझ न बघै हौं सखीरी ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भूले अनत चितै नहि देहौं सखीरी ।
'परमानंद प्रभु' यहै परेखो[१] अब बारहि बार लजैहौं सखीरी ॥

[५४५] राग सारंग

माधौ माई मधुवन छाये ।
कैसे रहें प्रान गोविन्द बिनु पावस के दिन आए ॥
हरित बरन बन सकल द्रुम पातें मारग बाढ़ी कीच ।
जल पूरति रथ को गम नाहीं बैरिन जमना बीच ॥
काके हाथ सँदेसों पठवउं कमल नैन के पास ।
आवत जात इहाँ कोउ नाहिन सुन 'परमानंददास' ॥

[५४६] राग सारंग

मधु माधौ नीकी रितु आई ।
खेलन जोग अबहि वृन्दावन कमल नैन हरि देख्यो माई ॥
मंद सुगध बहै मलयानल कोकिल कूजत गिरा सुहाई ।
मदन महोपति कोपि पठानौं दहो दिसि [जाकी] फिरि दुहाई ॥
पथिक बीर संदेस हमारे चरन कमल गहि कहियो जाई ।
'परमानन्द प्रभु' औध बदी ही नाथ ! कहाँ औसेर लगाई ॥

१—अँदेशा (अर्थ)

[५४७] राग सारंग

इतनो दूर मदन मोहन की कछु आवत नाहिन पाती ।
ज्यो ज्यो गहरु करत हैं मधुबन त्यों त्यो धधकत छाती ॥
गत बसन्त ग्रीषम रितु प्रगटी बनस्पति सब पातीं[१] ।
चातक मोर कोकिला कलरव ए बिरहिनि के छाती ॥
कहाँ जाहि कौन सों कहिए बोलि जगावहि राती ।
'परमानन्द प्रभु' चलत न जाने, तौ[२] संगहि उठ जाती ॥

[५४८] राग सारंग

कहियो अनाथ के नाथहि ।
स्याम मनोहर सब चाहति हैं बहुरि तुम्हारो साथहि ॥
बारबार बिरिहनि ब्रज बनिता सुमिरत हैं गुन गाथहि ।
मुरली अधर लोल कर पल्लव ध्यान करत ओई हाथहि ॥
लोचन सजल प्रेम बिरहातुर पुनि पुनि फोरति माथहि ।
'परमानंद' मिलन बहुरि कब दुखित निहारति पाथहि ॥

[५४९] राग सारंग

गोबिन्द गोकुल की सुधि कीबी ।
पहिलेहि नाते स्याम मनोहर इतनीक पाती दीबी ॥
गाम तुम्हारो देस तुम्हारो भूमि तुम्हारी देवा ।
चूक परी अपराध हमारे नाथ न कोनी सेवा ॥
चंदन भील पुलिंदी के घर ईंधन करि ताहि माने ।
'परमानंद प्रभु' जहां सो तहाँ, जो न महातम जाने ॥

१—गिर गई (अर्थ)
२—अन्यथा (अर्थ)

[५५०] राग सारंग

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात ।
तुम बिन कान्ह कमल दल लोचन जैसे दूल्हे बिन जात बरात ।।
वेई मोर कोकिला वेई वेई पपीहा बन बोलत ।
वेई ग्वाल गोपिका वेई वेई गोधन कानन डोलत ।।
यह सब संपति नंद गोप की तुम्हरे प्रसाद रमा के साथ ।
'परमानंद प्रभु' एक बार मिलि यह पतियां लिखि मेरे हाथ ।।

[५५१] राग गौरी

काहे को गुवालि सिंगार बनावै ।
सादिए बात गोपालहिं भावै ।।
एक प्रीति में सब गुन नीके ।
बिन गुन अभरन सबही फीके ।।
कनकहि नूपुर लेहि उतारी ।
पहिलें बसन पहिर ब्रज नारी ।।
हरि नागर सबही की जानैं ।
'परमानन्द प्रभु' हित की मानैं ।।

[५५२] राग सारंग

कहाँ वे तबके दिनन के चैन ।
जब गोपाल गोकुल में रहते सुंदर अम्बुज नैन ।
जद्यपि रास गोप गोपी कुल नव गोधन के ठाठ ।
ए ब्रज बेनु सकल संपति सुख ए जमुना के घाट ।।
ए कृष्ण बिनु सबही दीसतु है चन्द हीन जैसे राति ।
'परमानंद स्वामी' के बिछुरे गई देह कल काँति ।।

[५५३] राग सारंग

ब्रज के बिरही लोग बिचारे ।
बिन गोपाल ठगे से ठाड़े अति दुर्बल तन हारे ॥
मात जसोदा पंथ निहारत निरखत साँझ संवारे ।
जो कोउ कान्ह कान्ह कहि बोलत अँखियन बहत पनारे ॥
यह मथुरा काजर की रेखा जो निकसे सो कारे ।
'परमानंद स्वामी' बिनु ऐसे जैसे चंदा बिनु तारे ॥

[५५४] राग सारंग

सब गोकुल गोपाल उपासी ।
जो गाहक साधन के ऊधो सो सब बसत ईसपुर कासी ॥
जद्यपि हरि हम तजी अनाथ करि अब छाड़त क्यों रति की फासी ।
अपनी सीतलता तऊ न छाँडत जद्यपि विधु है राहु गरासी ॥
किहि अपराध जोग लिखि पठयौ प्रेम भजन ते करत उदासी ।
'परमानंद' ऐसी को बिरहन माँगे मुकुति बिनु गुन रासी ॥

[५५५] राग विहाग

प्रीति तौ काहूँ सौं नहिं कीजै ।*
बिछुरै कठिन परै मेरी आली कहौ कैसे करि जीजै ॥
एक निमिष या सुख के कारन युग समान दुख लीजै ।
'परमानंद प्रभु' जानि बूझकै कहो कि विषजल क्यों पीजै ॥

---

* परमानन्ददास जी का प्रेम विषयक विश्वास इन पदो में द्रष्टव्य है ।—सम्पादक

[५५६] राग मल्हार

लगन को नाम न लीजै सखी री।
लगन को मारग अति ही कठिन है पाँय धरै तन छीजै सखी री॥
जो तू लगन लगायो चाहै तन की आस न कीजै सखी री।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर बार बार तन दीजै सखी री॥

[५५७] राग सारंग

या हरि को संदेस न आयौ।
बरस मास दिन बीतन लागे बिनु दरसन दुख पायौ॥
घन गरज्यौ पावस रितु प्रगटी चातक पीउ सुनायौ।
मत्त मोर बन बोलन लागे बिरहिन बिरह जनायौ॥
राग मल्हार सह्यौ नहिं जाई काहू पंथी कहि गायौ।
'परमानंददास' कहा कीजै अब कृष्न मधुपुरी छायौ॥

[५५८] राग सारंग

व्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे॥
सदा अनमनी बिलख बदन अति यहि ढंग रहति खिलौना फूटे।
बिरह बिहाल सकल गोपीजन अभरन मनहुँ बटकुटन लूटे॥
जल प्रवाह लोचन तें बाढ़े बचन सनेह अभ्यन्तर घूटे।
'परमानंद' कहौं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे॥

[५५६] राग सारंग

बहुरि हरि आवहुगे किहि काम ।
रितु बसंत अरु मकर बितीते अरु बादर भये स्याम ॥
तारे गगन गनत री माई बीते चारचौ याम ।
और काज सबै बिसरि गये हरि लेत तुम्हारौ नाम ॥
छिनु आँगन छिनु द्वारे ठाढी हम सूखत है धाम ।
'परमानंद प्रभु' रूप बिचारत रहे अस्थि अरु चाम ॥

[५६०] राग धनाश्री

वह बात कमल दल नैन की ।
बार बार सुधि आवत सजनी, वह दुरि दैनी सेन की ॥
वह लीला वह रास सरद को गोरज मंडित आवनि ।
अरु वह ऊँचे टेर मनोहर मिष करि मोहि सुनावनि ॥
वे बातैं सालैं उर अन्तर, को पर पीर ही पावै ।
'परमानंद' कह्यौ न परै कछु हियो सो रुंध्यो आवै ॥*

[५६१] राग धनाश्री

सुधि करत कमल दल नैन की ।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर रति बृन्दाबन चैन की ॥
दै दै गाढ़े आलिंगन मिलनि कुंजलता द्रुम अयन की ।
वे बतियाँ कैसे कै बिसरति बाँह उसीसे सयन की ॥
बसि निकुंस मे रास खिलाए बिथा गँवाई मयन की ।
'परमानंद प्रभु' सो क्यो जीवें जो पोषी मृदुबैन की ॥

* प्रस्तुत पद में भगवल्लीला की ओर संकेत है ।

[५६२] राग धनाश्री

पिछौरा खासा को कटि बाँधे ।
वे देखो आवत नंदनंदन नयन कुसुम सर साँधे ।।
स्याम सुभग तन गोरज मंडित बांह सखा के काँधे ।
चलत मंदगति चाल मनोहर मानों नटवा गुन गाँथे ।।
यह पद कमल अब ही प्रापत भये बहुत दिनन आराधें ।
'परमानन्द स्वामी' के कारन सुरमुनि धरत समाधें ।।

[५६३] राग धनाश्री

कमल नैन मधुबन पढ़ि आए ।
निर्गुन को संदेस लादि गोपिन पै लाए ।।
ऊधौ पढ़ि पढ़ि अब भए ग्यानी ।
नीति अनीति सबै पहिचानी ।।
निर्गुन ध्यान तबहि तुम कहते ।
सबै समय व्रत दृढ़ करि गहते ।।
नैनन ते सरिता कत बहती ।
हरि बिछुरन को सूल न सहती ।।

[५६४] राग धनाश्री

हरि तेरी लीला की सुधि आवै ।*
कमल नैन मन मोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै ।।
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिक ज्यौं गावै ।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि संग हिलिमिलि उठि धावै ।।
कबहुंक नैन मूंदि उर अन्तर मनि माला पहिरावै ।
मृदु मुसुकानि बंक अवलोकनि चाल छबीली भावै ।।
एक बार जाहि मिलहि कृपा करि सो कैसें बिसरावै ।
'परमानन्द प्रभु' स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गंवावै ।।

---

* प्रस्तुत पद में विरह की परमानुभूति की अभिव्यक्ति है । इसी पद को श्रवण कर महाप्रभु आचार्य जी तीन दिन तक मूर्च्छित रहे थे ।—संपादक

[५६५] राग विभास

कैसे कीजै बेद कह्यौ ।*
हरिमुख निरखत बिधि निषेध कौ नाहिन ठौर रह्यौ ॥
दुख को मूल सनेह सखीरी सो उर पैठि रह्यौ ।
'परमानंद' प्रेम सागर मँह परयौ सो लीन भयौ ॥+

[५६६] राग बिहाग

माई बरसानों सुजस[1] बसो ।
राधा कान्ह कुंवर चिरजीवौ, न्हात ही जिन बार खसो ।
गोवर्धन गोकुल बृन्दावन नव निकुंज नित प्रति बिलसो ।
रास विलास रहसि कहि धायौ, आनंद हिये हुलसो ॥
अविचल राज करौ इह भूतल गोपीजन देत असीसो ।
'परमानन्ददास' बलिहारी जीवो कोटि बरीसो ॥

[५६७] राग आसावरी

चल री सखी नंद गाव जाइ बसिये ।
खिरक खेलत ब्रज चंद जू हसिये ॥
बंसी बटहु सबै सुख दाई ।
एक कठिन दुख दूर कन्हाई ॥
माखन चोरत दुरि दुरि देखो ।
जीवन जन्म सुफल करि लेखो ॥
जलचर लोचन छिनु छिनु प्यासा ।
कठिन प्रीति 'परमानन्ददासा' ॥

---

* पुष्टि मार्गीय भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत पद में द्रष्टव्य है ।—संपादक
+ पाठभेद—'परमानन्द प्रभु' केलि समुद्र में परयौ सुलै निवह्यौ ।
१—सुवस (पाठ भेद)

[५६२] राग धनाश्री

पिछौरा खासा को कटि बाँधे ।
वे देखो आवत नंदनंदन नयन कुसुम सर साँधे ॥
स्याम सुभग तन गोरज मंडित बांह सखा के काँधे ।
चलत मंदगति चाल मनोहर मानो नटवा गुन गाँधे ॥
यह पद कमल अब हौं प्रापत भये बहुत दिनन आराधे ।
'परमानन्द स्वामी' के कारन सुरमुनि धरत समाधे ॥

[५६३] राग धनाश्री

कमल नैन मधुबन पढ़ि आए ।
निर्गुन को सदेस लादि गोपिन पै लाए ॥
ऊधौ पढ़ि पढ़ि अब भए ग्यानी ।
नीति अनीति सबै पहिचानी ॥
निर्गुन ध्यान तबहि तुम कहते ।
सबै समय ब्रत दृढ़ करि गहते ॥
नैनन ते सरिता कत बहती ।
हरि बिछुरन को सूल न सहती ॥

[५६४] राग धनाश्री

हरि तेरी लीला को सुधि आवै ।*
कमल नैन मन मोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै ॥
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिक ज्यों गावै ।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि संग हिलिमिलि उठि धावै ॥
कबहुंक नैन मूँदि उर अन्तर मनि माला पहिरावै ।
मृदु मुसुकानि बंक अवलोकनि चाल छबीली भावै ॥
एक बार जाहि मिलहि कृपा करि सो कैसें बिसरावै ।
'परमानन्द प्रभु' स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गंवावै ॥

* प्रस्तुत पद में विरह की परमानुभूति की अभिव्यक्ति है । इसी पद को स्मरण कर महाप्रभु आचार्य जी तीन दिन तक मूर्च्छित रहे थे :—संपादक

[५६५] राग विभास

कैसे कीजै बेद कह्यौ ।*
हरिमुख निरखत बिधि निषेध कौ नाहिन ठौर रह्यौ ॥
दुख को मूल सनेह सखीरी सो उर पैठि रह्यौ ।
'परमानंद' प्रेम सागर मँह परयौ सो लीन भयौ ॥+

[५६६] राग विहाग

माई बरसानों सुजस[१] बसो ।
राधा कान्ह कुंवर चिरजीवौ, न्हात ही जिन बार खसो ।
गोवर्धन गोकुल बृन्दावन नव निकुंज नित प्रति बिलसो ।
रास विलास रहसि कहि धायौ, आनंद हिये हुलसो ॥
अविचल राज करौ इह भूतल गोपीजन देत असीसो ।
'परमानन्ददास' बलिहारी जीवो कोटि बरीसो ॥

[५६७] राग आसावरी

चल री सखी नंद गाव जाइ बसिये ।
खिरक खेलत ब्रज चंद जू हसिये ॥
बंसी बटहु सबै सुख दाई ।
एक कठिन दुख दूर कन्हाई ॥
माखन चोरत दुरि दुरि देखो ।
जीवन जन्म सुफल करि लेखो ॥
जलचर लोचन छिनु छिनु प्यासा ।
कठिन प्रीति 'परमानन्ददासा' ॥

---

* पुष्टि मार्गीय भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत पद में द्रष्टव्य है ।—संपादक
+ पाठभेद—'परमानन्द प्रभु' केलि समुद्र में परयौ सुलै निवह्यौ ।
१—सुबस (पाठ भेद)

[५६८] राग आसावरी

बढ़्यौ है माई माधौं सो सनेहरा ।
जैहौं तहां जहां नंदनंदन राज करो यह गेहरा ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियो समर्पन देहरा ।
'परमानंद' चली भीजत ही बरसन लाग्यौ मेहरा ॥

[५६९] राग सारंग

हौं लोभी लटकन लाल की ।
मुरि मुसिकानि आनि उर अन्तर निकसत नही खरसान की ॥
बांको पाग राग मुख सारंग[१] मधुर लपट लट माल की ।
सखा सुबल के अंस बाहु दिये बलि गई देन उगाल की ॥
चंपक दाम बीजु उर चमकत गंध सुमन्न गुलाब की ।
चंचल दिष्टि समर[२] की सोभा ढूलनि[३] कमल कर माल की ॥
उन मेरो सरबसु चोर्यौ सजनी अरु लई चाल मराल की ।
अब यह देह दूसरो न छूहै 'परमानन्द' गोपाल को ॥

[५३८] राग गौरी

आए मेरे नंदनंदन के प्यारे ।
माला तिलक मनोहर बानो त्रिभुवन के उजियारे ॥
प्रेम सहित बसत मन मोहन नैंकहु टरत न टारे ।
हृदै कमल के मध्य बिराजत स्री ब्रजराज दुलारे ॥
कहा जानो कौन पुन्य प्रगट भयौ मेरे घर जु पधारे ।
'परमानन्द प्रभु' करी निछावर बार बार हौं बारे ॥

१—रजित
२—स्मर (कामदेव अर्थ)
३—हूलनि

श्रीहरिः

२

अथ

नित्य सेवा

के

कीर्तन

[परमानन्द सागर]

[५७२] राग भैरव

प्रात समै रसना रस पीजे लीजै श्री बल्लभ प्रभु जी को नाम ।
आनन्द मे बीतत निसवासर मन बांछित सुधरै सब काम ॥
सुजस गान मन ध्यान आन उर जे राखें आन[१] आठों याम ।
'परमानंददास' को ठाकुर जे बल्लभ ते सुन्दर स्याम ॥*

[५७३] राग भैरव

बंदौं सुखद श्री बल्लभ चरन ।
अमल कमल हू तै कोमल कलिमल हरन ॥
करत वेद विचार जाकौ अभय असरन सरन।
ध्यान मुनिजन धरत जाकौ भक्ति दृढ़ विस्तरन ॥
होत मन कर्म वचन चारौ भजे एक ही बरन ।
'परमानंद' के उर बसो निरंतर, अखिल मंगल करन ॥

[५७४] राग भैरव

प्रात समय उठि हरि नाम लीजै आनन्द सो सुख में दिन जाई ।
चक्रपानि करुना को सागर विघन बिनासन जादौं राई ॥
कलिमल हरन तरन भव सागर भगत चितामनि काम धेनु ।
ऐसो सुमिरन नाम कृष्न को बंदनीक पावन पद रेनु ॥
सिव विरंचि इन्द्रादिक देवता मुनिजन करत नाम की आस ।
भगत बछल ऐसो नाम[२] कल्पद्रुम बरदायक 'परमानन्वदास'

---

* प्रस्तुत पव कवि की गुरु और ईश्वर विषयक अभेद बुद्धि का सूचक है ।—सपादक

१ दिढ

२ हरिनाम

[५७५] राग आसावरी

स्री बिट्ठलनाथ पालने झूलें मात अक्काजू झुलावें हो।
प्रगट भई त्रिभुवन की सोभा देखत मन ही लुभावें हो॥
अद्भुत रूप स्वरूप की महिमा कौन बरनें कवि ऐसौ हो।
ब्रह्मादिक जाकौ पार न पावें तारे सेस महेसौ हो॥
छोटे चरन जाकी छोटी अँगुरिया नख मनिचंद बिराजें हो।
तापर फूल पात सोभति अति नूपुर सोभा छाजें हो॥
जंघा कदली की अति सोभा, तापर गुल्फ विराजें हो।
कटि पर छुद्रघंटिका राजित केहरि सोभा लाजें हो॥
तापर नाभि कमल की सोभा उदर की सोभा भ्राजें हो।
तापर पीत झँगुलिया सोभित मोतिन हार विराजें हो॥
कुण्डल लोल कपोल की सोभा नासा मोतिन राजें हो।
नेत्र कमल की सोभा कहा कहूं काजर रेख बिराजें हो॥
भ्रकुटी काम के बान बिराजत चितबनि मनही लुभावें हो।
है अद्भुत छवि कही न जाय कछु लहर समुद्र की छावें हो॥
केसरि कमल पत्र पें राजत कुलही केसरि छाई हो।
तापर मोरचंद्रिका सोभित कस्तूरी तिलक सुहाई हो॥
नख सिख ध्यान धरें जो कोई सोई नर तरि जाई हो।
स्री बल्लभ नंदन रूप अनूपम ब्रजजन के सुखदाई हो॥
पौष कृष्न नौमी तिथि प्रगटे लगन नच्छत्र सुहाई हो।
पुष्टि प्रकास करेंगे भूतल, दैवी जीव उधराई हो॥
घर घर मंगल बाजत बधाई मोतिन चौक पुराई हो।
देत दान श्री लक्ष्मन नंदन बारत नहीं अघाई हो॥
विविध भाँति के सब्द करत है स्रवन सुनत सुखदाई हो।
देत असोस कहति ब्रज सुंदरि चिरंजीवौ कुंवर कन्हाई हो॥
धन्य अकाजू तेरे भाग की, महिमा कहत न जाई हो।
यह अवतार भगति हित कारन सुर नर मुनि सुखदाई हो॥
'परमानंद' स्री विट्ठलनाथ के गुन गावत न अघाई हो॥*

* प्रस्तुत पद कवि के शरण काल सूचक हैं—सपादक

श्री यमुना जी के पद

[५७६] राग विभास

स्री जमुना दीन जान मोहि दीजै ।
नंदकुमार[1] सदा वर मांगो गोपिन की दासी मोहि कीजै ।।
तुम तो परम उदार कृपा निधि चरन सरन सुखकारी ।
तिहारे बस सदा लाडलीवर तुव तट क्रीड़ित गिरधारी ।।
सब ब्रजजन बिहरत संग मिल अद्भुत राग विलासी ।
तिहारे पुलिन निकट कुंजन द्रुम कोमल ससी सुवासी ।।
ज्यों मंडल मे चंद विराजत भर भर छिरकत नारी ।
स्रम जल हरत न्हात अति रस भर जल क्रीड़ा सुखकारी ।।
रानी जी के मंदिर में नित उठि पाय लाग भवन काज कीजे ।
'परमानन्ददास' दासी ह्वै नन्द नन्दन कौं सब सुख दीजै ।।

[५७७] राग रामकली

अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति
तरणि नंदिनी ।
स्याम बरन झलकन[2] रूप लोल लहर वर अनूप सेवित
संतत मनोज वायु मंदिनी ।।
कुमुद कुंज बन विकास मंडित सुवास कूजत अलि हंस
कोक मधुर छंदिनी ।
प्रफुल्लित अरविंद पुंज कोकिल कल सार गुंज[3] गावत
अलि[4] मंजु पुंज विबुध वंदिनी ।।
नारद सिव सनक व्यास ध्यावत मुनि धरत आस चाहत
पुलिनवास सकल दुःख निकंदिनी ।
नाम लेत नस पाप [कहत] मुनि किन्नर रिषि कलाप करत
जाप 'परमानंद' महा आनंदिनी ।।

---
१ नद को लाल
२ झलकत
३ सुकसार गुण
४ भृङ्ग

प्रफुल्लित वन विविध रंग झलकत यमुना तरंग सौरभ घन
मुदित अति सुहावनी ।
चिंतामनि कनक भूमि छबि अदभुत लता भूमि सीतल मंद
अति सुगंध मरुत आवनी ।।
सारस हंस शुक चकोर चित्रित नृत्यत सुमोर कल कपोत
कोकिला कल मधुर गावनी ।
युगल रसिक-वर विहार 'परमानंद' छवि अपार जयति
चारु बृन्दावन परम भावनी ।।

[५७८] राग सारंग

स्री जमुना यह प्रसाद हौं पाऊँ ।
तुम्हारे निकट रहों निसवासर राम कृष्न गुन गाऊँ ।।
मज्जन करूँ विमल जल पावन चिंता कलह बहाऊँ ।
तिहारी कृपा ते भानु की तनया हरिपद प्रीति बढ़ाऊँ ।।
विनती करों यहै बर माँगौ अधमन संग बिसराऊँ ।
'परमानन्द प्रभु' सब सुखदाता मदन गोपाल लड़ाऊँ ।।

[५७९] राग बिलावल

तू[१] जमुना गोपालहि भावै ।
जमुना जमुना नाम उच्चारत धर्मराज ताकी न चलावै ।।
जो जमुना कौ दरसन पावै अरु जमुना जलपान करै ।
सो प्रानी जमलोक न देखै चित्रगुप्त लेखौ न धरै ।।
जे जमुना को जान महातम बार बार परनाम करै ।
ते जमुना अवगाहन मज्जन चिंता ताप तनके जु हरै ।।
पर्दम पुरान कथा यह पावन धरनी प्रति वाराह कही ।
तीर्थ महातम जान जगत गुरु सों 'परमानन्ददास' लही ।।

---
[१] यह

[५८७]

राग भैरव

मंगल माधौ नाम उचार ।
मंगल वदन कमल करमंगल मंगल जन को सदा सम्हार ।।
देखत मंगल पूजत मंगल गावत मंगल चरित उदार ।
मंगल स्रवन कथा रस मंगल, मंगल तन वसुदेव कुमार ।।
गोकुल मंगल मधुवन मगल मंगल रचि बृन्दावन चंद ।
मंगल करन गोवर्धन धारी मंगल वेष जसोदा नंद ।।
मगल धेनु रेनु मंगल मंगल मधुर बजावत बेनु ।
मंगल गोप बधू परिरम्भन मंगल कालिन्दी पय फेनु ।।
मंगल चरन कमल मनिमंगल मंगल कीरति जगत निवास ।
अनुदिन मंगल ध्यान धरत मुनि मंगल मति 'परमानंददास' ।।

[५८८]

राग भैरव

मंगलं मंगलं व्रजभुवि मंगलमिह श्री लक्ष्मण नन्द ।*
मंगल रूप महालक्ष्मीपति जलनिधि पूरन चंद ।।
मंगलमय कृत सातमज गोपीनाथ मंगल रूप रुक्मणि मंगल पद्मावतीशम्
मंगल जनित तनुज श्री गिरिधर गोविंद बालकृष्न गोकुल पति
रघुनाथ जगदीशम् ।।
मगलवर्धक श्री यदुपति घनश्याम पितु समान श्री विट्ठल सुरताभिधानम् ।
मंगलमय कृत महाप्रिय बल्लभ सेवत मंगल कृत देवी संतानम् ।।
मंगल मंगल गोवर्धन धर मंगल मय रस लीला सागर रस पूरित भावम् ।
बंदेऽहं तं संतत मनमथ 'परमानंद' मदन मय व्रजपति मुखगत
मुरली रावम् ।।

---

* प्रस्तुत पद में मगल मगलम् का अनुसरण द्रष्टव्य है ।

ंगला आरती के पद

[५८९] राग भैरव

सब बिध मंगल नन्द को लाल ।
कमल नयन बल जाहि जसोदा न्हात खसो जिन बाल ॥
मंगल गावत मंगल मूरति लीला ललित गोपाल ।
मंगल ब्रजबासिन के घर घर नाचत गावत देकर ताल ॥
मंगल बृन्दावन के रंजन मंगल मुरली सब्द रसाल ।
मंगल जस गावे 'परमानन्द' सखा मंडली मदन गोपाल ॥

[५९०] राग बिलावल

मंगल आरती कर मन मोर ।
भरमनिशा बीती भयो भोर ॥
मंगल बाजत झालर ताल ।
मंगल रूप उठे नंदलाल ॥
मंगल धूप दीप कर जोर ।
मंगल सब गावत ओर ॥
मंगल उदयो मंगल रास ।
मंगल बल 'परमानन्ददास' ॥

———

अथ जगाइबे के पद

[५९१] राग भैरव

ललित लाल स्रीगोपाल सोइये न प्रातकाल जसोदा मैया लेत बलैया
भोर भयो बारे ।
उठो देव करूं सेव जागिये देवाधिदेव नन्दराय दुहत गाय पीजिये
पय प्यारे ॥
रवि की किरन प्रगट भई उठो लाल निसा गई दधि मथत जहाँ तहाँ
गावत गुन तिहारे ।
नंदकुमार उठे बिहँसि कृपादिष्टि सब पै बरषि जुगल चरन कमल पर
'परमानंद' वारे ।

[५९२] राग भैरव

जागो जागो मेरे जगत उजियारे ।
कोटि मदन वारो मुसिकानि पर कमल नयन अँखियन के तारे ।
सुरभि बच्छ गोपाल निसंक लै जमुना के तीर जाओ मेरे प्यारे ।
'परमानंद' कहत नन्दरानी दूर जिन जाओ मेरे ब्रज रखवारे ॥

[५९३] राग भैरव

जागिये गोपाल लाल देखों मुख तेरो ।
पाछे गृह काज करो नित्य नियम मेरो ॥
अरुन दिसा बिगत निसा उदय भयो भान ।
कमलन ते भ्रमर उड़े जागिये भगवान ॥
बन्दीजन द्वार ठाड़े करत जस उच्चार ॥
सरस वेद गावत हैं लीला अवतार ॥
'परमानन्द स्वामी' गोपाल परम मंगलरूप ।
वेद पुरान गावत हैं लीला अनूप ॥

[५९४] राग भैरव

प्रात समै सुत कौ मुख निरखत प्रमुदित जसुमति हरषित नंद ।
दिनकर-किरन मानो बिगसत उरप्रति अति उपजत आनंद ॥
बदन उघारि जगावत जननी जागो मेरे आनन्द कन्द ।
मनहुँ पयोनिधि सहित फेन फुट दई दिखाई नौतन चन्द ॥
जाकों ईस सेस ब्रह्मादिक नेति नेति गावत स्तुति छन्द ।
सो गोपाल अब स्री गोकुल में आनन्द प्रगटे 'परमानन्द' ॥

[५९५] राग मलार

माइ तजि न सकै सुन्दर बर सोभा मनु बांध्यो यहि रीति ।
कोटिक कहौ कोऊ अपनीसी बाढ़ी परम प्रतीति ॥
अरुन पाग पर पेच जरकसी तापर सिवन अपार ।
मानहुँ जलधि जिय तात बिराजित अरुन उदै तिहि बार ॥
मृगमद तिलक भाल पर राजित ता बिच बिंदुला एक ।
मनौ जपाको कुसुम पात पर कहिये कहा विवेक ॥
भृकुटी बंक संक नहीं मानत भृंग फिरत पै भाल ।
काम आदि दै किये सकल बस धाय धनुष नन्दलाल ॥
चंचल नैन मैन के निज गृह चतुर बरन बिस्तार ।
खंजन मीन मधुप गृह हूँ ते देखियत अधिक अपार ॥
प्रभु नासिका सुघट सबहिन ते अरध उरध मध सूल ।
निरत कीर सुभीर दामिनी निकट नैन के कूल ॥
अरुन अधर द्विज परम मनोहर अवलि चिकुर सुठि साल ।
मंद हास अचरज कमला पर मनहुँ ब्रज की माल ॥
कुंडल कनक जड़े मनि मरकत जगमगात जैसे मीन ।
मनहुँ गंडस्थल अमी सुघट पर तहाँ भये लौलीन ॥
कौस्तुभ कंठ माल मुकुताहल नगनि जटित जुग हार ।
मनहूँ नच्छत्र सहित ससि सविता कीनो नभ विस्तार ॥

[६००] राग भैरव

प्रात समय सांमलिया हो जागो ।
गाय दुहन कों भाजन मांगो ॥
रवि के उदै कमल परकासे ।
भ्रमर उठ चले तमचुर भासे ॥
गोपवधू दधि मन्थन लागी ।
हरि जु की लीला रस पागी ॥
बिकसत कमल चलत अलिसेनी ।
उठो गोपाल गुहूं तेरी बेनी ॥
'परमानन्ददास' मन भायो ।
चरन कमल रज तेहि छिन पायो ॥

[६०१] राग सारंग

प्रात समय उठ चलहु नंदगृह बलराम कृष्न मुख देखिये ।
आनन्द मे दिन जाय सखीरी जनम सुफल कर लेखिये ॥
प्रथम काल हरि आनन्दकारी पाछे गृह[१] काज कीजिये ।
राम कृष्न पुन बनहि जायँगे चरन कमल रज लीजिये ॥
एक गोपिका ब्रज मे सयानी स्याम महातम सोही जानै ।
'परमानन्द प्रभु' जद्यपि बालक नारायन कर मानै ॥

[६०२] राग विभास

उठो गोपाल भयो प्रात देखूं मुख तेरो ।
पाछे गृह काज करूं नित्य नेम मेरो ॥
विगत निसा अरुन दिसा प्रकट भयो भान ।
कमल मे तै भ्रमर उड़े जागिये भगवान ॥
बन्दीजन द्वार ठाड़े करत हैं केवार ।
मधुर बेनु गान करत लीला अवतार ॥
'परमानंद स्वामी' दयालु जगत मंगल रूप ।
बेद पुरान गावत हैं महिमा अनूप ॥

१ भवन [पाठभेद]

[६०३] राग विभास

हौं तकि लागि रही री माई ।
जब गृह ते दधि लै निकसे तब मैं बाँह गही री माई ॥
हँसि दीन्हों मेरो मुख चितयो मीठी सौ[१] बात कही री माई ।
ठगि जु रही चेटक सो लागौ परिगई प्रीति सही री माई ॥
'परमानन्द' सयानी ग्वालिन सरबसु दै निबही री माई ॥

[६०४] राग विभास

जसुमति लाल कौ बदन दिखैये ।
भोरहि उठत आय देखत मुख निरखत ही सचुपैये ॥
उमड़ि रही घटा चहूँ दिसतें बेगि तुरत उठि धैये ।
'परमानंद प्रभु' उठे तुरत हो निरखि मुखारविंद बलि जैये ॥

खंडिता के पद

[६०५] राग विभास

कमल नयन स्याम सुन्दर निस के जागे हो आलस भरे ।
कर नख उर राजत मानौं अर्क सीस धरे ॥
लटपटी सिर पाग खिसत बदन तिलक टरे ।
मरगजी कुसुममाल भूषन अंग अंग परे ॥
सुरत रंग उमंग रहे रोम पुलक होत खरे ।
'परमानंद' रसिक राय जाही के भाग ताही के ढरे ॥

---
[१] सी

[६०६] राग आसावरी

सांवरे भले हो रतिनागर ।
अबकें दुराय क्यो दुरत है प्रीति जू भई उजागर ॥
अधर काजर नयन रँगमगे रची कपोलन पीक ।
उर नख रेख प्रकट देखियत हैं मरम की लीक ॥
पलट परे तिलक गयो मिटि जहाँ कंकन गाढ़े ।
'परमानन्द स्वामी' मधुकर गति भली आपनी चाढ़े ॥

[६०७] राग देवगांधार

चले उठ कुंज भवन तें भोर ।
डगमगात[१] लर छूट रही है पहरें पीत पटोर ॥
अरुन नयन घूमत आलसयुत[२] मानों रस सिंधुझकोर[३] ।
गिरि गिरि परत कुसुम अलकावलि[४] सिथिल सो बन डोर ॥
परे[५] नख अंग जुगल कुच अन्तर राजत उर तन गोर ।[६]
'परमानन्द' रमी निसा अबलों पलट हँसी मुख मोर ॥

कलेऊ के पद

[६०८] राग विभास

लेहु ललन कछु करो कलेऊ अपने हाथ जिमाऊंगी ।
सीतल माखन मेल मिस्री कर सीरा लाल खबाऊँगी ॥
औटचौ दूध सद्य धौरी को सोयरो करि करि प्याऊंगी ।
तातौ जान जो न सुत पीवत पंखा पवन ढुराऊँगी ॥
अमित सुगंध सुवास अंग करि उबटन गुन गाऊंगी ।
उष्न सीतल अन्हवाय खोरजल चन्दन अंग लगाऊंगी ॥
त्रिविध ताप नसि जात देखि छबि निरखि हियो सिराऊंगी ।
'परमानन्द' सीतल करि अखियाँ बानिक पर बलि बलि जाऊँगी ॥

---

१ लटकत लट छूटे
२ बस
३ हिलोर
४ गलित
५ पद
६ सुभग हिये तन रोर

[६०९] राग विभास

आज प्रभात जात मारग में सगुन भयो फलफलित जसोदा को ।
मंगल निधि जाके भवन बिराजत आनंद अंग अंग प्रभुता को ।।
सीतल सुवास अवासन महियाँ मंगल गीत गावत सखियाँ ।
'परमानंद' निरखि मोहन मुख हरख हिये सीतल भई अँखियां ।।

[६१०] राग विलावल

लाइ जसोमति मैया भोजन कीजै हो लाल ।
बिजन धरै चटपटे लीजै हो सुन्दर लाल ।।
चंदन भवन बनाये स्वच्छ करि करचौ दिठौना भाल ।
'परमानंद प्रभु' ललित त्रिभंगी बहत चहूंदिस माल ।।

[६११] राग विभास

बुन्दन झर लायो आँगन जहाँ करत कलेऊ दोऊ भैया ।
भवन में आवो लाल संग सब लाओ बाल कहत जसोदा मैया ।।
भीजेगो बसन खेलबे को मेरो कह्यो मान लालन लैहौं बलैया ।
'परमानंद' प्रभु जननी कहत बात प्यावत मथिमथि दूध की घैया ।।

[६१२] राग विलावल

करत कलेऊ सदन गोपाल ।
बहु विधि पाक थार मध राखे लेहु मनोहर लाल ।।
जो भावै सो लेहु मेरे मोहन माधुरी मूरति रसाल ।
'परमानन्द प्रभु' वेगि लेहु किन चहुँ दिसि घटा उमड़ि रही लाल ।।

[६१३] राग भैरव

आछो नीको लौनो मुख भोर ही दिखाइये ।
निस के उनींदे नयन तोतरात मीठे बैन भावते जीय मेरे सुख ही बढ़ाइये ॥
सकल सुख करन त्रिविध ताप हरन उर को तिमिर बाढ्यो तुरत नसाइये ।
द्वार ठाड़े ग्वाल बाल करोहो कलेऊ लाल मीसी रोटी छोटी माखन सों खाइये ॥
तनक सों मेरो कन्हैया बारि फेर डार मैया बेनी तो गुहों बनाय गहरु न लगाइये ।
'परमानंद प्रभु' जननी[१] मुदितमन फूली फूली अति उर अंग न समाइये ॥

[६१४] राग भैरव

करो कलेऊ राम कृष्न मिल कहत जसोदा मैया ।
पाछे बच्छ ग्वाल सब लैकें चलौ चरावन गैया ॥
पायस सिता घृत सुरभिन को रुचिकर भोजन कीजै ।
जग जीवन ब्रजराज लाडिले जननी को सुख दीजै ॥
सीस मुकुट काछिनो पीत बसन उर धारो ॥
कर लकुटी लै मुरली मोहन मनमथ दर्प निवारो ॥
मृगमद तिलक स्रवन कुण्डल मनि कौस्तुभ कंठ बनावो ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रजजन मोद बढ़ावौ ॥

---

१ जन

[६१५] राग विभास

गोविन्द माँगत हैं रोटी ।
माखन सहित देहु मेरी जननी सुभ्र सुकोमल मोटी ॥
जो कछु मागौं देहुँ सो मोहन काहे कों आँगन लोटी ।
कर गहि उछंग लेत महतारी हाथ फिरावत चोटी ॥
मदन गोपाल स्यामघन सुन्दर छोड़ो यह मति खोटी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हाथ लकुटिया छोटी ॥

[६१६] राग विभास

उठत प्रात मात जसोदा मंगल भोग देत दोऊ छोरा ।
माखन मिस्री मलाई दूध भरे दोउ कनक कटोरा ॥
कछुक खात कछु मुख लपटावत देत दुराये मिलि करत निहोरा।
'परमानंद प्रभु' झबकि दृग भरत लाल भुज करत कलोला ॥

[६१७] राग बिलावल

भोजन भली भांति हरि कीनों ।
खट बिंजन मठा सलौनों माँगि माँगि हरि लीनो ॥
हंसत लसत परसत नन्दरानी बाल केलि रस भीनों ।
'परमानंद' उबर्‌यो पनवारो टेरि सुबल कों दीनों ॥

ग्वाल के पद

[६२४] राग बिलावल

गोपाल माई खेलत है चक डोरी ।
लरिका पाँच सात संग लीने निपट साँकरी खोरी ।।
चढ़ि घर होरी झरोखा चितयो सखी लियो मन चोरी ।
बांए हाथ बलैया लीनी अपनो अंचर छोरी ।।
चारों नयन मिले जब संमुख रसिक हँसे मुख मोर ।
'परमानन्ददास' रति नागर चितैं लई रति चोर ।।

[६२५] राग सारंग

गोपाल फिरावत है वंगी ।
भीतर भवन भरे सब बालक नाना बिधि कछु रंगी ।।
सहज सुभाव डोरी खेंचत हैं लेत उठाय करपै संगी ।
कबहुँक कर लै स्रवन सुनावत नाना भाँत अधिक सुरंगी ।।
कबहुंक डार देत हैं पथ मे मुखहि बजावत संगी ।
'परमानंद स्वामी' मन मोहन खेल सर्यो चले सब संगी ।।

[६२६] राग सारंग

लाल आज खेलत सुरंग खिलौना ।
काम सबद उघटत है पपीहा बड़ो मधुर मिलौना ।।
प्रेम धुमेड़े नेत हैं फिरकी झुंझना मनहि सलौना ।
चहाबहा चोबत चकई हित जु सब ही करौना ।।
झुमिरि झूमि झुकि बाट देखत हथबंगी मनु जौना ।
'परमानद' ध्यान भगतन बस ब्रज केर तिरौना फिरौना ।।

[६२७]　　　　राग आसावरी

खेलत में को काको गुसैंय्यां ।*
स्रीदामा जीते तुम हारे बरबट कत करत रिसैंय्यां ॥
जाँति पाँति कुल ते जु बड़े हौ कछु इक अधिक तिहारे गैय्याँ ।
याही ते जु देत अधिकाई हम सब बसत तिहारी छैय्यां ॥
रूहठ करै तासौं को खेलै सखा रहै इक ठैय्याँ ।
'परमानंद प्रभु' खेल्यौ चाहो तो पोत देहौ करि नंद दुहैयाँ ॥

[६२८]　　　　राग अड़ाना

कान्ह अटा पर चंग उड़ावत,
मैं इतते उत आँगन हेर्यौ ।
नैन भये व्यभिचार परायन[१],
भीजत लाज किधौ भट भेरो ॥
मोहि कौं यह जक लगी रहत है,
क्यौं हूं फिरत न फेर्यौ ॥
'परमानंद प्रभु' यहै अचंभो,
खेंचत डोर किधौं मन मेरो ॥

[६२६]　　　　राग सारंग

अपने गोपाल की बलिहारी ।
नाना बिधि रचि फूल बनाई भली बनी है बारी ॥
सोह सहित सुदेस देस बिच बांकी कुलहे वे धारीं ।
गोपी जन के अनुराग भाग सब बाँधि सुहस्त सँवारी ॥
निरखि निरखि फूलत नन्दरानी सुख की रास बिचारी।
'परमानंद स्वामी' के ऊपर सरबसु दीजै बारी ॥

---

* यह पद कुछ पाठ भेद से सूर सागर में भी मिलता है। परीख जी की तृतीय गृह की कीर्तन की हस्तलिखित प्रति में होने के कारण यहाँ दिया गया है।—संपादक

१ विभिचार नारायन

छाक के पद

[६३६] राग मल्हार

चहूँ दिस हरिन भूमि बन माँह ।
जोरि मंडली जेमन लागे बैठ कदम की छांह ॥
घुमड़ घटा छटा दामिनी की बरनत बरनी न जाय ।
यह सुख स्याम तिहारे संग बिन और अनत कहुँ नाय ।
धन्य धन्य ग्वाल बाल हरि जिनके कौरें लैलै खाय ।
'परमानंद' ब्रह्मादिक बिस्मित सिर धुनि धुनि पछताय ॥

[६३७] राग मल्हार

देखौ मैया चहुँदिसि छाए बादर ।
समझ बिचार लेहो निज मन में फेरि फिरोगे निरादर ॥
बरखारितु बन छाँहन लीजै भोजन संग बिरादर ।
निर्मल ताल तलैया के जल बोलत नीके दादुर ॥
हरि हरि भूमि छाँड़ि कित जइऐ और खादर ।
खिसल परे 'परमानन्द' तब हरि जुरि मिल बैठे आदर ॥

[६३८] राग सारंग

स्याम सुनि हरी भूमि सुखकारी ।
व्यंजन बाँटि सबन कों दीजै बिनती लाल हमारी ॥
बरखि उघर घन नीके लागत पवन चलत पुरवाई ।
भोजन को बैठे 'परमानन्द' नवल लाल गिरिधारी ॥

[६३६] राग सारंग

हरि को टेरत फिरत गुवारी।
आन लेहों तुम छाक आपनी बालक बल बनवारी ॥
आज कलेऊ कियो न प्रातहि बछरा लै बन धाये।
मेवा मोदक मैया जसोमति मेरे हाथ पठाये ॥
जब यह बानी सुनी मनोहर चलि आये तिहीं पास।
कीनी भली भूख जब लागी बल 'परमानन्ददास' ॥

[६४०] राग सारंग

तुमकों टेर टेर मैं हारी ॥
कहाँ जो रहे अबलौं मन मोहन लेहो न छाक तुम्हारी।
भूल परी आवत मारग में क्योंहूं मैं न पेड़ो पायो।
बूझत बूझत यहाँ लों आई तब तुम बेनु बजायो ॥
देखौ मेरे अंग कौ पसीना उर कौ अंचल भीनो।
'परमानन्द प्रभु' प्रीति जान कें धाय आलिंगन दीनो ॥

[६४१] राग सारंग

बांट बांट सबहिन कों देत।
ऐसे ग्वाल हरि कों जो भावत सेस रहत सो आपुन लेत ॥
आछो दूध सद्य धौरी को औटि जमायो अपने हाथ।
हंडिया मूंद जसोदा मैया तुमको दै पठई ब्रजनाथ ॥
आनन्द मगन फिरत अपने रंग बृन्दावन कालिन्दी तीर।
'परमानन्ददास' झूठो लैबे बाँह पसारि दियो बलवीर ॥

[६४२] राग सारंग

अरी छाकहारी चार पाँच आवति मध्य ब्रजराज ललाकी ।
बहु प्रकार ब्यंजन परिपूरन पठवत बड़े डलाकी ।।
ठठकि ठठकि टेरत स्री गोपालै चहुँधा दिष्टि करें ।
बाजत बेनु धुनि सुनि चली चपल गति परासौली[१] के परे ।।
'परमानन्द प्रभु' प्रेम भगति मन टेर लई कर ऊची बाँह ।
हंसि हंसि कसि कसि फेंटा कटिन सों बाँटत छाक बन ढाकन माँह ।।

[६४३] राग सारंग

आज दधि मीठो मदन गोपाल ।*
भावत मोहि तिहारो झूंठो चंचल नयन बिसाल ।।
आने पात बनाये दोना दिये सबन कों बांट ।
जिन नहीं पायो सुनो रे भैया मेरी हथेरी चाट ।।
बहुत दिनन हम बसे कुमुदवन कृष्न तिहारे साथ ।
ऐसो स्वाद हम कबहुं न चाख्यौ सुन गोकुल के नाथ ।।
आपुन हंसत हंसावत ग्वालन मानुस लीला रूप ।
'परमानन्द प्रभु' हम सब जानत तुम त्रिभुवन कें भूप ।।

[६४४] राग सारंग

काँवर द्वय भरिकें छाक पठाई नंदरानी आप,
मोहि मिले मारग में, मधुवन के कूल ।+
सुबल तोक तरुन वेस आवत कछु भोजन लिये
चंचल गति, दोऊ दरसन के फूल ।।
कनक थार जगमगात वेलन की भांति कांति
भरे नंदरानी आप दोऊ समतूल ।
पचरंग पीरे पाट की डोरी चहूं ओर खचित
पवन गवन विकस जात रेसम के भूल ।।

---

१ ब्रज के एक स्थान का नाम—सपादक

* यह छाक कुमुदवन की है—सपादक

+ यह छाक मधुवन की है—सपादक

छोटी द्वय गाँठ तामें पठवत सब ब्रजजन के
आस पास लटक रहे फोंदा मखतूल ।
सकल पाक परमानन्द आरोगत
'परमानन्द' जानत सब बातन को मूल ॥

[६४५] राग सारंग

स्याम ढाक तर मंडल जोरि जोरि बैठे अब छाक खात
दधि ओदन ।X
सघन कुंज मध्य चन्दन के महेल रचित सीर रावटी
चहुं ओर छिरकत गुलाब जलसों दिन ॥
आस पास मिलि बैठे सखा सब रुचिर डला भरे
प्रेम प्रमोदन ।
'परमानन्द प्रभु' गोपाल अद्‌भुत गुन रूप रसाल
अरोगत मंडल मध्य सुबल सुबोधन ॥

[६४६] राग बिलावल

सिला पखारो भोजन कीजै ।*
नीके बिंजन बने कौन के चाखि चाखि सबहिन कों दीजै ॥
अहो अहो सुबल अहो स्रीदामा अर्जुन भोज बिसाल ।
अपने अपने ओदन लाओ आग्या दई है गोपाल ॥
फल अंगुरिन अंजुलिन बिच राखे बांट बाँट सबहिन को देत ।
'परमानन्द स्वामी' रस रीझे प्रेम पुन्य को बाँध्यो सेत ॥

X यह छाक श्यामढाक के नीचे आरोगी गई—संपादक

* यह छाक श्री गिरिराज ऊपर की है। ,,

[६५३] राग सारंग

रंग रंगीली डलियां आई हैं छाक इक ठौर तें।*
दही सिखरन छिरकत चहुँधातें छकहारी नीकी ओरतें ॥
परीपूरन रची स्री चन्द्रावलि पठई अपनी ओरतें।
कनक थार बेला परिपूरन झलकत दोउ ठौरतें ॥
ढापें पोत बसन सिंगारी सौरभ पवन झकोरतें।
'परमानंद' पत्र अरु बीरा छोर लिये पाये कोरतें[1] ॥

आवनी के पद

[६५४] राग पूर्वी

देखो गोपाल की आवन।
कमल नयन स्याम सुन्दर की मूरति मन भावन ॥
बेही सुन्दर सीस मुकुट गुंजा मनि लावन।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल की अग अंग नचावन ॥

[६५५] राग पूर्वी

देखो गोपाल की आवनि।
आवनी मन फावनि ॥
कमल नयन स्याम सुन्दर मूरति मन भावनि।
बरुहा मुकुट दाम गुंजामनि ॥
भेख विचित्र बनावनि।
'परमानंद स्वामी' गोपाले अंग अंग नचावनि ॥

* यह मल्हार छाक है—सपा०
१ अचल से [अर्थ]

[६५६] राग बिलावल

गिरिधर सब ही अंग को बांको ।
बांकी चाल चलत गोकुल में छैल छबीलो काको ॥
बांकी भौंह चरन गति बांकी हिरदै है ताको ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर कियो खौर ब्रज साको ॥

[६५७] राग बिलावल

गिरिधर चाल चलत लटकीली ।
सीस मुकुट कानन कुंडल बंसी बजावत अतिहि रसीली ॥
जमुना तीर ताल लतावन फिरत निरंकुस नंद किसोर ।
भौंह विलास पास बस कीनी मोहन अंग त्रिभंग तें जोर ॥
लै राखे कुच बीच निरन्तर सकल सुखद प्रेम की डोर ।
यहै उचित होय ब्रज सुन्दर 'परमानन्द' चपल चित चोर ॥

[६५८] राग यमन

जिय की न जानत हो पिय अपनी गरज के हो गाहक ।
मृदु मुसकाय ललचाय जाय ढिग हरत परायो मन नाहक ॥
कपटी कुटिल नेह नहीं जानत छल सों फिरत घर घरके रस
चाहक ।
ये दई निर्दई स्यामघन सुन्दर 'परमानन्द' उर सालक ॥

[६५९] राग नायकी

बारों मीन खंजन आली के दृगन पर भ्रमर मन ।
अति सलोने लोने अति ही सुढार ढारे अति कजरारे भारे बिन
ही अंजन ॥
स्वेत असत कटाच्छन तारे उपमा कों मृग ही कंजन ।
'परमानंद प्रभु' रस बस कर लीने प्यारी जू के मन के रंजन ॥

[६६०] राग बिलावल

आज बने सखी नंदकुमार ।
बाम भाग बृषभान नंदिनी ललितादिक गावें सिंघ द्वार ॥
कंचन थार लिये जु कमल कर मुकुताफल फूलन के हार ।
रोरी सिर तिलक बिराजत करत आरती हरख अपार ॥
यह जोरी अविचल स्री बृन्दावन देत असीस सकल ब्रजनार ।
कुंज महल में राजत दोऊ 'परमानन्ददास' बलिहार ॥

[६६१] राग बिलावल

डगर चल गोवरधन की बाट ।
खेलत बीच मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन के ठाट ॥
चल री सखी तोहि जाय मिलाऊँ सुन्दर बदन सरोज ।
कमल नयन के एक रोम वर बारों कोटि मनोज ॥
पाहुनी एक अनूपम आई आन गाम की ग्वार ।
'परमानन्द स्वामी' के ऊपर सरवसु डारों बार ॥

[६६२] राग बिलावल

भावे तोहि हरि को आनन्द केलि ।
मदन गोपाल निकट कर पाये ज्यों भावे त्यों खेलि ॥
कमल नैन की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि ।
प्रेम बिबस अरु सावधान ह्वै छूटी अलक सकेल ॥
तरुन तमाल के नंद के नंदन प्रिया कनक की बेली ।
यहै लपटानी 'दास परमानंद' मुकुत पायन सौं ठेली ॥

[६६३] राग जंगला

मैया भूषन अपने लैरी ।
मोर चंद्रिका काँच की मनियाँ गुंजा फल मोहि दै री ॥
दुरादुरी मैं खेलत सखन संग खेलत हौं जो पाऊं ।
मुख ससि प्रभा बराइ[1] राखों. इन छबि कहाँ दुराऊँ ॥
आज सदन वृषभान गोप के खेलत हौं जु गयो ।
सगरे सखा अगमने भाजे हौं ही चोर भयो ॥
जबहि वृखभान गोप घर आयौ गहि अंचर मोहि रोक्यौ ।
बदन चूमि मिष्टान हाथ धरि अंग अंग अवलोक्यौ ॥
तब वृखभान सभा ते आए ए नंदकुमार न होई ।
'परमानंद' कुंवरि कौ दूलह कहत हुते सब कोई[2] ॥

राजभोग के पद

[६६४] राग सारंग

राधे हरि तेरो बदन सराह्यो ।
बार बार सुनि सारंग नैनी यहै ध्यान मुख गायो ।
लै दरपन अपने मुख निरखत बदन मोरि मुसकायो ।
बाबा की सौं हौं सब जानत तेरे हाथ ते बिकायो ॥
बार बार हरि करत प्रसंसा मोहू ते अति नीको ।
'परमानन्द' कोउ आन मिलावै परम भावती जिय को ॥

---

१ मुख मुसकानि मंद अवलोकत
२ वर सोई

[६६५] राग सारंग

सोहत स्याम मनोहर गात ।
सेत परदनी अति रस भीनी केसर पगियाँ माथ ॥
करन फूल प्रतिबिम्ब कपोलन अंग अंग मनमथ ही लजात ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर निरख बदन मुसकात ॥

[६६६] राग सारंग

पीत पिछोरी कहाँ जो बिसारी ।
ये तो लाल ढिगन की ओढ़े है काहु की सारी ॥
हों वाहि बाट पिवावत गैया जहाँ भरत पनिहारी ।
भोर भयी गैया सब बिडरी मुरली भली जो सँवारी ॥
हौं लै भाज्यो और की वे लै गई जो हमारी ।
'परमानंद' बल बल बतियन पर तन तोरत महतारी ॥

[६६७] राग सारंग

सुन्दर मुख की हौं बल बल जाऊँ ।*
लावन्य निधि गुननिधि सोभा निधि देख देख जीवत सब गाऊँ ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रकट रुचिर ठांई ठाऊँ ।
तामें मृदु मुसकाय हरत मन न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ ॥
सखा अंस पर बाहु दये आछे बिकी बिन मोल बिकाऊँ ।
'परमानन्द' नंदनंदन को निरखि निरखि उर नयन सिराऊँ ॥

* उपर्युक्त पद राजभोग के समय श्रीनाथ जी के सम्मुख गाए जाते है—सपादक

[६६८] राग सारंग

सिर धरे पखौवा मोर के ।
गुंजा फल फूलन के लटकन सोभित नंद किसोर के ।।
ग्वाल मंडली मध्य बिराजित कौतुक माखन चोर के ।
नाचत गावत बेनु बजावत अंस भुजा सखा ओर के ।।
तैसेई फरहरात रंग भीने छबि पीताम्बर छोर के ।
'परमानंददास' को ठाकुर मन हरत नयन की कोर के ।।

[६६९] राग सारंग

ता दिन ते मोहि अधिक चटपटी ।
जा दिन ते देखे इन नयनन गिरिधर बाँधे माई पाग लटपटी ।
चलेरी जात मुसकात मनोहर हँसि जो कहो एक बात अटपटी ।
हौं सुनि स्रवनन भई अति व्याकुल परी जो हिरदै में मदन सटपटी ।।
कहा री करू गुरुजन भये बैरी बैर परे मोसों करत खटपटी ।
'परमानंद प्रभु' रूप विमोही नंद नंदन सों प्रीति अति जटी ।।

[६७०] राग मल्हार

कदम तर भलीभाँत भयो भोजन ।※
हलधर कहत करो अब अचवन गैया भूली मोजन ।।
जो भावे सो लैहौ और कछु कहत सखा सब नांहि ।
चलो[१] अब गायन देखो 'परमानंद' घटा चहूंदिसि छांइ ।।

※ प्रस्तुत पद भोग सरने के समय गाए जाते हैं ।
१ चलो

[६७१] राग सारंग

भोजन कीन्हों री गिरिवरधर ।*
कहा बरनों मंडल की सोभा मधुवन ताल कदम्ब तर ॥
पहिले लिये मनोरथ बिंजन जे पठये ब्रज घर घर ।
पाछें डला दियो स्रीदामा मोहन लाल सुघर बर ॥
हंसत सयानो सुबल सैन दे लाल लियो दोंना कर ।
'परमानन्द प्रभु' मुख अवलोकन सुरभी भीर परस्पर ॥

[६७२] राग विभास

ब्रज में काछिन बेचन आई ।+
आन उतारी नंद गृह आँगन ढयोड़ो फलन सुहाई ॥
लै दौरे हरि फेंट अंजुली सुभकर कुँवर कन्हाई ।
डारत ही मुकुताफल ह्वै गये जसुमति मन मुसकाई ॥
जे हरि चार पदारथ दाता फल बांछित न अघाई ।
'परमानन्द' याको भाग्य बड़ो है विधि सों कहा बस्याई ॥

[६७३] राग सारंग

कोउ माइ आँम बेचन आई ।
टेर सुनत मोहन उठ दौरे भीतर भवन बुलाई ॥
मैया मोहि आंम लै दे री संग सखा बल भाई ।
'परमानंद' जसोमति लै दोने खाये कुंवर कन्हाई ॥

---

* प्रस्तुत पद उष्णकाल में भोग सरने के समय गाया जाता है ।—सपादक
+ प्रस्तुत पद फल फलारी अरोगाने का है ।—सपादक

[६७४] राग सारंग

कोउ माई बेर बेचन आई ।
सुनी टेर नंद रावल में भीतर भवन बुलाई ॥
सूकत धान परचो आँगन में कर अंजुली बनाई ।
ठमकि ठमकि चलत मोहन अपने रंग जसुमति लेत बलाई ॥
लिये चुचकार[१] हियो भरि आयो मुख चुम्बत मुसुकाई[२] ।
'परमानन्द' जसुमति[३] आन दिये फल खाये कुंवर कन्हाई ॥

[६७५] राग सारंग

लटकि लाल रहे स्री राधा के भर ।※
सुन्दर बीरी संवारि सुन्दरी हंसि हंसि जात देत मोहन कर ॥
सखी बृन्द सन्मुख भई ठाड़ी तिनसों केलि करत सुन्दर वर ।
ज्यों चकोर चंदालन चितवन त्यों आली निरखत गिरिवरधर ॥
कुंज कुटीर और बाग बृन्दावन बोलत मोर कोकिला तरुपर ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन बलिहारी या लीला छबि पर ॥

[६७६] राग सारंग

पान मुख बीरी राची हरि के रंग सुरंगे ।
ऐसी कृपा सदा हम ऊपर टारो जिन तुम संगे ॥
हरि हम तुम बिनु कौन काम के करत प्रेम में भंगे ।
'परमानन्द' दूध मे पानी ज्यों मिलवो अंग मे अंगे ॥

---

१ रिझाय करि गोपी
२ न अघाई
३ स्वामी आनन्दे वहुत वैर जवगाई
※ बीरी (तांबूल) अरोगने के पद हैं ।—संपादक

[६७७] राग टोड़ी

बीरी देत बनाय बनाय ।*
पीरे पान सुगन्ध सुपारी लोगन कील लगाय ।
लेत लाल कर जोर देत वे मुख मेलत मुसकाय ।
बीरिन को देत उगार 'प्रभु परमानंद' बलजाय ।।

संध्या आरती का पद

[६७८] राग गौरी

आरती जुगल किसोर की कीजै ।
तन मन धन न्योछावर दीजै ।।
गौर स्याम मुख निरखत जीजै ।
प्रेम स्वरूप नयनन भर पीजै ।।
रबिससि कोटि बदन की सोभा ।
ताहि देखत मेरो मन लोभा ।।
फूलन की सेज फूलन गलमाला ।
रतन सिंहासन बैठे नंदलाला ।।
मोर मुकुट कर मुरली सोहै ।
नटवर भेस निरख मन मोहै ।।
ओढ़े नील पीट पट साड़ी ।
कुंजन ललना लाल बिहारी ।।
स्री पुरुषोत्तम गिरिवरधारी ।
'परमानंद स्वामी' अविचल जोरी ।।

---

* उष्णकाल में वीरी (तांबूल) अरोगाने का पद है ।—संपादक

उत्थापन के पद

[६७९] राग नट

सुबल स्रीदाम कह्यो सखन सों अर्जुन संख बजैये ।
घर जैबे की भई है बिरियाँ स्री गिरिधर लाल जगैये ।।
ठौर ठोर तै मधुर धुनि बाजे मधुर मधुर सुर गैये ।
कुंज सदन जागे नंद नंदन मुदित बीरा फल लैये ।।
हरि भगतन के पूरे मनोरथ गोकुल ताप नसैये ।
मटकत आवत कमल फिरावत 'परमानंद' बलिजैये ।।

[६८०] राग नट

लाडिले यह जल जिनहि पियो ।
जब आरोगोगे तब भरि लाऊं तातो डार दियो ।।
उठो मन मोहन बदन पखारो सुन्दर लोट लियो ।
तुम जानत हम अब ही पौढ़े पहरहि द्यौस रह्यौ ।।
सुनि मृदु वचन स्याम उठ बैठे मान्यो मात कह्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' भये हैं भूखे मैया मेवा मिष्ट दयौ ।।

[६८१] राग पूर्वी

ग्वाल कहत सुनो हो कन्हैया ।
घर जेवे की भई है विरियाँ दिन रह्यो घड़ी छैया ।।
संख धुनि सुनि उठे हैं मोहन लावो हो मुरली कहाँ धरैया ।
गैया सगरी बगदावोरे घर को टेर कहत बलदाउ भैया ।।
कन्द मूल फल तर मेवा धरी ओट किये मुरकैया ।
आरोगत ब्रजराय लाडिलो झूंठन देत लरकैया ।।
उत्थापन भयो पहोर पाछलो ब्रजजन दरस दिखैया ।
'परमानंद' प्रभु आये भवन में सोभा देख बलजैया ।।

पौढ़ायवे के पद

[६८२] राग केदारो

महल में बैठे मदन गोपाल ।
भीतर जान सोई पावै जाहि बौलै नंदलाल ।।
सुन्दर स्याम सुभग तन चंदन [चरचित] उर सोभित बनमाल ।
नंद को लाल संग राधा के करत रंग रस ख्याल ।
विविध बिनोद करत रस क्रीडा सिज्या फूल गुलाल ।।
'परमानंददास' द्वारै ठाढ़ो चितवत नैन बिसाल ।।

[६८३] राग केदारो

राधा माधौ को मुख नीको ।
देखि नयन हरि मोहन मूरति मिल्यो भाँमतो जीको ।।
सघन निकुंज कुंज बल्लरी ठौर भलो तैं पायो ।
तेरी चौप प्रीति मैं जानी आँनि समीप बसायो ।।
अब जिन टरन देहु तुम ह्यांते जो भावै सो कीजै ।
'परमानंददास' को ठाकुर सरबसु दे रस लीजै ।।

सयन समय के पद

[६८४] राग कल्यान

अमृत निचोय कियो एक ठौर ।
तुम्हरे वदन सुधारि[1] सुधानिधि तबतैं बिधना[2] रची न और ।
सुन राधे उपमा कहा दीजै स्याम मनोहर भयो री चकोर ।
सादर पान[3] करत तोहि देखत तृसित काम[4] बस नंदकिसोर ।।
कौन कौन अंग करौं री निरूपन गुन और सील रूपकी रास ।
'परमानन्द स्वामी' मन बेध्यो लोचन बँधे प्रेम की पास[5] ।।

---

१ सवारि
२ तादिन विधना
३ पिवत मुदित
४ उर
५ प्यास

[६८५] राग सारंग

माई री[1] चित चोर चोरत आलीरी बांके लोचन नीके।
यहै मूरत खेलत नयनन मे लाल भावते जिय के॥
एक बार मुसकाय चले जब हिरदै गढ़े गुन पीके।
'परमानन्द' कोऊ आन मिलाओ पौढे बतरस या तीके[2]॥

[६८६] राग कलयान

तेरे जिय बसत गोविंद पैंयां।
काहे कों अब दुराव करत री मोसों जानत हूँ परखत परछैयां॥
दिष्टि सुभाव जनावत हो भामिन सोई जक लाग रही मन महीयाँ।
'परमानंद स्वामी' की प्यारी हाव भाव दै चली गल वहियां॥

[६८७] राग सारग

आँखिन आगे स्याम उदय भे कहन लागी गोपी कहाँ गये स्याम।
आदि हू स्याम अंतहुँ स्याम, रोम रोम रम रह्यो स्याम[3]॥
मधुवन आदि सकल वन ढूंढ्यो निधुवन कुंजन धाम।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अंग अंग अभिराम॥

---
१ मोनन चितै
२ तिय के
३ काम

[६८८] राग सारंग

कहे राधा देखहु गोविंद ।
भलो बनाव बन्यो है बन को पूरन राका चंद ॥
मंद सुगंध सीतल मलयानिल कालिन्दी के कूल ।
जाइ जुही मल्लिका जूथी फूले निरमल फूल ॥
सब अभिलाख होत है मन के मन ही रहत जिय साध ।
तुम्हारे समीप कौन रस नाँहो नाथ सकल सुखसाध ॥
सुनिकै बचन बहुत सुख मान्यो हंसि दीनी अंकवारि ।
'परमानंद प्रभु' प्रीतु जु जानी नागर रसिक मुरारि ॥

उष्णकाल पौढवे के पद

[६८९] राग विहाग

दोऊ मिल पोढै सजनी देख अकासी ।
पटतर कहा दीजै गोपीजन नैनन कों सुख रासी ॥
स्यामा स्याम संग यों राजत है मानो चंद्रकला सी ।
कुसुम सेज पर स्वेत पिछौरी सोभा देत है खासी ॥
पवन ढुरावत नैन सिरावत ललिता करत खवासी ।
मधुरै सुर गावन केदारो 'परमानन्द' निज दासी ॥

[६९०] राग विहाग

पौढे रंग महल ब्रज नाथ ।
रंग रस की करत बतियाँ राधिका लै साथ ॥
दोउ ओढ रजाइ क्रीडत ग्रीवा भुजा भर बाथ ।
'परमानंद' प्रभु काम आतुर मदन कियो सनाथ ॥

---
१ राघ

[६६१] राग केदारो

सुखद सेज पौढ़े स्रीवल्लभ संग लिये स्रीनवनीत प्रिया ।
ज्यों जसुमति सुत नंदनंदन को त्यों प्रमुदित मनलाय हिया ॥
हुलरावत डुलरावत गावत अँगुरिन अग्र दिखाय दिया ।
कहत न बने देखत द्दग नैनन सो दुख बिसरत सुख होत जिया ॥
डरत जात बालक संग पौढे हाव भाव चित चाव किया ।
'परमानंददास' गोपीजन सो जस गायो घोख त्रिया ॥

पौढ़बे के पद

[६६२] राग केदारो

पौढे माई ललन सेज सुखकारी ।
मनिगन खचित रंग महल मे संग स्री राधा प्यारी ॥
सहचरि गान करत मधुरे सुर स्रवन सुनत सुर हितकारी ।
जन मन मगन भये पिय प्यारी निरख 'परमानंददास' बलिहारी ॥

[६६३] राग केदारो

पौढे हरि झीनो पट दै ओट ।
संग स्रीवृषभान तनया सरस रस की मोट ॥
झलक कुंडल अलक अरुझी हार गुंजा ताटंक ।
नील पीत दोउ अदल बदलें लेत भर भर अंक ॥
हृदै हृदै सों अधर अधर सो नैन सौं नंन मिलाय ।
भौंह भौंह सो तिलक तिलक सों भुज सों भुज लपटाय ॥
मालती और जाई चम्पा सुभग जाती वकूल ।
'दासपरमानन्द' सजनी देत चुन चुन फूल ॥

[६९४] राग विभास

कुंज भवन में पौढ़े दोऊ ।
नंदनंदन बृखभान नंदिनी उपमा को दूजो नहि कोऊ ॥
लाल कुसुम की सेज बनाई कोक कला जानत है सोऊ ।
रस मे माते रसिक मुकुट मनि 'परमानंद' सिघ द्वारे होऊ ॥

कहानी के पद—

[६९५] राग विहाग

सुन सुत एक कथा कहुँ प्यारी ।
नंदनंदन[1] मन आनन्द उपज्यो रसिक सिरोमनि देत हुते हुँकारी ॥
दसरथ नृप जो हते रघुबंसी तिनके प्रकट भये सुत चारी ।
तिन मे राम एक व्रत धारी जनक सुता ताके घर नारी ॥
तात बचन सुन राज त्यज्यो है भ्राता सहित चले बनवारी ।
धावत कनक मृगा के पाछे राजीवलोचन केलि बिहारी ॥
रावन हरन कियो सीता कौ सुन नंदनंदन नींद निवारी ।
'परमानंद' प्रभु रटत चाप कर लछमन दे जननी भ्रम भारी ॥

[६९६] राग विभास

राम कृष्न दोऊ सोये भाई ।
कहानी कहत जसोदा रानी सुनत हैं दोऊ अति ही मनलाई ॥
जब जान्यो हरि सोय गयेरी तब चुप रही जसोदा माई ।
यह सुन नंदभवन में नित ही देख देवगन मन ही सिहाई ॥
जाको नाम रटत सिव सारद सेस सहस मुख गीत न पाई ।
'परमानंददास' को ठाकुर निज भगतन के अति सुखदाई ॥

---

१ कमल नैन

आरती के पद

[६६७] राग सारंग

आरती गोपिका रमन गिरिधरन की निरखत ब्रज युवति आनंद भीनी ।
मनि खचित थार घनसार बाती बरै ललित ललितादि सखी हाथ लीनी ।।
बिहरत स्री कुंज सुख पुंज प्रिय संग मिलि विविधि भोजन किये रुचि नबीनी ।
'दास परमानंद' कहत नवल गोपाल प्रभु परम कृपा कीनी ।।

साँज समय घैया के पद

[६६८] राग गौरी

निरख मुख ठाड़ी ह्वै जु हँसे ।
धौरी धेनु दुहत नंदनंदन लाडिली हिय में बसे ।।
सेली हाथ बछरुवा मिलवत कौन कौन छबि लागे ।
मोतिन थार दोहनी चाँपत मन उपजत अनुरागे ।।
यह लीला ब्रह्मा सिव गाई नारदादि मुनि ग्यानी ।
'परमानंद' बहुत सुख पायो अरु सुक ब्यास बखानी ।।

[६६९] राग गौरी

नेक पठै गिरिधर जु कों भैया ।
रही विन स्याम पत्याय न काहू सुंघत नाहिनै अपनी लैया ।।
ग्वाल वाल सब सखा संग के पचिहारे बलदाउ भैया ।
हूंक हूंक हेरत सब ही तन इनही हाथ लगी मेरी गैया ।।
सुनि तिय वचन कौर हाथ ही दुहुँ दिसि चितवत कुंवर कन्हैया ।
'परमानंद' जसुमति मुसकानी संग दियो गोकुल को रैया ।।

[७००] राग गौरी

ढौटा कौन कौ मन मोहन ।
सन्ध्या समे खिरक में ठाढ़ौ सखी करत गो दोहन ॥
ग्वालनी एक पाहुनी आई देख ठगी सी ठाडी ।
चित चलि गयो मदन मूरति पै प्रीति निरन्तर बाढ़ी ॥
चल न सकत पग एक सुन्दर चित चोर्यो ब्रजनाथ ।
'परमानंददास' वहै जानै जिहि खेल्यौ है मिलि साथ ॥

[७०१] राग गौरी

गोविंद तेरी गाय अति बाढ़ी ।
सुन ब्रजनाथ दूध के लालन मेल सकों नहीं लाढी ॥
अपनी इच्छा चरें उजागर संक न काहू की माने ।
तुम्हे पत्याय स्याम सुन्दर तुम्हारो कर पहचाने ॥
ऊँचे कान करत मोय देखत उझक उझक होय ठाड़ी ।
'परमानन्द' नंद जूके घर की बाल दसा की बाढ़ी ॥

अथ घैया के पद

[७०२] राग गौरी

तुम पै कौन दुहावत गैयाँ
गूढ भाव सुचत अंतर गति अतिसै कान कीन्ह कन्हैयाँ ॥
गुपुत प्रीति तासो मिलि कीजै जो होय तुम्हारी रैया[१] ।
बार बार लपटात फिरत हो यहै सिखायो मैया ॥
ले जु रहे कर कनक दोहनी बैठे हो अध पैयाँ ।
'परमानंद' त्यो हठ मंड्यो ज्यों घर खसम गुसैयाँ ॥

---
१ रियाया [अर्थ]

[७०३] राग कल्यान

प्रथम सनेह कठिन मेरी माई।
दिष्टि परे बृषभान नंदनी अरुझे[१] नयन निरबार न जाई॥
बछरा छोरि खिरक मे दीने आपुन झमकि[२] तिरिछी सी आइ।
नौबत बृषभ गई मिलि गैयाँ हँसत सखा कहा दुहत कन्हाई॥
चारों नयन मिले जब सन्मुख नंदनंदन कों रुचि उपजाई।
'परमानन्ददास' वह नागरी नागर सों मनसा अरुझाई॥

[७०४] राग कल्यान

गावत मुदित खिरक में गोरी सारंग मोहनी।
बार बार को बदन निहारत हाथ कनक की दोहनी॥
कनकलता सी चंपक बरनी स्याम तमाल गोपाल की जोरी।
ठाड़ो निरख निकट तन मन सों नंदनंदन की प्रीति न थोरी॥
उपमा कहा देहु[३] को लायक उनमद रूप नागरि वह नागर।
प्रीत परसपर ग्रंथि न छूटे 'परमानंद स्वामी' सुख सागर॥

ब्यारूके पद

[७०५] राग कान्हरो

ब्यारू कीजै मोहन राय।
मधु मेवा पकवान मिठाई विंजन सरस बनाय॥
दार भात और कढ़ी बरी की मिस्री पनो छनाय।
'परमानन्ददास' को ठाकुर बलदाउ संग लाय॥

---

१ अरू मे
२ झिमिकि वरिछी
३ देन

[७०६] राग मयन

लाडिले बोलत है तोहि मैया ।
संभा समें गोधन संग ग्रावत चुंबन लेकर गोद बैठैया ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध भात ग्ररु दार बनाई ।
'परमानन्द' प्रभु करत बियारू जसुमति देख बहुत सुख पाई ॥

[७०७] राग भूपाली

तेरे पैयाँ लागूँ गिरिधर भोजन कीजै ।
उलटत पलटत भंगुलिया भीजै खात खिवावत सुन्दर तन छीजै ॥
फेनी पापर खुरमा खाजा गुंजा मिस्री लडुवा लीजै ।
बाँट देत सब ग्वाल बालन को 'परमानन्द' जननी कर लीजै ॥

[७०८] राग भूपाली

चलो लाल बियारू कीजे दोऊ भैया एक थारी ।
दूध भात ग्ररु दार बनाई बोलत है रोहिनी महतारी ॥
इतनो सुनत मन हरखत संग उठि चले देत किलकारी ।
'परमानंद प्रभु' की बतियन पर जसोमति बलिहारी ॥

[७०९] राग कान्ह्रो

वियारू करत है बलवीर ।
आस पास सब सखा मंडली सुबल सखा मति धीर ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई औटि सिरायो छीर ।
हँसत परस्पर खात खवावत झपट लेत कर चीर ॥
यह सुख निरख निरख नंदरानी प्रफुलित अधिक सरीर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर भगत हेत अवतीर ॥

[७१०] राग यमन

आज सवारे के भूखे हो मोहन खावो मोहि लागो बलैया ।
मेरो कह्यो तू नहिं मानत हौं अपने बलदाऊ की मैया ॥
दौर के कंठ लाग्यो मन मोहन मेरी सौं कहि मेरो कन्हैया ।
'परमानन्द' कहत नंदरानी अपने आंगन खेलो दोऊ भैया ॥

दूध के पद

[७११] राग कान्ह्रो

दूध पियो मन मोहन प्यारे ।
बल बल जाऊँ गहरु जनि कीजै कमल नैन नयनन के तारे ॥
कनक कटोरा भरि भरि पीजै सुख दीजे संग लेहो बलभद्र पियारे ।
'परमानंद' मोहि गोधन की सौं उठत ही करूंगी धैय्यारे ॥

बीरी के पद

[७१२] राग कान्हरो

मथुरा नगर की डगर मे चल्यौ जात पायौ है हरि हीरा ।
सुनरी भट्ट लट्ट भयो डोलत गोकुल गाम को अहीरा ॥
बन तें जु आवत बेनु बजावत बंसीबट जमुना के तीरा ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर हंसि दीनौ मुख बीरा ॥

अथ हिलग के पद

[७१३] राग रामकली

अब तो कहा करों री माई ।
जबतें दिष्टि परौ नंदनंदन पल भर रह्यो न जाई ।
भीतर मात पिता मोहि त्रासत जे कुलगारि[1] लगाइ ।
बाहर सबै मुख मोरि कहत है कान्ह सनेहनि आइ ॥
निसबासर मोहि कल न परत है गृह अँगना न सुहाइ ।
'परमानंददास' को ठाकुर हँसि चित लियो है चुराइ ॥

[७१४] राग पूर्वी

हरि सो एक रस प्रीति रही री ।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपने नेम व्रत लै निबही री ॥
प्रथम भयो अनुराग दिष्टि तें मानो रंक निधि लूट लई री ।
कहत सुनत चित अनत न अटक्यो वा लगि जिय पैठ रही री ॥
मर्यादा उलघन सबही की लोक वेद उपहास सही री ।
'परमानन्ददास' गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कही री ॥

---

१ कुलनारि

[७१५] राग रामकली

ओढ़े लाल स्वेत उपरेनी अति झीनी ।
तनसुख स्वेत सुदेस अंस पर बहुत अरगजा भीनी ।।
अति सुगंध सीतल अरु चंदन सादा रचना कीनी ।
रही झुकि मुख पर पाग दुपेंची कोटि मदन छबि छीनी ।।
सूँथन बनी जरकसी सोभित गति गयंद की कीनी ।
'परमानंद प्रभु' चतुर सिरोमनि ब्रज बनिता प्रेमरस भीनी ।।

खंडिता के पद

[७१६] राग विभास

कमल नयन स्याम सुन्दर निसिके जागे हो आलस भरे ।
कर नख उर राजत हैं मानो अरध ससि धरे ।।
लटपटी सिर पाग खसित बदन तिलक टरे ।
मरगजी उर कुसुममाल भूषन अङ्ग अङ्ग परे ।।
सुरत रंग उमगि रहे रोम पुलक होत खरे ।
'परमानन्द' रसिकराय जाही के भाग ताही के ढरे ।।

[७१७] राग विभास

सांवरे भले हो रतिनागर ।
अबके दुराय क्यो दुरत है प्रीति जु भई उजागर ।।
अधर काजर नयन रँगमगे रची कपोलन पीक ।
उरनख रेख प्रकट देखियत हैं मरम की लीक ।।
पलटि परे तिलक गयौ मिट जहाँ कंकन गाढ़े ।
'परमानन्द' स्वामी मधुकर गति भली अपनी चाढ़े ।।

[७१८] राग देवगांधार

चले उठि कुंज भवन तें भोर।
रगमगात लर छूट रही है[१] पहरें पीत पटोर ॥
अरुन नयन घूमत अलसयुत[२] मानो रससिंधु झकोर[३]।
गिरि-गिरि परत कुसुम अलकावलि सोभित सो कचडोर ॥[४]
परे[५] नख अंग युगल कुच अंतर राजत उर[६] तन गोर।
'परमानंद' रमी निसा अबलो पलटि हँसी मुख मोर ॥

खंडिता के वचन

[७१९] राग बिलावल

भली करी जु आये हो सवारे।
बहुरि भान उदय होइगो प्रगट दिखाये अंक निन्यारे ॥
पलटे पीत नील पट ओढ़े ऐसी कौंन चतुर धनि भावत।
एते मान देह सुधि भूली तुमही जु अपुनपौ बिसरावत ॥
पाँव धारिये मया भई कर गहि बंस तलप[७] बैठारे।
'परमानन्द' प्रभु तुम पै रसपावत आपुन बेदन टारे ॥

[७२०] राग बिलावल

राधे बात सुनहि किन मेरी।
घर बैठे आई सखि मोपै सोहै करत हौं तेरी ॥
हौं आयो चाहत हो तुमपै बीच लियो उन घेरी।
बहुत चतुराई करिके देखी कैसेऊ जात न फेरी ॥
भवन आपने तानि लियो सखि अरु भई रैनि अँधेरी।
परबस परे 'दास परमानन्द' काहि सुनाउँ टेरी ॥

---

१ डगमगात लटकत लट छूटे
२ वस
३ हिलोर
४ सिथिल सों बन डोर
५ पद
६ हिय
७ अस किसलय

मान छूटबे के पद–

[७२१] राग केदारो

स्यामा जू कौं स्याम मनाय के आवत ।
ज्यौं ज्यौं कुंवरि चलत हौरे हौरे त्यौं त्यौं पाछे धावत ॥
कबहुँक आगे कबहुँक पाछे नैन सौं नैन जुरावत ।
कबहुंक पन्थ के तिनका तिनका दूर करन कौं धावत ॥
कछुक लच्छनता[1] रही है मान की तातें अति छबिपावत ।
ज्यों मदमत्त मतङ्ग सदाते डरपत रहत महावत ॥
अतिसय संक मोहन अति आतुर बानिक बहुत बनावत ।
परम रहसि गिरिधर रस लीला 'जन परमानन्द' गावत ॥

[७२२] राग केदारो

कौन रस गोपिन लीनो घूंट ।
मदन गोपाल निकट करि पाये प्रेम काम की लूट ॥
निरख स्वरूप नंद नन्दन को लोक लाज गई छूट ।
'परमानन्द' वेद मारग को मरजादा गई टूट ॥

देवीपूजन के पद

[७२३] राग केदारो

स्री राधे कौन गौर तै पूजी ।
बृन्दावन गोकुल गलियन में सब कोऊ कहत बहूजी ॥
मदन मोहन पियको मन हरि लीनौ कहा बात तोहि सूझी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर तो सम और न दूजी ॥

---
१ तीच्छनता

[७१

चले उठि कुंज भवन तें भोर।
रगमगात लर छूट रही है[1]
अरुन नयन घूमत अलसयुत[2]
गिरि-गिरि परत कुसुम अलका
परे[5] नख अंग युगल कुच अंतर
'परमानंद' रमी निसा अबलो

खंडिता के वचन

[७१९

भली करी जु आये हो सवारे।
बहुरि भान उदय होइगो प्रगट
पलटे पीत नील पट ओढ़े ऐसी क
एते मान देह सुधि भूली तुमही
पाँव धारिये मया भई कर ग
'परमानन्द' प्रभु तुम पै रसपावत

[७२०]

राधे बात सुनहि किन मेरी।
घर बैठे आई सखि मोपै सोहै
हौं आयो चाहत हौ तुमपै बीच
बहुत चतुराई करिके देखी कैसे
भवन आपने तानि लियो सखि अर
परबस परे 'दास परमानन्द' का

---

१ डगमगात लटकत लट छूटे
२ बस
३ हिलोर
४ सिथिल सों बन डोर
५ पद
६ हिय
७ अस किसलय

[७२६] राग सूहो

कमल मुख देखत तृपति न होय ।
यह[१] सुख कहा दुहागनि[२] जाने रही निसा भर सोय ॥
जो चकोर चाहत उड़राजै चंदभवन ह्व रही जोय[३] ।
नेक अकोर देत नहीं राधा चाहत पियहि निचोय ॥
उनतो अपुनो सरबसु दीनो एक प्रान वपु दोय ।
भजन भेद न्यारो 'परमानन्द' जानत बिरलो कोय ॥

[७२७] राग सारंग

घाट पर ठाड़े मदन गोपाल ।
कौन जुगुति करि भरोरी जल हौं पर्यो है हमारे ख्याल ॥
द्यौस बढ़्यौ घर सास रिसै है चल न सकत एक चाल ।
कहा करूँ अब यों नहि मानत सुन्दर नंद को लाल ॥
कछुक संकोच, कछू चोप मिलन की परी प्रेम की जाल ।
'परमानन्द स्वामी' चित चोर्यो वेनु बजाय रसाल ॥

[७२८] राग सारंग

नैक लाल टेको मेरी बहियाँ ।
औघट घाट चढ्यो नहि जाई रपटत हौं कालिन्दी महियाँ ॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप गुवाल अरुझानी ।
उपजी प्रीति काम उर अन्तर तव नागर नागरी पहचानी ॥
हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै ।
'परमानन्द' ग्वालिन सयानी कमल नयन कर परस्योहि भावै ॥

१—इह
२—आन वात सुध गुनि रही
३—चन्द्र मुख जोई

पनघट के पद

[७२४]

राग सूहो

आवै बाबा नन्द को हाथी ।
बाहु बिसाल कमल दल लोचन संकर्षन कौ साथी ॥
अपनी इच्छा रहत ब्रज भीतर ग्वालन के संग खेलै ।[१]
केसी तृनावर्त जहँ मारे शकटन पायन पेले[२] ॥
बसुदेव अरू देवकी नन्दन कंस बंस को काल ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नायक नंद को लाल ॥

[७२५]

राग सूहो

कोऊ मेरे आँगन ह्वै जु गयो ।
झलकत[३] जोती वदन की माई सुपनों सो जु भयो ॥
हौं दधि माट मेलि सुन सजनी लेन गई जु मथानी ।
कमल नयन की माईं चितयो वह मरत मैं जानी ॥
चल[४] नहीं सकत देह गति थाके बहोत ही दुख मैं पायो ।
'परमानन्द' चरन गहि रहति तू कति मेरे ह्वै आयो ॥[५]

१—खेल्यौ
२—पाद गहिपेल्यौ
३—जगमग
४—पग नहीं चलत
५—परमानन्द प्रभु चरन सरन गहि रहति तू किन गृह में आयो

[७२६] राग सूहो

कमल मुख देखत तृपति न होय ।
यह[१] सुख कहा दुहागनि[२] जाने रही निसा भर सोय ॥
जो चकोर चाहत उड़राजै चंदभवन ह्वै रही जोय[३] ।
नेक अकोर देत नहीं राधा चाहत पियहि निचोय ॥
उनतो अपुनो सरबसु दीनो एक प्रान वपु दोय ।
भजन भेद न्यारो 'परमानन्द' जानत बिरलो कोय ॥

[७२७] राग सारंग

घाट पर ठाड़े मदन गोपाल ।
कौन जुगुति करि भरोंरी जल हौं पर्यो है हमारे ख्याल ॥
द्यौस बढ़्यौ घर सास रिसै है चल न सकत एक चाल ।
कहा करूँ अब यों नहि मानत सुन्दर नंद को लाल ॥
कछुक संकोच, कछू चोप मिलन की परी प्रेम की जाल ।
'परमानन्द स्वामी' चित चोर्यो वेनु वजाय रसाल ॥

[७२८] राग सारंग

नैक लाल टेको मेरी बहियाँ ।
औघट घाट चढ्यो नहि जाई रपटत हौं कालिन्दी महियाँ ॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप गुवाल अरुझानी ।
उपजी प्रीति काम उर अन्तर तब नागर नागरी पहचानी ॥
हँसि व्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै ।
'परमानन्द' ग्वालिन सयानी कमल नयन कर परस्योहि भावै ॥

१—इह
२—जान बात सुध गुनि रही
३—चन्द्र मुख जोई

[७२६] राग सारंग

ललन उठाय देहो मेरी गगरी ।
बलिबलि जाउं छबीले ढोटा ठाड़े देत अचगरी ।
जमुना तीर अकेली ठाड़ी दूसरो नाहिन कोऊ ।
जासौं अब कहौं स्याम घन सुन्दर संग अब नाहिन होऊ ।।
नंद कुमार कहैं नेक ठाड़ी रहि कछुक बात कर लीजै ।
'परमानन्द प्रभु' संग मिले चल बातन के रस भीजै ।।

[७३०] राग सारंग

ठाढो री देखौ जमुना घाट ।
कहा भयो घर गोरस बाढ्यो और गोधन के ठाट ।।
जात पांत कुल कौन बड़ो है चले जाहु किन बाट ।
'परमानन्द' प्रभु रूप ठगौरी लगत न पलक कपाट ।।

[७३१] राग सारंग

आवत री जमुना भर पानी ।
सांवरे बरन ढोटा कौन को री [माई] बांकी चितवन
गैल भुलानी ।।
हौं सकुची मेरे नैना सकुचे इन नयनन के हाथ बिकानी ।
'परमानन्द' प्रभु प्रेम समुद्र में ज्यों जलधर की बूंद समानी ।।

अक्षय तृतीया

[७३२] राग भैरव

सीतल[1] चरन बाहु भुज बलमे जमुनतीर गोकुल ब्रज महीया।
सीतल पान छरी सुभ चरनन नित[2] डुपटी अति जतन कहीयाँ।।
गोवर्धन अरु बृन्दावन तरुवर सीतल छैयाँ।
जब घूमत दध मथना सीतल पीबत गोरस को गैयाँ।।
सोवत तें जागत मनमोहन अखियाँ सीतल करत कन्हैया।
गोपीजन नैन के भाजन सुबसबसो ब्रज हलधर घर भैया।।
निरख सीतल ब्रजवास निरख मुख मंगल मूरत जसोदा मैया।
'परमानन्द' सीतल सरसाने बदन कमल की लेत बलैयाँ।।

[७३३] राग सारंग

अक्षय भाग सुहाग राधे को प्रीतम को दिन रतियाँ।*
चंदन पूजि प्रीतम सुख दीजै रीझ रीझ यहे कहो बतीयाँ।
अक्षय सुजस कहाँ लौं भाखौं पार न पावत सेस मुख जतियाँ।
छूट्यो मान सहज 'परमानन्द' सुभ दिन नीको अक्षय तृतीयाँ।।

[७३४] राग सारंग

आज धरे गिरिधर पिय धोती।
अतिही नीकी अरगजा भीनी पीतांबर घन दामिनी जोती।।
टेढ़ी पाग भृकुटी छबि राजत स्याम अंग अद्भुत छबि छाई।
मुक्तामाल फुली बन जाई 'परमानन्द' प्रभु सब सुखदाई।।

---

१ निरखि
२ हिय
* प्रस्तुत मान परक पद अक्षय तृतीया पर गाए जाते हैं—संपादक

[७३५] राग सारंग

बन्यो बागो बामना चंदन को।
चम्पकली की पाग बनावत भाल तिलक नव वंदन को ॥
चोली की छबि कहत न आवै काछोटा मन फंदन को।
'परमानन्द' आनन्द तहां नित सुख निरखत नंदनंदन को ॥

ंदन के पद:—

[७३६] राग सारंग

चंदन को बंगला अति सोभित बैठे तहां गोवर्धन धारी।
सोभित सबै साज बहु औरन संगराजत वृषभान दुलारी ॥
अति सुदेस सारी झरोखो अति ही विचित्र बनि चित्रसारी।
रतन जटित सरीर बिराजत स्रीनवनीत प्रिय सुखकारी ॥
चहूँ ओर ब्रजबनिता निरखत रतन जटित न्योछावर बारी।
'परमानन्द' प्रभु के हित कारन सुभग सेज रुचि रसबाढ़ी।

[७३७] राग बिहाग

मान री मान मेरो कह्यौ।
मदन गोपाल लाल गिरिधरन बिनु अनत न तोपै रह्यौ ॥
प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ।
नंद गोप सुत माँगि भलो वर भागि आपने तै जु लह्यौ ॥
जब हरि पठई तब हौं आई पानि पानि व्रजनाथ गह्यौ।
'परमानंददास' गिरिधर विनु यह रस जात अकाथ बह्यौ ॥

स्नानयात्रा के पद

[७३८] राग टोड़ी

करत गोपाल जमुना जल क्रीड़ा।
सुर नर असुर थकित भए देखत बिसर गई तनमन जिय पीड़ा ॥
मृगमद तिलक कुंकुमा चंदन अगर कपूर बास बहु मुद वन।
कछु मुद मगन रसिक नंदनंदन कमल पानि परस्पर छिरकन ॥
निरमल सरद कलाकृति सोभा बरखत स्वाँति बूँदजल मोती।
'परमानंद' बचन मन गोपी मरकत मनि गोंबिद मुख जोती ॥

[७३९] राग टोड़ी

लाल कौ छिरकत है ब्रजबाल।
जमुना जल उछलत चहुंदिसतें हँसत हँसावत ग्वाल ॥
बाँह जोटी फिरत परसपर पीत कमल मनिमाल।
'परमानन्द' प्रभु तुम चिरजीयो नंद गोप के लाल ॥

[७४०] राग टोड़ी

पूरन मास पूरन तिथि स्री गिरिधर करत स्नान मन भायौ।
अति आनंद सों न्हवावत स्री विट्ठल ज्यों विधि वेद बतायौ ॥
उत्तम ज्येष्ठ ज्येष्ठा नच्छत्र होत अभिषेक भगतन मन भायो।
'परमानन्द' लाल गिरवरधर अति उदार दरसायौ ॥

[७४१] राग टोड़ी

घट भरि चली चंद्राबल नारी ।
मारग मे खेलत मिले घनस्याम मुरारी ।।
नयन सो नयन मिले मन रह्यौ लुभाय ।
मोहन मूरति मन बसी पग धर्यो न जाय ।।
तब की प्रीति प्रकट भई पहली भेट ।
'परमानंद' ऐसी मिली जैसे गुड़ मे चेंट ।।

रथयात्रा के पद

[७४२] राग मलार

देखौ माई रथ बैठे गिरिधारी ।
राजत परम मनोहर सब अग संग राधिका प्यारी ।।
मनि मानिक हीरा कुन्दन रुचि डाँडी पाँच प्रवारी ।[१]
विधि करि रच्यो विचित्र विधाता अपने हाथ सवारी ।।
गादी सुरंग ताफता सुन्दर लरे बाँह छबि न्यारी ।[२]
छत्र अनूपम हाटक कलसा झूमक लर मुक्तारी ।।
चपल बहै चलत हंस गति उपजत है छबि भारी ।
दिव्य डोरि पंचरंग पाट की कर गहै कुञ्ज बिहारी ।।
बिहरत ब्रजबीथिन बृन्दावन गोपी जन मनुहारी ।[३]
कुसुमांजलि बरषत सुरनर मुनि 'परमानंद' वलिहारी ।।

---

१ चार सँवारी
२ भारी
३ मन ढारी

[७४३] राग बिलावल

तुम देखौ माई रथ बैठे गोपाल ।
हीरा मोती पाँत बनी है बिचबिच राजत लाल ॥
बेरख फरहरात कलसन पर अरुन हरित बहुरंग ।
अति ही विचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा सोभित चार तुरंग ॥
खैंचत ग्वाल बाल सब संग के करत कुलाहल भारी ।
किलकत हँसत दोऊ री भैया मुदित होत गिरधारी ॥
खेलन चले सुभग बृन्दाबन सोभा बरनि न जाई ।
या छवि पर तन मन धन वारत 'दास परमानंद' पाई ॥

नाव के पद

[७४४] राग सारंग

बैठे घनस्याम सुन्दर खेवत हैं नाव ।
आज सखी मोहन संग खेलवे को दाव ॥
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोलै ।
गोपिन प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोलै ॥
पथिक हम खेवट तुम लीजिऐ उतराई ।
बीच धार माँझ रोकि मिष ही मिष डुलाई ॥
डरपत हौं स्याम सुन्दर राखिये पद पास ।
याहि मिष मिल्यों चाहे 'परमानन्ददास' ॥

[७४५] राग सारंग

जमुना जल खेवत हैं हरि नाव ।
वेग चलो बृषभान नन्दिनी अब खेलन को दाव ॥
नीर गम्भीर देख कालिन्दी पुन पुन सुरत करावै ।
वार वार तुव पंथ निहारत नैनन में अकुलावै ॥
सुन के वचन राधिका दौरी आई कंठ लपटानी ।
'परमानन्द प्रभु' छवि अवलोकत थिथक्यों सरिता पानी ॥

[७४६] राग गौड सारंग

माई मेरो हरि नागर सो नेह ।※
सुनरी सखी क्योंहू नहि छूटत[१] पूरबलो सनेह ।।
सब अंग[२] निपुन सकल ब्रज सुन्दर स्याम बरन सब देह[३] ।
जबते दिष्टि परौ नंदनंदन तब ते बिसर्यो गेह ॥
कोउ निंदौ कोउ बंदौ मन कौ गयौ संदेह[४] ।
सरिता सिन्धु मिलि 'परमानद' एकटक बरस्यो मेह[५] ॥

[७४७] राग सारंग

घन मे छिप रही ज्यों दामिनी ।
नंद कुँवर के पाछे ठाड़ी सोहत राधा भामिनी ॥
बाल दसा अपने रंग खेलत सरद सुहाई जामनी ।
'परमानन्द स्वामी' रस भीने प्रेम मुदित गजगामिनी ॥

[७४८] राग गौरी

छबीली भौंह तेरी लाल गिरिधर मानौं चढ़ी कमान ।
देखत रूप ठगौरी लागी लोचन मनसिज बान ॥
करतल बेनु अधर पुट दीने जबहि करत हौं गान ।
सुरपति नारि सुनत रव मोही थाके व्योम व्यमान ॥
कंदर्प कोटि बारनै करिहौं या ब्रह्म की ठान ।
'परमानंद स्वामी' रति पति नायक मेटत हो अभिमान ॥

※ प्रस्तुत पद ज्येष्ठ कृष्ण १ से अमावस्या तक गाये जाते हैं ।
१ एक बार कैसे छूटत है पूरब बढ्यो सनेह
२ वन्यो
३ तन देह
४ सनेह
५ भयो एक रस नेह

मन्दिर की शोभा

[७४६] राग सारंग

बने माधौ के महल ।
जेठ मास अति जुड़ात माघमास कहल ॥
दूरि भये देखियत बादर के से पहल ।
बीच बीच हरित स्याम जमुना के से दहल ॥
ब्रजपति के कहा अनूप यह बात सहल ।
'परमानन्ददास' तहाँ करत फिरत टहल ॥

[७५०] राग सारंग

फुलन के बंगला बने अति छाजे बैठे लाल गोबरधन धारी ।
चम्पक वकुल गुलाब निवारो लाल अनार सुधारी ॥
पीत चमेली चितको चोरत रायेवेलो महकारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर तन मन धन वलिहारी ॥

[७५१] राग सारंग

आई तू फिरिगई बिनु आदर ।
मैं वाको संभाषन कीनी रवकि जु आये वादर ॥
धौरी दुहत भई दुचिताई प्रथम पहर को जामिन ।
मेरे प्रेम भवन तजि आई विमुख गई वह भामिन ॥
वाके मन मे कहा बीतत है प्रानजीवन धन राई ।
'परमानन्द' प्रभु' कह्यो प्रनय करि दूती तू चलि जाई ॥

केत के पद

[७५२] राग सारंग

सँदेसों राधिका को लीजै ।
तुम दूरि बैठे सघन कुंज से ऐसौ खेल न कीजै ॥
आइ फिरि गई चाहि सब कानन चंद्रबदनि सुकुमारी ।
रहे मौन धरि ताहि देखि हरि कठिन काम सरमारी ॥
बेग चलहू हरि बिलंबु करऊ कत वह कंदब तर ठाढी ।
'परमानन्द प्रभु' तुम्हरे रूप सौं प्रीति निरंतर बाढी ॥

[७५३] राग सारंग

लाल तेरी लाडली लडबौरी ।
चाहत फिरत अकेली बन बन लागी प्रेम ठगौरी ॥
यहै तुम करी नंदनंदन जू बांह बोल दे हटकी ।
जानै न करम भरम[१] अति गोरी रूप देखि तब लटकी ॥
सुनि ब्रजनाथ अनाथ नाथ तुम यह न बूझिये नागर ।
'परमानंद प्रभु' अब न छांडि हौं करी सब बात उजागर ॥

[७५४] राग सारंग

जसुमत गृह आवत गोपीजन ।
बासर ताप निबारन कारन बारम्बार कमल मुख निरखन ॥
चाहत पकरि देहरी उलंघन किलक किलक हुलसत मन ही मन ।
राई लोन उतारि दोऊ कर वारी फेरि वार तन मन धन ॥
लेत उठाय चापत हियो भरि प्रेम बिबस दृग लागे ढरकन ।
चली लै पलना पौढावन कों असकसात पौढ़े सुन्दरघन ॥
देत असीस सकल गोपीजन चिरजीवो जौलो गंग जमुन ।
'परमानंददास' को ठाकुर भगत बछल भगत मनरंजन ॥

---

[१] भरम

उष्ण काल दुपहरी के पद

[७५५] राग सारंग

ऐसी धूपन मे पिय जाने न देहूँगी ।
बिनती कर जोर प्रिया के हा हा खात तेरे पैयाँ परूँगी ॥
तुम तो कहावत फूल गुलाब के संग के सखा ग्वालन गारी देऊँगी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर करतें मुरलियाँ अचक हरूँगी ॥

कुंज के पद

[७५६] राग सारंग

चलो[१] किन देखन कुंज कुटी ।
मदन[२] गोपाल जहाँ मध्य नायक[३] मन्मथ फौज लुटी ।
सुरत समर[४] मे लरत सखी को मुक्ता माल टुटी ।
उरज तें जु कंचुकी चुरकुट भई कटि पट ग्रन्थि छूटी ॥
रसिक सिरोमनि सूर नंद सुत दीनी अधर घुंटी ।
'परमानन्द' गोविंद ग्वालन की नीकी जोट जुटी ॥

[७५७] राग सारंग

चलो सखी कुञ्ज गोपाल जहाँ[५] ।
तेरी सौं मदन मोहन[६] मैं चलि ले जाउं तहाँ ।
आछे कुसुम मंद मलयानिल तरू कदंब की छाँह ।
तहाँ निवास कियो नंदनंदन चित तेरे तन माँह ॥
ऐसो री बात सुनत ब्रजसुन्दर तोहि रह्यो क्यों भावे ।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन भाग बड़े ते पावे ॥

---

१ चलहि
२ सुन्दर स्याम
३ मदन मोहन
४ मोर
५ कहाँ
६ जहाँ मन मोहन

चुंनरी के पद

[७६४] राग मला

देखो माई भीजत रम भरे दोउ ।
नंद नंदन वृषभान नंदनी होड परी है जोऊ ॥
सुरंग चूँनरी स्यामा जू की भीजत हैं रस भारी ।
गिरधर पाग उपरना भीज्यो या छबि ऊपर वारी ॥
बात ही बात होड़ भयी भारी ललितादिक समुझावें ।
दोऊ मिलि झगरत मानत नाही सखी सब बूंद बचावें ॥
तब मोहन हारे सिर नाए हँसी सकल ब्रजनारी ।
'परमानंद प्रभु' यह बिधि क्रीड़त या सुख की बलिहारी ॥

[७६५]

बरस रे सुहाये मेहा मैं हरि कौ संग पायो ।
भोजन दे पीताम्बर सारी बड़ी बड़ी बूँदन आयो ॥
ठाड़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो ।
'परमानंद' प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो ।

[७६६] राग भैरव

बृन्दावन क्यों न भए हम मोर ।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंदकिसोर ॥
क्यो न भए बंसी कुल सजनी अधर पीवत घनघोर ।
क्यो न भए गुंजावन बेली रहत स्याम जू की ओर ।
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपिन के चित चोर ॥

[७६७] राग सारग

गावे गावे घनस्याम तान जमना के तीरा।
नाचत नट भेष धरे मंडल भीरा॥
नैन लोल चारू बोल अधर धरे बैना।
आवत मुख कमल की छबि मंडित कच रैना॥
जल की गति मंद भई सुरभी तृन न लीना।
बछरा न खीर पीवत नाद ही मन दीना॥
मोहे खग मृग नर मुनि मधुकर ग्यानी।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल लीला बन ठानी॥

[७६८] राग सारंग

अरी इन मोरन की भाँति[१] देख नाचत गोपाला।
मिलवत गति भेद नीके मोहन नटसाला॥
गरजत घन मंद मंद दामिनी दरसावै।
रमकि झमकि बूंद परे राग मल्हार गावै॥
चातक पिक सघन कुंज वार बार कूजै।
बृन्दावन कुसुम लता चरन कमल पूजै॥
सुर नर मुनि काम धेनु कौतुक सब आवैं।
बार फेरि भगति उचित 'परमानंद' पावै॥

[७६९] राग केदारो

माधौ भलौ बन्यौ आवै हो।
देखत जिय भावै हो॥
मोर पंख के चंदुवा नीकैं माथे बांध लिये।
गुंजा फल के हार बनाए सब सिंगार किये॥
कुंडल बीच कदंब मंजुरी चरन कुंतल सोहैं।
मृगमद तिलक भौंह मन्मथ धेनु देखत सब जग मोहै॥
स्याम कलेवर गोरज मंडित कोमल कमल दल भाल।
'परमानन्द' प्रभु गोप भेष धर कूजत वेनु रसाल॥

---
१ पाँति

...लमंडली के पद

[७७०] राग कानरो

फूलन की चोली फूलन के चोलना।
फूल माथै फूल हाथै कानन के फूल फूलन की सेज नीकी
फूलन के चंदवा॥
फूलन के साल मसूरी फूलन के जरवा लुई आगे पाछे पाछे फूल।
फूलन के महल फूलन के परदा 'दासपरमानंद'
राधा माधौ फूल॥

[७७१] राग केदारो

फूलन के अठखम्भा राजत संग बृषभान दुलारी।
मोर चंद सिर मुकुट बिराजत पीताम्बर छबि भारी॥
फूलन के हार सिंगार फूलन के सखी सुकुमारी।
'परमानन्द दास' को ठाकुर ब्रज जीवन मनहारी॥

[७७२] राग टोड़ी

मुकुट की छाँह मनोहर किए।
सघन कुंजतें निकसत साँमरो संग राधिका लिए॥
फूलन के हार सिंगार फूलन खोर चंदन किए।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ग्वाल बाल संग लिए॥

[७७३] राग टोड़ी

आछे बने देखो मदन गोपाल।
बहुत फूलफूलें नंदनंदन तुमको गूंथौंगी माल ॥
आय बैठो तरुवर की छैया अंबुज नयन विसाल।
नैक बयार करौं अंचल की पाय पलोटोगी लाल ॥
आछे तब राधा माधव सौं बोलत वचन रसाल।
'परमानंद' प्रभु इहाँ आये हो व्रज तजि और न चाल ॥

[७७४] राग सारंग

बात कहत रसरंग उच्छलिता।
फुलन के महल बिराजत दोऊ मेद सुगंध निकट बहै सलिता ॥
मुख मिलाय हंसि देखत दरपन सुरत स्रमित उरमाल विगलिता।
'परमानंद प्रभु' प्रेम विवस हम दोउन में सुन्दर को कहि ललिता ॥

पवित्रा हिंडोरा के पद

[७७५] राग सारंग

पहरे पवित्रा बैठे हिंडोरे दोऊ निरखत नयन सिराने।
वह राजत नव निकुंज महल में कोटिक काम लजाने ॥
हास विलास हरत सबके मन अंग अंग सुख साने।
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन उपजत तान विताने ॥

[७७६] राग सारंग

पवित्रा पहिरें परमानन्द ।
स्रावन सुदि एकादिसि के दिन गिरिधर गोकुल चंद ।।
स्री बृषभान नंदिनी निजकर ग्रथित बिबिध पटभांत ।
ता मध्य सुभग सुबरन सूत्र सौं पोई नवमति जात ।।
पवित्रा पेहरै हिंडोरे झूलत दोऊ आनंद कंद ।
जमुना पुलिन मे कुंज मनोहर गावत 'परमानंद' ।।

[७७७] राग सारंग

झूलत नवल किसोर किसोरी ।
उत ब्रजभूषन कुंवर रसिकवर इत बृषभान नंदिनी गौरी ।।
नीलांबर पीतांबर फरकत उपमा घनदामिनि छबि थोरी ।
देख देख फूलत ब्रज सुन्दरि देत झुलाय गहे कर डोरी ।।
मुदित भई यों स्वर मिल गावें किलक किलक दे उरज अकोरी ।
'परमानंद' प्रभु मिलि सुख बिलसत इन्द्र बधू सिर धुनत झकोरी ।।

[७७८] राग सारंग

हिंडोरे झूलत है भामिनी ।
स्यामा स्याम बराबर बैठे सरद सुहाई यामिनी ।।
एक भुजा कर डारी टेकी एक परे असकंध ।
मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम अनुबंध ।।
लरकाई में सब कछू बनि आवै कोई न जाने सूत ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नन्द राय को पूत ।।

पवित्रा के पद

[७७९] राग टोड़ी

पवित्रा पहरत राजकुमारी ।
तीन्यौ लोक पवित्र किए हैं स्री विट्ठल गिरिधारी ॥
अति ही पवित्र प्रिया बहु विलसित निरख मगन भयो भारी ।
'परमानन्द' पवित्र की माला गोकुल की निज नारी ॥

[७८०] राग बिलावल

पवित्रा पहरत स्री गोकुल भूप ।
स्रावन सुकल एकादसी मंगल को निज रूप ॥
आनंद चारु रसिकवर सुन्दर 'परमानंद' रसरूप ।
बृन्दावन को चन्द्र स्री वल्लभ छिन छिन रूप अनूप ॥

[७८१] राग सारंग

पवित्रा पहरत गिरिधर लाल ।
सुन्दर स्याम छबीलो नागर सकल घोख प्रतिपाल ॥
हँसि मन हरत हमारो मोहन संग नागरी बाल ।
फूली फिरत मत्त करिनीवत अति आनंदे नंदलाल ॥
देख स्वरूप ठगी सी ठाड़ी दंपति दल के साज ।
'परमानंद' प्रभु पर न्यौछावर प्रान प्रिया के काज ।

[७८२] राग सारंग

पवित्रा लाल के कंठ सोहै ।
सोने के गेंदा रूपा के रचि पचरंगे पाटके पोहै ॥
अति विचित्र माला वर देखियत जसोदारानी[१] मन मोहै ।
'परमानन्द' देखि सुख पायो[२] हृदय[३] हरख दृग जोहै ॥

[७८३] राग सारग

बैठे हैं पहरे पवित्रा दोऊ निरखत नयन सिराने हो ।
राजत रचि रचि[४] कुंज भवन मे कोटि काम लजाने हो ॥
रहसि विलास हरत सबकौ मन अंग अंग सुख साने हो ।
'परमानंद स्वामी' सुख सागर उपजत तान विताने हो ॥

[७८४] राग सारंग

पवित्रा पहरे स्री गिरिवरधारी ।
वृषभाननंदिनी संग राजत अंग अंग छबि न्यारी ॥
हाटक पहोप पाट पचरंग उर माला ढिग सोहे ।
निरखत नयन मैन गति थाकी जो देखे सो मोहे ॥
सोभा सिंधु सकल सुख सीमा माँगत गोद पसारी ।
'परमानंद' पहराए पवित्रा निरखत हैं ब्रज नारी ॥

---

१ सुरनर मुनिजन
२ यह सोभा
३ जसुदारानी
४ रुचि रुचि

[७८५] राग सारंग

पवित्रा उत्सव कौ दिन आयो ।
ब्रजवासिन मिलि मंगल गायो स्याम निरखि सचु पायो ॥
यह बल सहित मोहन आयौ है संतन के मन भायो ।
नंद जसोदा हँसि हँसि भेटत मोतिन चौक पुरायो ॥
सुरनर मुनि सब देखन आये ढोल निसान बजायो ।
'परमानन्द स्वामी' की लीला निगमनि अगम बतायो ॥

[७८६]

गैंदा गिनती के हैं नीके ।
पीरे राते उजरे भूरे नीले कमल से फीके ॥
पहिरे परम मनोहर माला जुवती जनके जीके ।
देखत हरखत नैन सिराने लेति बलैया पीके ॥
पहिर पीतांबर पाग मनोहर कुमकुम तिलक सु नीके ।
'परमानन्द' भाग तैं पइयत देखत सुख दृग हीके ॥

हिंडोरा के पद

[७८७] राग मल्हार पूर्वी

यह सुख सावन में वनि आवै ।
दूल्हे दुलहिन संग झुलावै ॥
नंद भवन राच्यौ सुरंग हिंडोरो ।
गोप वधू मिलि मगल गावै ॥
नंद लाल को राधा जू पै ।
हरि जू पै राधा जी को नाम लिवावै ॥
जसुमति तूं परमानंद तिहि छिन ।
वार फेर न्यौछावर पावै ॥

[७८८]

गोपी गोविंद गुन विमल परमहित गावै गीत । ध्रुव०
प्रथम पावस मास आगम गगन घन गंभीर ।
लसे दामिनि दिसा पूरब अति प्रचंड समीर ॥
तहाँ हंस चातक बन कुलाहल वचन अद्‌भुत बोल ।
गोपाल बाल निकुंज विहरत सखा संग कलोल ॥
तहाँ बकें दादुर मुग्ध कोकिल मूढ़ पावस धीर ।
तहाँ नदी छुद्र अपार उमड़ी मिलत बसुधा नीर ॥
हरियारे तृन मह्रि चंद उडुगन अति मनोहर लाग ।
बलभद्र के संग धेनु चारत नंद के अनुराग ॥
तहाँ कंद्रा गिरि चढ़े हेला करत बाल बिनोद ।
तहां जाय खोजत बृच्छ कोटर मच्छिका मधुमोद ॥
कोऊ बोले बानो पंछी कोऊ गावे गीत ।
कोऊ न जानें गोप लीला ब्रह्म गति विपरीत ॥
तहाँ चक्रवाक चकोर चातक हंस सारस मोर ।
तहां सूवा सारस सरस भृंगी करत चहूं दिसि रोर ॥

[७८९]

वाट सरोवर मध्य नलिनि मधुप को मधुपान ।
नंद गोकुल कृष्न पाले अमर पति अभिमान ॥
तहाँ रच्यौ हिंडोरो धवल बानी कासमीरी खंभ ।
हीरा पिरोजा पाँतिमुक्ता और अति आरंभ ॥
बनी चित्र विचित्र सोभा तीर धनु संधान ।
जेसे राम रावन जुद्ध क्रीड़ा देखिए अनुमान ॥
जहा बहुत गोरस माँट मथना चलत कंकत हीर ।
तहाँ मल्लिका सिर गू थि बेनी स्रवन सोभित बीर ॥
तहाँ कनक बरन सुभाय सुंदरी अमी बचन रसाल ।
प्रेम मुदित मुरारि चितधरि गावे राग मल्हार ॥

[२७५]

तहां होत मंगल घोख घर घर जहाँ रमा अनंत।
वैकुंठनाथ दयाल स्रीपति सोहै स्री भगवंत॥
देव मुनि सब हँसत जदुबर प्रनत पूरन काम।
वेद बानी वदत निसदिन भक्त जन विस्राम॥
तहां जनम करम असेष महिमा सेष सारद भाख।
देवकी नंदन नाम पावन त्रिविध दुख तें राख॥
चरन अम्बुज दीप नख मनि चिंतित अति अघनास।
मनक्रम वचन सुभाय 'परमानंददास' निवास॥

[७६०] राग अड़ाना

हिंडोरो री ब्रज के आँगन माँच्यौ।
ब्रह्मादिक कौतुक भूले संकर तांडव नाच्यौ॥
सुक सनकादि नारद मुनिजन हिंडोरो देखन आए।
नंद को लाल झुलावत देख्यौ बहुत तूठ हम पाये॥
जुवती जूथ अटा चढ़ ठाड़ी अपनो तन मन वारे।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चित चोरयौ यह कारे॥

[७६१] राग सोरठ

हिंडोरे झूलें गिरवरधारी।
जमुना को तट परम मनोहर संग राधिका प्यारी॥
झूलन आईं सकल ब्रज सुंदरि षटदस भूषन सारी।
नाचत गावत करत कुलाहल देत परस्पर तारी॥
दादुर मोर चकोर पपैया वोलत हैं सुखकारी।
सारस हंस कोकिला कूजत गुंजत है अलि भारी॥
सुर मुनि सब मिल कुसुमन वरसत मुनिवर छूटी तारी।
यह सुख निरख 'दासपरमानंद' तन मन धन वलिहारी॥

[७९२]　　राग मलार

रसिक हिंडोरना माई झूलत स्री मदन गोपाल ।
हरि हिंडोरा ही रच्यौ कुंजन जमुना कूल ॥
तहाँ बेल चंपा मोगरो केवरो अरू बहु फूल ।
निरखि सोभा थकि रह्यो मिट गयो मन को सूल ॥
तुव लाज खुभी चित्र चित्रित नयन दिए हैं दुकूल ।
रतन जटित के खंभ दोऊ लगे प्रवालहि लाल ॥
कंचन कौ मारूवा बन्यो पटुली जु परम रसाल ।
तन कुसुंभी चीर पहिरें आईं सब ब्रज बाल ॥
अंग अंग सज नव सत भामिनो दिए तिलक सुभाल ।
गोपी जू हरि संग झूलहि आनंद सुख के बाल ॥

[७९३]　　राग मलार

वक्र भौंह लगाय बेसर मुख ही भरे तंबोल ।
स्याम सुंदर निकस ठाड़े अपुने अपुने टोल ॥
गावत राग मल्हार दोऊ मिल देत हिंडोल झकेलि ।
धन धन गोपी सुफल जीवन करत हरि संग केलि ।
कृष्न कृष्न कहि नाम बोलत देत है रंग रेलि ।
चिरजीवो सखि मदन मोहन फले जसोदा बेलि ॥
'परमानन्द' नंद नंदन चरन निज[१] चित मेलि ॥

[७९४]　　राग मलार

लाल प्यारी झूलत है सकेत ।
संग झूलत ब्रखभान नंदिनी ललिता झोटा देत ॥
मुदित परस्पर गावत दोऊ अलापत राग मलार ।
खसि खसि परत नील पीतांबर कछु न अंग संभार ॥
उनये मेघ सकल बन राजत अद्भुत सोभा देत ।
'परमानन्द प्रभु' रस मय झूलत सखी बलैया लेत ॥

---

१ नित

खी के पद

[७९५] राग सारंग

राखी बाँधत जसोदा मैया ।
बहु सिगार सजे आभूषन गिरिधर हलधर भैया ॥
रतन खचित राखी बाँधी कर पुन पुन लेत बलैया ।
सकल भोग आगे धर राखे तनक जु लेहु कन्हैया ॥
यह छबि देख मगन नंद रानी निरख निरख सचुपैया ।
जियो जसोदा पूत तिहारो 'परमानंद' बलि जैया ॥

[७९६] राग बिलावल

राखी बंधन नंद कराई ।
गर्गादिक सब रिसिन बुलाये लालहिं तिलक बनाई ॥
सब गुरु जन मिलि देत असीसे चिरजीवहु ब्रजराई ।
बड़ो प्रताप बड़ो ढोटा को प्रतिदिन दिनहिं सवाई ॥
आनंदे ब्रजराज जसोदा मानो अधन निधि पाई ।
'परमानंददास' की जीवनि चरन कमल लपटाई ॥

[७९७] राग टोड़ी

राखी बाँधत जसोदा मैया ।
मधुमेवा पकवान मिठाई आरोगो प्रभु घैया ॥
बरस दिवस की कुसल मनावत विप्रन देत बधैया ।
चिरजीयौ मेरो कुँवर लाड़िलो 'परमानंद' बलिजैया ॥

[७९८] राग सारग

सब ग्वालिन मिलि मंगल गायो।
राखी बांधत मात जसोदा मोतिन चौक पुरायो॥
विप्रनु देत असीस सबनि की प्रनव करि मंत्र पढायो॥
नंद देत दछिना गाइन संग मंगलचार बधायो॥
स्रावन सुदी पून्यो के सुने दिन रोरी तिलक बनायो।
पान मिठाई नारिकेलि फल सोना हाथ धरायो॥
नव भूषन नव बसन जसोदा सबहिन कों पहिरायो।
देत असीस बिरध नरनारी चिरजीवो जसुमति को जायो॥
याही भांति सलूनो तुम कौ गिरिधर नित नित आवौ।
जन्म द्यौस नियरे आयौ है घोख विचित्र बनावौ॥
ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरि मृदंग बजावौ।
लीला जनम करम हरि जू के 'परमानंद' जस गावौ॥

मल्हार के पद

[७९९] राग मलार

भूमि रहे बादर सगरी निसा के
बरसन को रहे हैं छाय।
जागे सब ग्वाल बाल
आए दौरि[१] ठाडे द्वार
लीने हैं लाल जगाय॥
दोहनी धोअ दीनी हाथ
हलधर दिए है साथ
बछरा जोवत मग राँभत है गाय॥
'परमानन्द' नंद रानी
फूली अंग न समानी
बार बार सुत की[२] लेति बलाय॥

---

१ घेरि
२ तेरी लेऊँ

[८००] राग रामकली

हरि जस गावत चली ब्रज सुंदरि नदी[१] जमुना के तीर ।※
लोचन लोल बाँह जोटी कर स्रवनन झलकत वीर ॥
वेनी सिथिल चारू काँधे पट कटि पर अंबर लाल ।
हाथन लिये फूलन की डलियाँ उर मुक्ता मनि माल ॥
जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास ।
जैसे प्रीतम होय नंद सुत व्रत ठान्यौ इह आस ॥
तब तें चीर हरे नन्द नन्दन चढ़े कदंब की डारि ।
'परमानन्द प्रभु' वर देबै कौं उद्यम कियो है मुरारि ॥

[८०१] राग रामकली

देहो ब्रजनाथ हमारी आँगी ।
नातरु रंग विरंग होयगो कई विरियाँ हम मागी ॥
ब्रज के लोग कहा कहेंगे देख परस्पर नाँगी ।
खरे चतुर हरि हो अन्तरगत रैन परी कब जागी ॥
सकल सूत कंचन के लागे बीच रतनन की धागो ।
'परमानन्द प्रभु' दीजिए काहेन प्रेम सुरंग रंग पागी ॥

[८०२] राग रामकली

मानरी मान मेरो कह्यौ ।
मोहन मदन गोपाल मिले विनु अंत तऊ परिहौ ॥
प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ ।
नंद गोप सुत माँगि भलो वर भाग अपनते जु लह्यौ ॥
जो हरि पठई तौ हौं आई पानि पानि ब्रजनाथ गह्यौ ।
'परमानन्द प्रभु' प्रीति मानि है यह रस जात अकाथ वह्यौ ॥

---
१ नौ
※ प्रस्तुत पद चीर हरण [व्रतचर्या] से है ।—सं०

[८०३] राग रामकली

हौं मोहन हारी तुम जीते ।
नागर नट पट देऊ हमारे कांपत है तन सोते ॥
रसिक गोपाल लाल अबलनि पर एती कहा अनीते ।
'परमानन्द प्रभु' हम सब जानत तुम गाल बजावत रीते ॥

[८०४] राग ललित

जेंबत राम कृष्न दोउ भैया जननी जसोदा जिमावे री ।*
ब्यंजन मीठे खाटे खारे स्वाद अधिक उपजावे री ॥
करत ब्यार चहुँ ओर सहचरी मधुर बचन मुख भाखे री ।
'परमानंद प्रभु' माता हित सो अधिक परम रस चाखेरी ॥

[८०५] राग टोड़ी

आरोगत गिरधर लाल सयाने ।+
बहु बिधि पाक मिठाई मेवा दूध दही पकवाने ॥
अचबावत है जसोदा मैया सीतल जल गोपाल अघाने ।
'परमानन्द प्रभु' भोजन कर बैठे तब बीरी लै रूचि माने ॥

---

* प्रस्तुत पद शीतकाल के भोजन का है—सपादक

+ प्रस्तुत पद शीतकाल के भोग सरवे के समय गाये जाते हैं—सपादक

[८०६] राग सारंग

बाबा आज भूख अति लागी ।
भोजन भयो अघानो नीको तृपति होय रुचि भागी ॥
अचवन करि जमुनोदक लीनो मुख जम्हात पल लागी ।
भोजन अंत सीत अति 'परमानंद' दो मेरी आँगी ॥

भोग सरवे के पद

[८०७] राग धनाश्री

भोजन भली भाँति हरि कीनो ।
खटरस व्यंजन मठा सलोनों माँगि माँगि हरि लीनो ॥
हँसत लसत परोसत नंदरानी बाल केलि रस भीनो ।
'परमानन्द' उबर्‌यो पनवारौ टेर सुवल कों दीनों ॥

[८०८] राग सारंग

भोजन करि बैठे दोऊ भैया ।
हस्त पखारि सुद्ध आचमन करि बीरी लेहु कन्हैया ।
मात जसोदा करत आरती पुन पुन लेत बलैया ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर ब्रज जन केलि करैया ॥

[८०९] राग सारंग

क्यो बैठी राधे सुकुमारी ।
बूझत है ब्रजजन के अहेरी क्यो जेंवत बाबा की थारी ॥
आज हमारो गौरी व्रत ताकी विध ताहो पै पाऊं ।
सुन्दर सुभग सलोनौ ढोटा ताकौ पूजि वाहि हाथ जिमाऊँ ॥
देखो ढोटा नंदराय कौ ताकौ अब ही लै आऊँ ।
तुम जानोरी सयानी मैया वेग चलो हौं चरन सिर नाऊँ ॥
सुनरी जसोमति कुँवर आपुनौ वेग पठं हों नौतन आई ।
'परमानंद स्वामी' सब जानत देख देख मैंने सब निधि पाई ॥

श्री ब्रजभक्तन के भोजन के पद

[८१०] राग सारंग

जसोदा एक बोल जो पाऊं ।
राम कृष्न दोउ तुम्हरे सुत को सखन सहित जिमाऊँ ॥
जो तुम नंदराय सौ सकुचो तो हौं उन्हे सुनाऊँ ।
जो मैं आज्ञा देहो कृपा करि भोजन ठाट बनाऊँ ॥
जब वाके घर गये स्यामघन अपनो भवन बतायौ ।
'परमानन्द प्रभु' हमारे नित उठ घर बैठे पहुँचायौ ॥

[८११] राग मलार

परोसत गोपी घूंघट मारे ।
कनकलता सी सुन्दर सोभा आई है ज्योंनारे ॥
झनक मनक आंगन मे डोलत लावन्य मोर संवारे ।
नंदराय नंदरानी ते दूरिकै लाले भले निहारे ॥
घर की खोझ मिलाय थार मे आगे लै जब धारे ।
परम मिलनियाँ मोहन जू की हाँसी मिष हुँकारे ॥
रुचिर काछिनी जटित कोंधनो जूरो बाँह उघारे ।
'परमानन्द' अवलोकन कारन भीर बहुत सिंघ द्वारे ॥

[८१२] राग सारंग

कहत प्यारी राधिका अहीर ।
आज गोपाल पाहुने आये परोसि जिमाऊं खीर ॥
बहुत प्रीति अन्तरगत मेरे पलक ओट दुख पाऊं ।
जानत जाउं संग गिरिधर के संग मिले गुन गाऊं ॥
तिहारो कोउ बिलगु न माने लरकाईं की बात ।
'परमानन्द प्रभु' भवन हमारे नित उठ आवो प्रात ॥

[८१३] राग सारंग

परोसत पाहुनी त्यों नारी ।
जेंवत राम कृष्न दोउ भैया नंद बाबा की थारी ॥
मोही मोहन को मुख निरखत विकल भई अति भारी ।
भूपर भात कौरे भई ठाढ़ी हँसत सकल ब्रजनारी ॥
कै याहि आंच हिये की लागी नव जोवन सुकुमारी ।
'परमानंद' जसोमति ग्वालिन सैनन बाहिर टारी ॥

[८१४] राग धनाश्री

कृष्न को बीरी देत ब्रजनारी ।*
पान सुपारी काथो गुलाबी लौंगन कील संवारी ॥
ब्रजवारी जो कुंजलो ठाड़ी कंचन की सी बारी ।
लै लै बीरी चरन कमल में ठाड़ो करत मनुहारी ॥
कहत लाडले बीरो लीजै मोहन नंद कुमार ।
'परमानंद प्रभु' बीरो आरोगत ब्रज के प्रान अधार ॥

* प्रस्तुत पद बीरी आरोगाने के हैं—स०

[८१५]

सब भाँति छबीली कान्ह की ।
नंद नन्दन ग्रावन छबीली मुख छबि बीरी सुपान की ।।
ग्रलक छबीलो तिलक छबीलो पाग छबीली सुबान की ।
भौंह छबीली दृष्टि छबीली सैन छबीली सुमान की ।।
चरन कमल की चाल छबीली सोभा ग्रंग सुठान की ।
'परमानन्द प्रभु' बैन छबीली सुरत छबीली सुगान की ।।

[८१६]

बीरी ग्रारोगत गिरिधर लाल ।
ग्रपने करसों देत राधिका मोहन मुख मे मधुर रसाल ।
ज्यों ज्यों रुचि उपजावत उर ग्रंतर त्यों त्यों परस्पर कर बिहार ।
कबहुँ देत दशन खंडित कर कबहुँ हँसकर देत उगार ।।
सहचरी सब मिल ग्रन्तरी निरखत हिये ग्रानंद ग्रपार ।
जय जय कृष्ण जय स्रीराधे जस गावत 'परमानन्द' सार ।।

———

श्रीहरिः

३

प्रकीर्ण-पद

विनय, माहात्म्य, शरणागति

[परमानन्द सागर]

[८१७] राग कान्हरो

तिहारे चरन कमल को मधुकर, मोहि कब जू करोगे ।*
कृपा वंत भगवंत गुसाईं, यह बिनती चित जू धरोगे ॥
सीतल आतपत्र की छैयाँ कर अम्बुज सुखकारी ।
प्रेम प्रवाल नैन रतनारे कृपा कटाच्छ मुरारी ॥
'परमानन्ददास' रस लोभी भाग्य बिना कोऊ पावै ।
जापर कृपा करें नंद नंदन ताहि सबै बनि आवै ॥

[८१८] राग सारंग

हरि जसु गावत होई सो होई ।
विधि निषेध के खोज परैंहों जिन अनुभव देखो जोई ॥
आदि मध्य अवसान एक रस हरिस्वरूप ठहरात ॥
बीच एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात ॥
राम कृष्न अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज ।
'परमानन्ददास' यह मारग बीतत राम के राज ॥

[८१९] राग सोरठ

कमल नयन कमलापति त्रिभुवन के नाथ ।
एक प्रेम तें सब बने जो मन होय हाथ ॥
सकल लोक की संपदा जो आगे धरिये ।
भगति बिना मानें नहि जो कोटिक करिये ॥
दास कहावन कठिन है जो लौं अनुराग ।
'परमानन्द प्रभु' सांवरो पैचत बड़ भाग ॥

* प्रस्तुत पद में परमानन्ददास जी की गुसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट होती है—संपादक

[८१७] राग कान्हरो

तिहारे चरन कमल को मधुकर, मोहि कब जू करोगे।*
कृपा वंत भगवंत गुसाईं, यह विनती चित जू धरोगे ॥
सीतल आतपत्र की छैयाँ कर अम्बुज सुखकारी।
प्रेम प्रवाल नैन रतनारे कृपा कटाच्छ मुरारी ॥
'परमानन्ददास' रस लोभी भाग्य बिना कोऊ पावै।
जापर कृपा करें नंद नंदन ताहि सबै बनि आवै ॥

[८१८] राग सारंग

हरि जसु गावत होई सो होई।
विधि निषेध के खोज परैहों जिन अनुभव देखो जोई ॥
आदि मध्य अवसान एक रस हरिस्वरूप ठहरात ॥
बीच एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात ॥
राम कृष्न अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज।
'परमानन्ददास' यह मारग बीतत राम के राज ॥

[८१९] राग सोरठ

कमल नयन कमलापति त्रिभुवन के नाथ।
एक प्रेम तें सब बने जो मन होय हाथ ॥
सकल लोक की संपदा जो आगे धरिये।
भगति विना मानें नहिं जो कोटिक करिये ॥
दास कहावन कठिन है जो लौं अनुराग।
'परमानन्द प्रभु' सांवरो पैचत वड़ भाग ॥

---

*[प्र]स्तुत पद में परमानन्ददास जी की गुसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट [हो]ती है—सपादक

[८२०]

राग सारंग

तातै नवधा[१] भगति भली ।
जिन जिन कीनी तिन तिन की गति[२] नैक न अनत चली ॥
स्रवन परीक्षित तरें राजरिषि कीर्तन तें सुकदेव ।
सुमरन तै प्रह्लाद निरभै भये हरि पद कमला सेव ॥
अर्चन पृथु बंदन सुफलक सुत दास भाव हनुमान ।
सख्य भाव अरजुन बस कीनै स्रीपति स्री भगवान ॥
बलि आत्मनिवेदन कीनौ राखै हरि कौं पास ।
प्रेम भगित गोपी बस कीनी बलि 'परमानन्ददास' ॥

[८२१]

राग सोरठ

प्रीत[३] तो नंदनन्दन सो कीजै ।
सम्पत विपत परे प्रतिपालै कृपा करे तो[४] जीजै ॥
परम उदार चतुर चिन्तामनि सेवा सुमरन मानै ।
हस्त कमल की छाया राखे अंतरगत की जानै ॥
बेद पुरान स्री भागवत भाखे करत भगत मन भायो ।
'परमानन्द' इन्द्र को बैभव बिप्र सुदामा पायो ॥

[८२२]

राग कान्हरो

जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब लग गोकुल गाम गुसाईं ।
जब लग स्री भागवत कथा रस तब लग कलिजुग नाहीं ॥
जब लग है सेवा या जग मे नन्दनन्दन सो प्रीति बढ़ाई ।
'परमानंद' तासों हरि क्रीड़त स्री बल्लभ चरन रैनु जिन पाई ॥

---

१ दसवा
२ मन में नैक न
३ प्रीति तो श्री कमल नैन सों कीजे
४ कृपा मन लों घन जीजे

[८२३]

राग सारंग

गोपिन की सरभर कौन करै ।
जिनके चरन कमल रज पावन ऊधौ सीस धरै ॥
चतुरानन ते अधिक न कोऊ सोऊ पन यह जु बरै ।
माँगत जनम लता द्रुम बेली तन अति जिय में डरै॥
यह अजरज कहाँ लौ बरनौं जो मन हरि कौं हरै ।
'परमानन्द प्रभु' चरन कमल भजि सबनि कौ काज करै ॥

भागवत और प्रेम भक्ति की महत्ता

[८२४]

राग कान्हरो

माधौ या घर बहुत घरी ।
कहन सुनन को लीला कीनी मरजादा न टरी ॥
जो गोपिन के प्रेम न होतौ अरु भागवत पुरान ।
तौ सब औघड़ पंथहि होतो कथत गमैया ज्ञान ॥
वारह वरस कौ भयो दिगम्वर ग्यानहीन संन्यासी ।
खान पान घर घर सवहिन कै भसम लगाय उदासी ॥
पाखंड दंभ बढ्यो कलिजुग मे स्रद्धा धर्म भयो लोप ।
'परमानंददास' वेद पढ़ि विगरे कापै कीजे कोप ।

गोपी प्रेम महिमा

[८२५]

राग सोरठ

गोपी प्रेम की ध्वजा ।
जिन गोपाल कियो वस अपने उर धरि स्याम भुजा ॥
सुकमुनि व्यास प्रसंसा कीनी ऊधौ संत सराही ।
भूरि[1] भाग्य गोकुल की वनिता अति पुनीत भव माँही ॥
कहा भयो जो विप्रकुल जनयो जो हरि सेवा नाँही ।
सोई कुलीन 'दासपरमानन्द' जो हरि सन्मुख धाई ॥

---

१ धन्य

[८२६]

ये हरि रस ओपी सब गोप तियनते न्यारी ।
कमल नयन गोविद चद की प्रानहुते प्यारी ॥
निरमत्सर जे सतत अहहि चूड़ामनि गोपी ।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी ॥
जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावै ।
क्यो नहि 'परमानन्द' प्रेम भगति सुख पावै ॥

राधा बन्दना

[८२७] राग रामकली

धनि यह राधिका के चरन ।
हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन ॥
रसिक लाल मन मोदकारी बिरह सागर तरन ।
बिबस 'परमानन्द' छिन छिन स्याम जाकी सरन ॥

नाम माहात्म्य

[८२८] राग गौरी

हरि जु को नाम सदा सुखदाता ।
करो जु प्रीति निश्चल मेरे मन आनंद मूल बिधाता ॥
जाके सरन गये भय नाहीं सकल बात को ग्याता ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर संकर्षन को भ्राता ॥

[८२९] राग सारंग

कृष्न कथा बिन कृष्न नाम बिन कृष्न भगति बिनु दिवस जात ।
वह प्रानी काहे को जीवत नहीं मुख बदत कृष्न की बात ॥
स्रवनन कथा स्यामसुन्दर की राम कृष्न रसना नहि फूरति ।
मानुस जनम कहाँ पावेंगे ध्यान धरे स्याम चतुर मति ॥
जो यह लोक परम सुख राखत अरु परलोक करत प्रतिपाल ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अति गँभीर दीनानाथ दयाल ॥

नुग्रह भक्ति

[८३०] राग सारंग

अनुग्रह तो मानो गोविंद ।
बाँके[1] चरन कमल दिखरावहु वृन्दावन के चंद ॥
नीकै सो नीकै सब कोई सुनि प्रभु आनंद कंद ।
पतितन देत प्रसाद कृपा करि, सोई ठाकुर नंद नंद ॥
अपराधी आदि सब कोऊ अधम नीच मति मंद ।
ताकों तुम प्रसिद्ध पुरुषोत्तम गावत 'परमानन्द' ॥

[८३१] राग विलावल

जा पर कमला कंत ढरै ।
लकरो घास कौ बेचन हारो ता सिर छत्र धरै ॥
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कुछ सोई करै ।
रीते भरै भरै पुनि ढौरै, जो चाहै तो फेर भरै ॥
सिद्ध पुरुष अविनासी समरथ, काहु तें न डरै ।
'परमानन्ददास' यह संमति मन ते कबहूँ न टरै ॥

१ बाँके
२ नपति

[८३२] राग बिहाग

तातै तुम्हरो मोहि भरौसौ आवे।*
दीन दयाल पतित पावन जस वेद उपनिषद गावे॥
जो तुम कहो कौन खल तारे जौहो जानो साखि।
पुत्र हेत हरि लोक चल्यो द्विज, सक्यो न कोउ राखि॥
गनिका कहा कियो व्रत संजम, सुक हित मनहि खिलावे।
कारन करि सुमिरै गज बपुरौ, ग्राह परम गति पावै॥
घरनि आपदा ते दुज पतिनी पति द्वारिका पठावै।
ऐसो को ठाकुर जे जनकौ, सुख दै भलौ मनावै॥

[८३३]

दुखित देखि द्वै सुत कुवेर कै तिनतै आपु बंधावे।
करुनानाथ अनाथ के बंधुबिनु, यह औसर क्यों आवै॥
ऐसे दुष्ट देखि अरि राच्छस दिन प्रति त्रास दिखावै।
सिसु प्रहलाद प्रगट हित कारन इन्द्र निसान बजावै॥
द्रुपद सुता दुष्ट दुर्जोधन, सभा मांहि दुख द्यावें।
ऐसी करै कौन पै हौतें बसन प्रवाह बढ़ावै॥
बकी गई इहि भांति घोष मे जसुदा की गति दीनी।
जो मति कही सो प्रगट व्याध की प्रभु जैसी तुम कीनी॥
अभयदान दीवान प्रगट प्रभु सांचो बिरद कहावै।
कारन कौन 'दास परमानंद' द्वारै दाद न पावै॥

[८३४] राग सारंग

जाकों कृपा करै कटाछ बृन्दाबन के नाथ।
बरन हीन अहीरनी खेले मिलि के साथ॥
नाभि सरोज विरंचि को हुतौ जनम सथान।
बच्छ हरन अपराध ते कीनो हुतो अपमान॥
मारकंड तैं को बड़ो मुनि ग्यान प्रबीन।
माया उदधि तरंग मे कीने मति लीन॥

---

* प्रस्तुत पद से श्रीनाथ जी के मंदिर से परमानददास जी के सम्बन्ध की सूचना मिलती है।
—सपादक

कहौ तपस्या कौनै करी संकर की नाईं ।
जाकौ मन संग संग फिरे मोहनी के ताईं ॥
गनिका के कहा कुल हतो गज कै कहा आचर ।
कौन विभव सुनि विदुर कै गवन कियो हरि द्वार ॥
जो कोऊ कोटिक करै बुद्धि बल जंजाल ।
'परमानंद प्रभु' सांवरौ दीननि को दयाल ॥

व्रज भूमि के प्रति आस्था

[८३५] राग धनाश्री

व्रज वसि बोल सवन के सहिये ।*
जो कोउ भली बुरी कहै लाखै, नंदनंदन रस लहिए ॥
अपने गूढ मतै की वातै, काहू सों नहिं कहिये ।
'परमा द प्रभु' के गुन गावत, आनंद प्रेम बढ़ैये ॥

[८३६]

धनि धनि वृन्दावन के वासी ।
नित प्रति चरन कमल अनुरागी, स्यामा स्याम उपासी ॥
या रस को जो मरम न जानै जाय वसौ सो कासी ।
भसम लगाय गरें लिंग वांधौ सदाइ रहौ उदासी ॥
अष्ट महासिद्धि द्वारें ठाढ़ी मुकुति चरन की दासी ।
'परमानंद' चरन कमल भजि सुन्दर घोष निवासी ॥

---

* प्रस्तुत पद से परमानन्ददास जी के व्रजवास की सूचना मिलती है—संपादक

[८३७]

लगे जो स्री वृन्दावन रंग ।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन को संग ॥
सखी भाव सहज होय सजनी पुरुष भाव होय भंग ।
स्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरंग ॥
मन कौ मैल सबै छुटि जैहैं मनसा होय अपंग ।
'परमानन्द स्वामी' गुन गावत मिटि गये कोटि अनंग ॥

[८३८] राग मारू

खेबटियारे बीरन अब मोहे क्यों न उतारै पार ।*
मेरे संग की सबहि उतरीं [अरु] भेटीं नन्दकुमार ॥
आगे[1] गहरी जमुनाजू बहत है मैं जु रही चलिवार ।
'परमानन्द प्रभु' सो मिलाय तोहि देहुँ गरे कौ हार ॥

[८३९] राग सारंग

माधौ संगति चोंप हमारी ।
स्वारथि मीत मिले बहुतेरे एक अधार तुम्हारी ॥
यह तौ लाज तुमहिं कमलापति जो हमरो पति जाई ।
जद्यपि पाखंड जो आराधन ता दिन नाम सगाई ॥
ब्याध गीध गनिका अरु पूतना बिगरी बात संवारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर औगुन कौ गुनकारी ॥

---

१ आते

* प्रस्तुत पद में परमानददास जी के अडैल से गोकुल आने की उत्सुकता सूचित होती है ।
—संपादक

[८४०] राग सारंग

हरि के भजन कौ कहा चहियत है स्रवन नैन रसना पद पान ।
ऐसी संपति पाइ बनी है जे न भजै ताहि बड़ी हानि ॥
पूरव जन्म सुकृत फल पायो अति पवित्र मानुषा अवतार ।
पाप पुन्य जातै चीन्है परतु है उपजत ब्रह्म ग्यान अतिसार ॥
गुरू को निहारि पोत पद अंबुज भवसागर तरिबे कौ हेत ।
प्रेरक पवन कृपा केसौं की 'परमानन्ददास' चित चेत ॥

[८४१] राग सारंग

क्यो न जाइ ऐसे के सरन ।
प्रतिपालै पोखै माता ज्यो चरन कमल भव सागर तरन ।
कठिन अवस्था जानिये जाकी प्रगट जगत गुरू कियौ सहाई ।
उग्रसेन हठि कियो जादौपति दोनौ राज निसान बजाई ॥
नंदादिक व्रजवासी जेते गोपी ग्वाल किये प्रतिपाल ।
इन्द्रकोप तै गिरिधरि राख्यो भगत बछल दुख हरन गोपाल ॥
ऐसो ठाकुर त्रिभुवन मौहै जै माधौ दीन दयाल ।
'परमानंददास' की जीवनि केसी मर्दन कंस कुलकाल ॥

[८४२]

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ ।
काके द्वार पैठि सिर नाऊँ परहथ कहा विकाऊँ ॥
तुम कमला पति त्रिभुवन नायक विस्वंभर जाकौ नाऊँ ।
सुर तरु कामधेनु चिंतामनि सकल भुवन जाको ठाऊँ ॥
तुम तै को दाता को समरथ जाके दिये अघाऊँ ।
'परमानंद' हरि सागर तजिकै नदी सरन कत जाऊँ ॥

[८४३] राग सारंग

ते भुज माधौ कहां दुराये।
ते भुज प्रगट करहू किनि नरहरि जन कल जुग मे बहुत सताये।
जिहि भुज गिरिमंदर उत्पाट्यो जिहि भुज बल रावन सिर तोरे॥
जिहि भुज बलि बन्धन कीनो अपने काज सकुच भये मोरे।
जिहि भुज हिरनकस्प उर फार्यो जिहि भुज प्रहलादहिं वर दीनो॥
जिहि भुज अर्जुन के हय हांके जिहि भुज लीला भारथ कीनो।
जिहि भुज बल गोवर्धन राख्यो जिहि बल कमला बरि[१] आनी॥
जिहि भुज कंसादिक रिपु मारे 'परमानंद प्रभु' सारंग पानी।

[८४४] राग सारंग

तुम्हारो भजन सब ही को सिंगार।
जे कोऊ प्रीति करैं पद अंबुज उर मंडल निर्मोलक हार॥
कंचन भूषन पाट पटंबर मानहू बहुत लिये सिर भार।
मनुषा जनम पूरब फल पाइयतु भगति बिना मिथ्या अवतार॥
जननी बांझ भई बरु काहे न गरभ न गिरि गये ततकाल।
'परमानंद प्रभु' तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान सियाल॥

[८४५] राग सारंग

गई न आस पापिनी जैहे।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की नीच लोक के संग रहै है॥
जिन को मुख देखें दुख लागे, तिनसो राजा राय कहै हैं।
फिर मंद मूढ अधम अभिमानी आसा लागि दुर्वचन सहै हैं॥
नाहिन कृपा स्यामसुन्दर की अपने लागे[२] जात बहै हैं।
'परमानन्द प्रभु' सब सुखदाता गुन विचार नहीं नेम गहै है॥

---
१ घर
२ खांगे

[८४६] राग धनाश्री

जाइए वह देस जहाँ नंदनंदन भेटिये।*
निरखिये मुख कमल काँति, बिरह ताप मेटिए॥
सुन्दर मुख रूप सुधा लोचन पुट पीजिए।
लंपट लव निमिष रहति अंचय अंचय जीजिये॥
नख सिख मृदु अंग अंग कोमल कर परसिये।
अरु अनन्य भावसौं भजि मन क्रम वचन सरसिये॥
रास हार भुव बिलास लीला सुख पाइए।
भगतन के जूथ सहित रस निधि अवगाहिए॥
इह अभिलाष अंतर गति प्राननाथ पूरिए।
सागर करुना उदार विविध ताप चूरिए॥
छिन छिन पल कोटि कलप बीतत अति भारी।
'परमानन्द' प्रभु कल्प तरु दीनन दुख हारी॥

ब्रज माहात्म्य

[८४७] राग रामकली

स्री गोकुल के लोग बड़ भागी।
नित उठि कमल नयन मुख निरखत चरन कमल अनुरागी॥
जा कारन मुनि जप तप साधत धूम्रपान[१] तन कीनो हो।
सोई नंद के आँगन खेलत ज्यो पानी में मीनो हो॥
आसन भोजन संन परम रुचि पावत जन जो हाँतो[२] हो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर मांनत कुल को नांतो हो॥

---

* प्रस्तुत पद से परमानन्ददास जी की ब्रज बसने की अभिलाषा सूचित होती है। संपादक
१ बरन
२ रातो

जवासियों का माहात्म्य

[८४८]

राग ललित

ब्रजवासी जानें रस रीति ।
जाके हृदय और कछू नाही नंदसुवन पद प्रीति ॥
करत महल में टहल निरंतर जाम जाम सब बीति ।
सर्बभाव आत्मा निवेदित रहे त्रिगुनातीति ॥
इनकी गति और नहि जानत बीच जवनिका भीति ।
कछुक लहत 'दासपरमानन्द' गुरु प्रसाद परतीति ॥

[८४९]

राग सारग

जहि जहि चरन कमल माधौ के तहौ तहीं मन मोर ।
जे पद कमल फिरत बृन्दाबन गोधन संग किसोर ॥
चिंतन करौं जसोदानंदन मुदित साँझ अरु भोर ।
कमल नयन घनस्याम सुभग तन पीतांबर के छोर ॥
इष्ट देवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर ।
'परमानंददास' की जीवनि गोपिन के पट झकझोर ॥

[८५०]

राग मुल्तानी
धनाश्री

ऐसे हरि अकरता दानी ।
जो जाके मन बसी कामना सो ताहे दर ठानी ।
विजय राखि मन आनंद मंगल सौं लै पूरत रुचि मानी ।
'परमानंद' सोई भागवत हरि इच्छा मनमँह आनी[१] ॥

---

१ इच्छा हरि विधाता आनी ।

[८५१] राग बिलावल

कहा करूं बैकुंठहि जाय।
जहां[1] नहि नंद जहां जसोदा नहि गोपी ग्वाल नहि गाय ॥
जहं न जल जमुना को निरमल और नही कदमन की छाय।
'परमानंद प्रभु' चतुर ग्वालिनी ब्रजरज[2] तजि मेरी जाय बलाय ॥

[८५२] राग बिहाग

स्री वल्लभ रतन जतन करि पायो [अरी मैं]*
बह्यो जात मोहि राखि लियो है पिय संग हाथ गहायो ॥
दुस्संग संग सब दूर किये हैं चरनन सीस नवायो।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नयनन प्रगट दिखायो ॥

[८५३] राग सारंग

सेवा मदन गोपाल की मुकति हूते मीठी।
जानै रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी ॥
चरन कमल रज मन वसी सबै धर्म बहाए।
स्रवन कथन चितन बढ्यो पावन जस गाए ॥
वेद पुरान निरूपि कै रस लियो निचोई।
पान करत आनन्द भयो डारयो सब धोई ॥
'परमानंद' विचारि के परमारथ साध्यो।
राम कृष्न पद प्रेम बढ्यो लीला रस बांध्यो ॥

---

१ मह
२ ब्रजराज
* प्रस्तुत पद में परमानन्ददास जी की शरण प्राप्ति सूचित होती है। संपादक

[८५४] राग टोड़ी

श्रौर माँगौ माधौ जनराइ ।
जाके घर श्रादि ठकुर ताहि बहुत संतन पर भाइ ॥
जाके दिये बहुरि नहि जाँचो दुख दारिद्र नहीं जाने।
बारंबार संभार न भूलै सुमिरन सेवा मानै ॥
पारथ सूत दूत पाँडव के उग्रसेन श्रधिकारी ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर गोपिन को हितकारी ॥

[८५५] राग कान्हरो

माधौ परि गई लीक सही ।
साँची छाया स्याम सुंदर की श्रादि श्रंत निबही ॥
जाकौ राज दियो सो श्रविचल मुनि भागौति कही ।
ध्रुव प्रहलाद बिभीषन बलि को संपति सदा रही ॥
जो मुख ते निकसी मधुबानी सो दूसरि नहीं भाखी ।
दियो प्रसाद 'दासपरमानन्द' देव मनुज मुनि साखी ॥

[८५६] राग कान्हरो

तुम तजि कौनि सनेही कीजै ।
सदा एक रस को निबहत है जाकी चरन रज लीजै ॥
यह न होइ श्रपनी जननी ते पिता करत नहिं ऐसी ।
बंधु सहोदर सोऊ न करत है मदन गोपाल करत है जैसी ॥
सुख श्ररु लोक देत हैं ब्रजपति श्ररु बृन्दावन बास बसावत ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर नारदादिक पावन जसगावत ॥

[८५७] राग केदारो

जाके मन बसै स्यामघन माधौ ।
सोइ सुन्दर सो धनी सोई कुलीन है सोई ॥
सो पंडित सो गुनी पुंज सोइ जो गोपाल कहि गावै ।
कोटि प्रकार धन्य सोई नर जो नहि हरि बिसरावै ॥
सो नर सूर, वेद बिद्यारत सो भूपति सो ग्यानी ।
'परमानन्द' धन्य सो समरथ जिहि लाल चरन रति मानी ॥

[८५८] राग देवगाँधार

वे हरिनी हरि नींद न जाई ।
जिन तन कृपा कटाच्छ चितै तुम अपने ढिग वैठाई ॥
जिन अपने नैननि मोहन कौं गोपिन सुरति दिवाई ।
करि करुना जिन गोपिन की ज्यों घर की आस छिड़ाई ॥
मनि माला करिगन गैयनु ते जे चित भीतरि ल्याई ।
जिनकी दिष्टि वृष्टि अमृत की देखत रूप सिराई ॥
जिननु गोपि के अंस वाहू धरि लीला गूढ दिखाई ।
जहँ जहँ जाहि तहीं तहीं ते संग चलत उठि धाई ॥
प्रेम विवस रस हरि दरसन के तन सुधि जिन बिसराई ।
'परमानन्द स्वामी' करुना ते गोपिन की गति पाई ॥

[८५९]

हरि को भगत माने डर काको ।
जाकौं कर जोरैं ब्रह्मादिक देवता सब दिन दंडवत है जाकौ ॥
सिंघ सखा करि गो भय करै यह विपरीति सुनी नहीं देखी।
हाथी चढ़ि कूकर की संका यह धौं कौन पुरानन लेखी ॥
सकल लोक अरु निगम गूढ़ मति कृपा सिंधु समरथ सब लायक ।
'परमानंददास' को ठाकुर दीनानाथ अभय पद दायक ॥

[८६०]

सब सुख सौई लहै जाहि कान्ह पियारो ।
करि सतसंग विमल जस गावै रहे जगत तै न्यारो ॥
तजि पद कमल मुकुति जे चाहै ताकौ दिवस अँधियारो।
कहत सुनत फिरत है भटकत छांडि भगति उजियारो ॥
जिन जगदीस हिरदै धरि गुरु मुख एकौ छिनु न विचारचौ ।
बिन भगवंत भजन 'परमानन्द' जनम जुआ ज्यो हारचो ॥

[८६१]

मन हर्‌यो कमल दल नैना ।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु माधो बैना ॥
कहा करों घर गयौ न भावे चलनि बलनि गति थाकी ।
स्याम सुंदर हठ दासी कीनी लखि न परे गति ताकी ॥
कहु उपदेस सहचरी मोसों कहँ जाऊँ कहँ पाऊँ ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर जहँ ले नैन मिलाऊँ ॥

[८६२] राग सारंग

क्यों ब्रज देखन नहिं आवत।
नवविनोद नई रजधानी नौतन नारि मनावत ॥
सुनियत कथा पुरातन इनकी बहुलोक हैं गावत।
मधुकर न्याय सकल गुन चंचल रस लै रति बिसरावत ॥
को पतियाय स्यामघन तन को जो पर मनहिं चुरावत।
'परमानन्द' प्रीति पद अम्बुज हरि अस राग निभावत ॥

[८६३] राग सारंग

ऊधौ कछुए नाहिन परत कही।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे बहुते बिथा सही ॥
बासर कलप भये अब मोको रैन न नींद गही।
सुमिरि सुमिरि वह सुरति स्याम की विरहा बहुत दही।
निकसत प्रान अटिक मे राखे अवधौं जानि रही।
'परमानन्द स्वामी' के विनु रे नैननि नदी वही ॥

[८६४] राग सारंग

माधो मुख देखन के मीत।
पाछे को काको चलवत है मढहातर के गीत ॥
सो प्रीतम दोऊ और निबाहै सदा करै निचीत।
'परमानन्ददास' को स्वामी सदा सराहे प्रीति ॥

[८५९]

हरि को भगत माने डर काको।
जाकौं कर जोरै ब्रह्मादिक देवता सब दिन दंडवत है जाकौ ॥
सिंघ सखा करि गो भय करै यह विपरीति सुनी नहीं देखी।
हाथी चढ़ि कूकर की संका यह धौं कौन पुरानन लेखी ॥
सकल लोक अरु निगम गूढ़ मति कृपा सिंधु समरथ सब लायक।
'परमानंददास' को ठाकुर दीनानाथ अभय पद दायक ॥

[८६०]

सब सुख सौई लहै जाहि कान्ह पियारो।
करि सतसंग विमल जस गावै रहे जगत तै न्यारो ॥
तजि पद कमल मुकुति जे चाहै ताकौ दिवस अँधियारो।
कहत सुनत फिरत है भटकत छाँडि भगति उजियारो ॥
जिन जगदीस हिरदै धरि गुरु मुख एकौ छिनु न विचार्यौ।
बिन भगवंत भजन 'परमानन्द' जनम जुआ ज्यो हार्यो ॥

[८६१]

मन हर्यो कमल दल नैना।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु मधु माधो बैना ॥
कहा करो घर गयौ न भावे चलनि बलनि गति थाकी।
स्याम सुंदर हठ दासी कीनी लखि न परे गति ताकी ॥
कहु उपदेस सहचरी मोसो कहँ जाऊँ कहँ पाऊँ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर जहँ ले नैन मिलाऊँ ॥

[८६२] राग सारंग

क्यों ब्रज देखन नहिं आवत ।
नवविनोद नई रजधानी नौतन नारि मनावत ॥
सुनियत कथा पुरातन इनकी बहुलोक हैं गावत ।
मधुकर न्याय सकल गुन चंचल रस लै रति बिसरावत ॥
को पतियाय स्यामघन तन को जो पर मनहिं चुरावत ।
'परमानन्द' प्रीति पद अम्बुज हरि अस राग निभावत ॥

[८६३] राग सारंग

ऊधौ कछुए नाहिन परत कही ।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे बहुते बिथा सही ॥
बासर कलप भये अब मोको रैन न नींद गही ।
सुमिरि सुमिरि वह सुरति स्याम की बिरहा बहुत दही ।
निकसत प्रान अटिक मे राखे अवधौं जानि रही ।
'परमानन्द स्वामी' के बिनु रे नैननि नदी बही ॥

[८६४] राग सारंग

माधो मुख देखन के मीत ।
पाछे को काकी चलवत है मढहातर के गीत ॥
तो प्रीतम दोऊ और निबाहै सदा करै निचीत ।
'परमानन्ददास' को स्वामी सदा सराहै प्रीति ॥

महात्म्य बीनती

[८६५]

राग सारग

हरि के भजन मे सब बात ।
ग्यान करम सौ कठिन कंरि कत देत हौं दुख गात ।
बदै बेद पुरान छिनु छिनु साँझ अरु परभात ।
संत जन मुख व्रत जसु नंदलाल पद अनुरात ॥
नाँहि भवजल और कौ बिघन के सिर लात ।
'दासपरमानन्द' प्रभु पै मारि मुख ये जात ॥

[८६६]

हरि जू की लीला काहि न गावत ।
राम कृष्न गोविंद छाँड़ि मन और बकै कहा पावत ॥
जैसे सुक नारद मुनि ग्यानी यह रस अनुदिन पीवत ।
आनन्द मूल कथा के लंपट या रस ऊपर जीवत ॥
देख बिचार कहा धौं नीको जेई भव सागर ते छूटै ।
'परमानंद' भजन बिन साधे वँध्यो अविद्या कूटे ॥

[८६७]

राग सारंग

जाकौ माधौ करै सहाइ ।
हस्त कमल की छाया राखै बार न बाँको जाइ ॥
कंस रिसाय सचीपति कोप्यौ कैसे नंद दुलराई ।
गल गरजो गोकुल मे बैठे गरज निसान बजाइ ॥
जिहि तै बिगरत ताहि तै संवरत समरथ जादौराई ।
'परमानंददास' सुखदायक राखै सूत बनाई ॥

[८६८] राग सारग विभास

बलिहारो पद कमल की जिन मैं नवसत लछन ।
ध्वजा व्रज अंकुस जब रेखा ध्यान करत विचछन ॥
ते चिंतत त्रय ताप[१] हरत सीतल सुख दायक ।
नखमनि की चन्द्रिका जोति उज्ज्वल व्रजनायक ॥
वृंदावन गो संग फिरत भूतल कृत पावन ।
गंगादिक तीरथ प्रसाद भगतन के मन भावन ॥
भक्त धाम कमला निवास माया गुन बाधक ।
'परमानन्द' ते धन्य जन्म जे सगुन अराधक ॥

[८६९] राग विलावल

जब गोविंद कृपा करें तब सब वनि आवै ।
सुख संपति आनन्द घनो घर बैठे पावै ॥
कुविजा कहा उद्यम कियो मथुरा के माली ।
उहि चंदन उहि फूल लेप चरचे वनमाली ॥
विनु तीरथ विनु दान पुन्य विनु ही तप कीने ।
पांडव कुल हित जानि कै अपने करि लीने ॥
ऐसी वहुत गोपाल की जाके मुनि साखी ।
'परमानन्द प्रभु' सभा मांझ द्रौपदी पति राखी ॥

[८७०] राग सारग विलावल

जाहि विस्वंभर दाहिनो सो काहे न गावै ।
कुविजा तै कमला करी इहि उचितै पावै ॥
यह रस राधे चाखि कै पांय लागि मनावै ।
सो गोपाल त्रिभुवन धनी घर बैठे पावै ॥
अपने करम साझो नहीं जो त्रिभुवन मानौ ।
'परमानंद' अंतर दसा जग जीवन जानौ ॥

---

१ भव ताप दुख

महात्म्य बीनती

[८६५]

राग सारंग

हरि के भजन मे सब बात।
ग्यान करम सौ कठिन करि कत देत हौ दुख गात।
बदै बेद पुरान छिनु छिनु साँझ अरु परभात।
संत जन मुख व्रत जसु नंदलाल पद अनुरात।।
नाँहि भवजल और कौ बिघन के सिर लात।
'दासपरमानन्द' प्रभु पै मारि मुख ये जात।।

[८६६]

हरि जू की लीला काहि न गावत।
राम कृष्न गोविंद छाँड़ि मन और बकै कहा पावत।।
जैसे सुक नारद मुनि ग्यानी यह रस अनुदिन पीवत।
आनन्द मूल कथा के लंपट या रस ऊपर जीवत।।
देख बिचार कहा धौं नीको जेई भव सागर ते छूटै।
'परमानंद' भजन बिन साधे बँध्यो अविद्या कूटे।।

[८६७]

राग सारंग

जाकौ माधौ करै सहाइ।
हस्त कमल की छाया राखै बार न बाँको जाइ।।
कंस रिसाय सचीपति कोप्यौ कैसे नंद दुलराई।
गल गरजो गोकुल मे बैठे गरज निसान बजाइ।।
जिहि तै बिगरत ताहि तै संवरत समरथ जादौराई।
'परमानंददास' सुखदायक राखै सूत बनाई।।

[८६८] राग सारग विभास

बलिहारो पद कमल की जिन मैं नवसत लछन।
ध्वजा ब्रज अंकुस जव रेखा ध्यान करत विचछन ॥
ते चिंतत त्रय ताप[१] हरत सीतल सुख दायक।
नखमनि की चन्द्रिका जोति उज्ज्वल ब्रजनायक ॥
वृंदाबन गो संग फिरत भूतल कृत पावन।
गंगादिक तीरथ प्रसाद भगतन के मन भावन ॥
भक्त धाम कमला निवास माया गुन बाधक।
'परमानन्द' ते धन्य जन्म जे सगुन अराधक ॥

[८६९] राग बिलावल

जब गोविंद कृपा करै तब सब बनि आवै।
सुख संपति आनन्द घनो घर बैठे पावै ॥
कुबिजा कहा उद्यम कियो मथुरा के नालो।
उहि चंदन उहि फूल लेप चरचे बनमाली ॥
बिनु तीरथ बिनु दान पुन्य बिनु ही तप कीने।
पांडव कुल हित जानि कै अपने करि लीने ॥
ऐसो बहुत गोपाल को जाके मुनि साखी।
'परमानन्द प्रभु' सभा मांझ द्रौपदी पति राखी ॥

[८७०] राग सारंग बिलावल

जाहि बिस्वंभर दाहिनो सो काहे न गावै।
कुबिजा तैं कमला करी इहि उचितैं पावै ॥
यह रस राधे चाखि कै पांव लागि मनावै।
सो गोपाल त्रिभुवन धनी घर बैठे पावै ॥
अपने करम नाम्हो नहीं जो त्रिभुवन मानी।
'परमानंद' अंतर दसा जग जीवन जानी ॥

---

१ भव ताप हरन

[८७१] राग बिलावल

ताते न कछु मागि हौं रहो जिय जानी ।
मन कलपित कोटिक करे दधि लहरि समानी ।।
बिनु माँगें आपदा आपै भरपूरि ।
ता ठाकुर के संपदा कहो केतिक दूरि ।।
जो जो देव अराधिये सो हरि के भिखारी ।
आन देव कत सेइये बिगरे अपकारी ।।
सो ठाकुर कत सेइये मागन लौ राखे ।
मांगे सरबसु जात है 'परमानद' भाखे ।।

[८७२] राग टोड़ी

अपने चरन कमल को मधुकर हमहू काहे न करहु जू ।
कृपावंत भगवत गुसाँई इहि बिनती चित धरहु जू ।।
सीतल आतपत्र की छाया कर अंबुज सुखकारी जू ।
पदम प्रबाल नैन अनियारे कृपा कटाच्छ मुरारी जू ।।
'परमानंददास' रस लोभी भाग्य बिना क्यों पावै जू ।
जाको द्रवत रमापति स्वामी सो तुम्हरे ढिग आवै जू ।।

[८७३] राग टोड़ी

कबहू करि हौं द्यौं दया ।
हस्त कमल की हमहू ऊपर फेरि जैहो छया ।।
जिहि प्रसाद गोकुल पति पाल्यो करतल अद्रि उठायो ।
जिहि कर अंबुज परसि चारु कुच राधा भलो मनायो ।।
जिहि कर कमल बाल लीला रस धेनुक दैत्य फिरायौ ।
जिहि कर कमल कोप झूठे धरि भूतल कंस गिरायौ ।।
जेहि कर कमल बेनु हरि लीनो गोपिन प्रेम बढ़ायौ ।
जिहि कर कमल दाम परमानंद सुमिरत यह दिन आयौ ।।

[८७४] राग टोडी

वड़ी है कमला पति की ओट
सरन गए ते पकरि न आये कियो कृपा को कोट ॥
जाकी सभा एक रस वैठत कौन वड़ो को छोट।
सुमिरन ग्यान अघेभव भंजन कहा पंडित कहा वोट ॥
जदपि काल वली अति समरथ नाहिन ताकी चोट।
'परमानंद प्रभु' पारस परसते कनक लोह नहीं खोट ॥

[८७५] राग टोड़ी

माधौ हम उरगाने लोग।
प्रात समै उठि नाऊ चरनमँह पाऊँ उचित उपभोग ॥
दुरलभ मुक्ति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै।
अपने चरन कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥
जहाँ राखो तहां रहूँ चरन तर परचौं रहूँ दरवार।
जाकी जूठनि खाऊँ निसदिन ताको करौं किवार ॥
जहाँ पठवो तहाँ जांउ विदा ले दूतकारी अधीन।
'परमानन्ददास' की जीवनि तुम पानी हम मीन ॥

[८७६] राग कानरो

मोहि भावै देवाधिदेवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एक है सेवा।
जो जानिये सकल वरदायक गुन विचित्र कीजिए सेवा।
तीन मुख्य देवता ब्रह्मा विष्नु अरु महादेवा ॥
संख चक्र सारंग गदा धर रूप चतुर्भुज आनन्दकन्दा।
गोपी नाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत 'परमानंदा' ॥

[८७७] राग कान्हरो

बहुते देवी बहुते देवा कौन कौन को भलो मनाऊं।
हौं अधीन स्यामसुंदर कौं जनम करम पावन जसु गाऊँ।।
लोक लोक प्रति सब कोऊ ठाकुर अपने भगतन के सुखदायक।
मोहि वह अधर घोर मुरली गोपी बल्लभ गोकुल नायक।।
देव असुर मानव मुनि ग्यानी हरि को दियो सबै कोऊ पावै।
हौं बलिहारी 'दासपरमानन्द' करुना सागर काहे न भावै।।

[८७८] राग कानरो

बलि बलि माधौ स्याम सरीर।
पुरुषारथ ब्रह्मादि विचारत जै जै जै जै बल भद्र बीर।।
नदादिक बल्लभ ब्रजवासी जानत है हरि सब की पीर।
सक्र मान खंडन करि स्रीपति गोवर्धन उद्धरन धीर।
बाजत बेनु राधिका बल्लभ कछु आस नहीं बरसत नीर।
'परमानंद प्रभु' सब विधि सुंदर बिपुल बिनोद गहै कर चीर।।

[८७९] राग कानरो

माधौ तुम्हारी कृपा तें को को न बढ्यो।
मन क्रम बचन नाम जिन लीनो ऊँची पदवी सोई चढ्यो।।
तुम जाहि अमल दियो जगजीवन सो पुरान कुतर्क हठ्यो।
गनिका व्याधि अजामिल गजेन्द्र तिनन कहा धौ बेद पढ्यो।।
ध्रुव प्रहलाद भगत है जेते तिनको निसान बज्यो बिन ही मढ्यो।
'परमानन्द प्रभु' भगत वच्छल हरि यहै जानि जिय नाम दृढयो।।

[८८०] राग कल्याण

सांचौ दिवान है री कमल नयन ।
तू मेरो ठाकुर जसुदानंदन कै तू है जगत जीवन ॥
जाके छत्र अकास सिंघासन वसुधा अनुचर सहस अठासी ।
सेवक चपरि ताहि को मारत जे हठि होत मवासी ॥
जाके ब्रह्माऊ हरि सखा उमापति सुरपति पान खवावै ।
नारद तुम्मर की गति गावै मारूत चँवर ढुरावै ॥
जाकै कमला दासी पाय पलोटै रिधि सिधि छार बुहारै ।
दफतर लिखै सारदा गनपति रवि ससि न्याउ निवारे ॥
जाकै वन्दी वेद पुकारै द्वारे मांहि लौ कोउ न पावै ।
ताहि निहाल करै 'परमानन्द' नैक मौज जो आवै ॥

[८८१] राग कल्याण

प्रीति तौ एकहि ठौर भली ।
यह जु कहा मति चरन कमल तजि फिरे जु चली चली ॥
ते जानै जे सव विधि नागर सार सार गहि लोग ।
पायो स्वाद मधुप रस लोभी स्याम धाम संयोग ॥
'परमानन्ददास' गुन सुन्दर नारदादि मुनि ग्यानी ।
सदा विचार विषय रस त्यागी जसु गावत मधु[१] बानी ॥

---
१ मृदु

समुदाय के पद

[८८२]

राग सारंग

क्यों बिसरै वह गाइ चरावनि ।*
बाम कपोल बाम भुजा पर करि दच्छिन भौंह उचावनि ॥
कोमल कर अंगुलि गहि मुरली अधर सुधा बरषावनि ।
चढ़ि विमान वे सुनति देव तिय तिनतु मोह उपजावनि ॥
हार हास अरु धिर चपला उर रूप दुखित सुख लावनि ।
चित धरि तिन रहत चित्र ज्यों गाइन सुधि बिसरावनि ॥
मोर मुकुट स्रवननि पल्लव कटि मल्ल स्वरूप बतावनि ।
चरन रेनु वांछित कंपत भुज सरितनु गमनध भावनि ॥
आदि पुरुष ज्यो अचल भूत ह्वै संग सखा गुन गावनि ।
बन बन फिरत कबहुँ मुरली करि गिरि चढ़ि गाइ बुलावनि ॥
लता बिटप बन मांझ प्रगट ह्वै फल भर भूमि नवावनि ।
ततछिन परिचै होय प्रीत अब जब मधुधाराउ पटावनि ॥
सुन्दर रूप देखि बन माला मत्त मधुप सुर गावनि ।
आदर देत सरोवर सारस हंस निकट बैठावनि ॥
बल संग स्रवन पुहप सोभा गिरि वर नाद पुरुवावनि ।
बिबिध भाँति बन गमन बिचच्छन नूतन तान बनावनि ॥
सुनत नाद ब्रह्मादिक सुरगन अधिक चित्त मोहावनि ।
चलित ललित गति हरित ताप ब्रज भूमि सोक बिनसावनि ॥
ब्रज जुवती मन मैन उदित करि थावरता ठहरावनि ।
दिव्य गंध तुलसी माला उर मनि धर गाइ ग्वावनि ॥
बेनु नाद करि बंचित चित करि हरिनि भवन छिड़ावनि ।
कुंददाम सिगार सकल अंग जमुना जल उछरावनि ॥

---

* प्रस्तुत पद में युगल गति की भावना दृष्टव्य है । तुलना कीजिये—
वाम वाहु कृत वाम कपोलो वल्गित भरधरार्पित वेणुम् ।
कोमलागुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्द ॥

१ भ्रुव

मुदित सकल गंधर्व देव गन सेवा उचित करावनि ।
आरत दृग ब्रज गाइन के मन अति आनन्द बढ़ावनि ।।
गोरज रंजित नव वनमाला सुख देवे ब्रज आवनि ।
घूमत दृग मदमान देत कुंडल स्रुति जुग झलकावनि ।।
बतरस हँस आंनन सूचत सव विधु ज्यो अंग सरसावनि ।
जुग जुग गोपी रजनी मुख सब अति पुनीत जस गावनि ।।
यह लीला चित्त बसौ लसौ नित गोपी जन सुख पावनि ।
'परमानन्ददास' कौं दीजे ब्रजजन पद रज धावनि ।।

[८८३] राग सारंग

करत गोपाल की दुहाई ।※
मातो हलधर गनत न काहु जमुना उलटि वहाई ।।
घूर्न नैन चलत पग[१] डगमग तब जानु ९प को कूट ।
अंबर नील अटपटे पहिरे कनक कटोरि मद घूट ।।
जुवती सहस संग इक लीने वन वन गावत गीत ।
मार्‍यो द्विविद कंस को साथी कर बलभद्र पुनीत ।।
जै जै राम कहत देवगन बरखत कुसुम अपार ।
'परमानन्द स्वामी' के भ्राता फनि फनि मनि अधार ।।

[८८४] राग सारग

या व्रत ते कवहुँ न टरोरी ।
बंसी वट मंडप वेदी रचि कुंवर लाडिलो लाल वरौंरी ।।
इत जमुना उत मान सरोवर मध्य भांवरी बीच फिरौरी ।
बरसानो ब्यौसार हमारो अपजस तें कवहूं न डरौंरी ।।
कुंज कुटी निज धाम हमारो आनन्द प्रेम उमगि भरौंरी ।
'परमानन्द प्रभु' अंग अग नागर कुंवर स्याम सग केलि करौंरी ।।

---

[८८५] राग गौरी

करति जो कोट घूँघट की ओट ।
तौउऽब न रहत नैन अनियारे निकसि करत है चोट ॥
पाछे फिरि देखै कोऊ ठाढ़े सुन्दर बरएक ढोट ।
'परमानन्द स्वामी' रति नायक लागी प्रेम की जोट ॥

[८८६] राग गौरी

ब्रज की बीथिन निपट साँकरी ।
यह भली रीति गाऊँ गोकुल की जितही चलीए तितहि बाँकरी ॥
जिहि जिहि बाट घाट बन उपवन तिहितिहि गिरिधर रहत ताफिरी ।
तहाँ ब्रज बधु निकसत नहीं पावत इत उत डोलत रोरत काँकरी ॥
छिरकत पीक पट मुख दीए मुसिकत छाजै बैठे झरोखे झाँकरी ।
'परमानन्द' डगमगत सीस घट कैसे कै जइये बदन ढाँकिरी ॥

[८८७] राग सारग

कदमतर ठाढ़े हैं गोपाल ।
आस पास ग्वालन की मंडली बाजत बेनु रसाल ॥
बरुहा मुकुट अरु कानन कुंडल मृगमद तिलक सुभाल ।
'परमानन्द' प्रभु रूप विमोही प्रेम मगन ब्रजबाल ॥

[८८८] राग सारंग

है मोहनी कछु मोहन पहियाँ ।
मोहन मुख निरखत हौं ठाढ़ी आये अचानक गहो मेरी वहियाँ ॥
जो भायो सो कियो आपनी रुचि मैं सकुचित न कीनी नहियाँ ।
'परमानन्द प्रभु' स्याम गये पुलिनु बीच भीत रही मन महियां ॥

[८८९] राग सारंग

कहां ते आये हो द्विजराज ।
सांच कहो तुम कहां जाओगे कहां वसोगे आज ॥
हम तौ थकित अस्त उदया करि रहे तलप ह्यां साज ।
इहि वट बसत जु कारो भोगी कहति तिहारे काज ॥
गोकुल जाऊँ संकेत सवनि कौ जाइ कहौं हरि लाज ।
'परमानंद' वच्छ डरत हमारे तुमहि विप्र लेहु नाज ॥[१]

[८९०] राग विलावल

काम धेनु हरि नाम लियो ।
मन क्रम वचन की कौन संमति कही महापतित द्विज अभै दियो ॥
कौन नृपति की हुती कुल वधू गनिका को कहा पवित्र हियो ।
जग्य जोग तो कियो कहा नृग कौन वेद गज ग्रह कियो ॥
द्रुपद सुता दिन हरि सुमिरे नृपति नगन वपु करि न छियो ।
असुर त्रास त्रैलोक्य सुमंकित सुत को काहे न पोच कियो ॥
भव जल व्याधि असाध्य रोग को जपतप व्रत औषध न वियो ।
गुरु प्रसाद साक्षी संगति जन 'परमानंद' रंक कियो ॥

---

१ गोरत (म.)

[८९१] राग बिलावल

याते जिय भावै सदा गोबरद्धन धारी।
इन्द्र कोप तै नंद की आपदा निवारी॥
जो देवता अराधिये सो हरि के भिखारी।
अन्य देव कत सेइए बिगरै अपकारी॥
दुःसासन के कोप तै द्रौपदी उबारी।
'परमानंद प्रभु' सांवरो भगतन हितकारी॥

[८९२] राग बिलावल

हम नंद नंदन राज सुखारे।
सबै टहल आगेई भुज बल गाय गोप प्रतिपारे॥
गोधन फैलि चरत बृन्दावन राखत कान्ह पियारो।
सुरपति खुनस करी ब्रज ऊपर आपुन सो पचि हार्‌यो॥
गोपी और ग्वाल बनि आये अब बड भाग हमारे।
'परमानंद स्वामी' सरनागत सब जंजाल निवारे॥

[८९३] राग बिलावल

करत है भगतन की सहाय।
दीन दयाल देवकी नंदन समरथ जादौराय॥
हस्त कमल की छाया राखै जगत निसान बजाय।
दुष्ट भुवन भय हरत धोख पति गोबरद्धन लियो जु उठाय॥
कृपा पयोध भगत चिंतामनि ऐसे बिरद वुलाय।
'परमानंददास' प्रति पालक वेद विमल जस गाय॥

राग सारंग

[८९४]

तातें गोविंद नाम लै गुन गायो चाहौं ।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहौं ॥
जो हौं तुम में मिलि रहौं कछू भेद नहि पाऊँ ।
प्रलै काल के मेघ ज्यौं तुमहि माँझ समाऊँ ॥
जीव ब्रह्म अंतर नहीं मनि कंचन जैसे ।
जल तरंग प्रतिमा सिला कहिवे कौ ऐसो ॥
जिन सेवा सचुपाइये पद अंबुज आसा ।
सो मूरति मेरे हिरदै बसो 'परमानंददासा' ॥

[८९५]

जो तू नंद गांउ दिसि जैहै ।
नैनन को फल यह मेरी सजनी राम कृष्न कों देखत ऐहै ॥
वीथिन वच्छ चरावत ऐहैं वे अवलोकत अति आनन्द पैहै ।
गौर स्याम तन नील पीत पट कनक कुंडल सिर मोर चंदै है ॥
गुरु जन ते जो अवसर पावै कान्ह सुनत मो वात चहै है ।
'परमानन्द' गिरिधरन कुंवर कौं मेरी को तौ अंक लगै है ॥

[८९६]

आंधरे की दई चरावै ।*
जाकौ कितहू ठौर नाहीं सो तुम्हरी सरन आवै ॥
गंगा मिले सकल जल पावन लोक वेद कुल सव विसरावै ।
सुपच वसिष्ट होइ 'परमानंद' ऐसो ठाकुर काहे न भावै ॥

* प्रस्तुत पद परमानन्ददास ने सूर की महिमा में गाया है ।

[८९७] राग धनाश्री

तन मन नवल जुगल पर वारौं ।*
कुंज रंध्र गौर स्याम छबि बारंबार निहारौं ।।
अपनी टहल कृपा करि दीजे ता संग जीव उबारौं ।
'परमानंद' जु लाभ भजन बिन काज सबै लै जारौं ।।

[८९८] राग सारंग

नैनन ते न्यारे जी न टरौ ।
परम सुगंध मृदल सीतलता पानि कमल उर पर धरौ ।
तुम तौ मेरे प्रान जीवन धन मिलि मोहन आरति हरौ ।
मात पिता पति लोग बिराने सहि न सकौ जो जरि मरौ ।।
गाइ दुहावन के मिस आवत प्राननाथ तुम जिन बिसरौ ।
'परमानंददास' की जीवनि मेरी दोहनी दूध भरौ ।।

[८९९] राग धनाश्री. सारंग

जो जन हिरद नाम धरै ।
अष्ट सिद्धि नव निधि को बपुरी लटकत लारि फिरै ।।
ब्रह्मलोक इन्द्र लोक सिवलोक सबहू तै ऊपरै ।
जो न पत्याऊं तौ चितवो ध्रुव तन टारयो हू न टरै ।।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन सब दुख दूरि करै ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर वाचा ते न टरै ।।

* प्रस्तुत पद में राधा वल्लभीय भक्ति के तत्त्व दर्शनीय है—सपादक

[६००] राग सारंग

यह मांगो संकरषण बीर ।
चरन कमल अनुराग निरंतर भावे मोहै भगतन की भीर ॥
संग देहौ तौ हरि भगतन को वास देहुर स्री जमुना तीर ।
स्रवन देउ तो हरिकथारस ध्यान देहु तो स्याम सरीर ॥
मन कामना करौ परिपूरन पावन मज्जन सुरसुरि नीर ।
'परमानन्ददास' को ठाकुर त्रिभुवन नायक गोकुल पति धीर ॥

[६०१] राग सारंग

यह मांगो गोपी जन वल्लभ ।
मानुष जन्म और हरि सेवा व्रज बसिवो दीजै मोहि सुल्लभ ॥
स्री वल्लभ कुल को होहूँ चेरो वैष्नव जन को दास कहाऊँ ।
स्री यमुना जल नित प्रति न्हाऊँ मन क्रम बचन कृष्न गुन गाऊँ ॥
स्री भागवत स्रवन सुनि नित इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ ।
'परमानन्ददास' यह माँगत नित निरखों कबहूँ न अघाऊँ ।

[६०२]

यह मांगो जसोदा नंद नंदन ।
वदन कमल मेरो मन मधुकर नित प्रति छिन छिन पाऊं दरसन ॥
चरन कमल की सेवा दीजै दोऊ जन राजत विद्युलता घन ।
नंद नन्दन वृषभान नंदिनी मेरे सरवस प्रान जीवन घन ॥
व्रज वसि अरु जमुना जल पीऊँ स्री वल्लभ कुल को दास ये ही मन ।
महा प्रसाद पाऊं हरि गुन गाऊं 'परमानन्ददास' दासी जन ॥

[९०३] रागविलावल

माधौ यह प्रसाद हौं पाऊँ ।
तुव भृत भृत्य भृत्य परचारक दास को दास कहाऊँ ॥
यह मंत्र मोहि गुरून बतायो स्याम धाम की पूजा ।
यह बासना घटैं नहीं कबहूँ देवन देखौं दूजा ॥
'परमानंददास' तुम ठाकुर यह नातौ जिन टूटै ।
नंदकुमार जसोदा नंदन हिलिमिलि प्रीति न छूटै ॥

[९०४] राग बिलावल

काहे न सेइए गोकुल नायक ।
भगतन के ठाकुर भगवान सकल सुखन के दायक ॥
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक जाके आग्याकारी ।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि बरुन कुबेर भंडारी ॥
औरहु नृपति कह्यौ सब मानै सन्मुख बिनती कीजै ।
तुम प्रभु अन्तर्यामी ब्यापक दुतीय साखि कहा दीजै ॥
जन्म कर्म अवतार रूप गुन नारदादि मुनि गावै ।
'परमानंददास' स्रीपति अधम भले बिसरावै ॥

[९०५] राग सारग

माई हौं अपने गुपालहिं गाऊं ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊं ॥
जे ग्यानी ते ग्यान बिचारौ जे जोगी ते जोग ।
करमठ होईं ते करम विचारौ जे भोगी ते भोग ॥
कबहुंक ध्यान धरत पदअंबुज कबहुँ बजावत बेनु ।
कबहुंक खेलत गोप बृंद संग कबहुँ चरावत धेनु ॥
अपने अंस की मुकति राजी है माँगि लियौ संसार ।
'परमानंद' गोकुल मथुरा मे बन्यौ न यहै बिचार ॥

[९०६] राग सारंग

अपने लाल के रंग राती ।
जा दिन तैं कटि वसन लपेट्यौ ता दिन तैं संग जाती ॥
वन वन ढूंढ़त रहत हरिहिं अव सुरत संग हरखाती ।
'परमानन्द प्रभु' अंग अंग नागर जोवन वाल संघाती ॥

[९०७] राग विलावल

मदन गोपाल के रंग राती ।
गिरि गिरि परत संभार न तन की अधर सुधा रसमाती ॥
वृंदावन कमनीय सघन वन फूली चहुँ दिस जाती ।
मंद सुगंध वहै मलयानिल अति जुड़ात मेरी छाती ॥
आनंद मगन रहत प्रीतमसंग द्यौस न जानो राती ।
'परमानंद' सुधाकर हरि मुख पीवत हू न अघाती ॥

[९०८] राग सारंग विलावल

मैं तो विरद भरोसे वहु नामी ।
सेवा सुमिरन कछुए न जानो सुनियो परम गुरु स्वामी ॥
गज अरु गीध तारे हैं गनिका कुटिल अजामिल कामी ।
जेहि को साप स्रवन सुनि आपो चरन सरन सुख धामी ॥
'परमानन्द' तारो के मारो [तुम] समरथ अन्तरयामी ॥

[६०६] राग सारंग

तैं नर का पुरान सुनि कीना ।
अनपायनी भगति नहिं उपजी, भूखे दान न दीना ॥
काम न बिसरयौ क्रोध न बिसरयौ, लोभ न छूटयौ देवा ।
मोह मलिनता मने नहि छूटी, विकल भई सब सेवा ॥
बाट पारि घर मूंसि बिरानो, पेट भरे अपराधी ।
जेहि पर लोक जाय अपकीरति सोई अविधा साधी ॥
हिंसा तौ मनते नहिं छूटी, जीव दया नहिं पाली ।
परमानंद साधु संगति मिलि कथा पुनीत न चाली ॥

[६१०] राग सारंग

भजो राधे कृष्न राधे कृष्न राधे गोविंद ।* ध्रु०
केशव जी कल्यान गिरि धरन छबीले लाल ।
जाको मुख देखत कटत जम फंद ॥
देवकी को छैया बल भद्र जी को भैया लाल ॥
नंद को नंदन स्वामी असुर निकन्द[1] ॥
ब्रजपति ब्रजराज सन्तन[2] के सम्हारे काज ।
मुरली धरत नैना देखत आनन्द ॥
चत्रभुज चक्रपानि देवकी नंदन देव ।
मदन मोहन स्री वृन्दावन चंद ॥
जादौपति जादौराय, सन्तन सदा सहाय ।
याही धुनि गावें 'स्वामी परमानंद ॥'[3]

---

1 आनन्दकन्द
2 भगतन
3 दास
* प्रस्तुत पद पुष्टिमार्गीय मंदिरो मे भागवत कथा के अनन्तर गाया जाता है ।—संपादक

[६११] राग बिलावल

जाहि वेद रटत, ब्रह्म रटत, सेस रटत, सिभु नारद सुक व्यास रटत
पावत नहि पारु ।+
ध्रुवजन प्रहलाद रटत, कुंता के कुंवर रटत, द्रुपद सुता रटत रहत,
नाम अनामनि सुख चारु ।।
गौतम की नारि रटत, गनिका गज विप्र रटत, राजरमनि रटत,
सुनत राखत गृह द्वार ।।
'परमानन्द' सोई लाल गिरधर रसिक राइ जसोदा कौ लाल,
प्यारी राधिका उर हार ।।

दृष्टकूट

[६१२] राग टोडी

उधौ जू, मन की मनहिं रही ।*
पंचमुख दृग आठ जाके द्वादस चर न यही ।
आठ नारी द्वै भर तारी जुगल पुरुष इक नारी गही ।
चारि वेद दुहि ललौ साँवरौ नैनन सेन दई ।
'परमानंददास' के प्रभु पै यो पीवत है यही ।।

— - ——

४

परिशिष्ट

[परमानन्द सागर]

पद-संग्रह

[६१३] राग विलावल

आछे आछे बोल गढ़े।
कहा करौं उतते नहिं निकसत स्याम मनोहर चतुर बढ़े॥
मेरे नैक आउरो भामिनि रहसि बुलावत रूख चढ़े।
'परमानन्द स्वामी' रति नागर प्रीति-बखानत कुँवर लड़े॥

[६१४] राग वसंत

लालन संग खेलन फाग चली।
चोवा चन्दन अगर कुंकमा छिरकत घोष गली॥
रितु बसंत आगम नव नागरी जोवन भारभरी।
देखन चली लाल गिरिधर को नन्द जु के द्वार खरी॥
राती पीरी-चोली पहरे नौतन झूमक सारी।
मुखहिं तंबोल नैन मे काजर देत भामती गारी॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी गावत गीत सुहाये।
नवल गोपाल नवल ब्रजवनिता निकसि चौहटे आये॥
देखो आय कृष्ण जु की लीला विहरत गोकुल माँही।
कहत न बनें 'दासपरमानंद' यह सुख अनत जु नाहीं॥

[६१५] राग मलार

नंद लाल माई गुपत चलावत पीची।
कुचहि कपोल ताकि तकि मारत मुनि खोजत भई नीची॥
बालक जानि गये री वृन्दावन खेलन आँखिन मीची।
सबहि नखिन मँह ठाढ़ी [हों] उन मेरी लर खींची॥
न्याव करौंरी जसोदा के आगे उर अंतर रस भीची।
'परमानन्ददास' को ठाकुर अधर सुधा रस सींची॥

[६१६] राग सारंग

माधौ चांचर खेल ही खेलत री जमुना के तीर।
बिच बिच गोपी बनीं बीचबिच री वे बने हैं मुरारि।
मरकत मनि कंचन मनि माला री जानो गुही सँवार ॥
कुंकुम बरनी गोपिका कैसो री घनस्याम सरीर।
नील पीत पटमंडिता नाचत री वे प्रेम गंभीर ॥
करतल ताल बजावहीं गावे री वे गीत रसाल।
मदन महोच्छव[१] मन हर्यो री लीलासागर गिरिधरलाल ॥
किंकिनी नूपर बाजहीं सबद री कोलाहल केलि ॥
क्वनित बेनु मधि नायका लटकत री लाल भुजगल मेलि ॥
एकजु पान खवावही एक जु माँगे री देहु उगार।
एक जु मुख चुंबन करे री एक जो बीने टूटे हार ॥
चंद भूल कौतुक रह्यो हरना री वे मोहे नाद।
थाक्यो रथ कैसे चले ब्रज युवतिन री बहलाये वाद ॥
चढ़ि बिमान सब देवता बरखन री वे लागे फूल।
जय जय जय जदुनंदना रास रच्यो रति नायक भूल ॥
जो प्रसाद उनको भयो परिरंभन री बाहु पसारि।
'परमानन्द प्रभु' स्रीपति पुन्य पुंज री कृत गोकुल नारि ॥

[६१७] राग सारंग

राजत हैं बृषभान किसोरी।
ब्रज के आँगन में खेलत पियसो रितु बसंत के आगम होरी ॥
ताल मृदंग चंग बाजे राजत सरस बाँसुरी धुनि घोरी।
अगर जवाद कुंकुमा केसर छिरकत स्याम राधिका गोरी ॥
जब ही रबकि पीत पट पकरत यह रस रसकिन देत झकझोरी।
'परमानंद' चरन रज वंदित राधा स्याम बनी है जोरी ॥

---
[१] महोदय

[६१८] राग गोरी

मेरो मारग छाँड़ि देऊ प्यारे कमल नयन मन मोहना ।
कटि पट पीत सुहावनो अरुन उपरेना लाल ।
सीस मोर के चंद्रिका पर चंचल नैन विसाल ॥
कुंचित केस बनी छवि सुंदर चारू कपोल ।
स्रुति मंडलकंचन मनी हो झलकत कुंडल लोल ॥
मोहन भेष भली बन्यौ मृगमद तिलक सुभाल ॥
अलक मधुप सम राज ही हौं अरू मुक्तावलि भाल ।
कुंज महल ते हौं चली अपने गृह को जात ।
बन मे सोर न कीजिए हो सुंदर साँवल गात ॥
उर अंचल कत गहत हो दूरि भये कहौं वात ।
अपने जिय न[1] विचारिहु पैपहर[2] कहौं भली वात ॥
सांझ परी दिन अथयो हौं अरुझाई किहि काम ।
सेति मेति क्यों पाइये ये पाके मीठे आम ॥
नंदराय के लाडिले हो बोलत मीठे बोल ।
रहिहौं कै जाइ पुकारिहौं पै ना कंचुकी बंध खोल ॥
'परमानन्द प्रभु' रमी ज्यौं दंपति रति हेत ।
सुरत समागम रस[3] रही नदी जमुना कै रेत ॥

[६१६] राग मारग

अहो रस मोरन मोरे लाल[4] स्याम तमाल होरी खेलही ।
कनकलता संकुलित नघन पर आनन्दमय रस फैलहीं ॥ ध्रु०
गृह गृह तें नवला चपला सी जुरि जुरि झुंडन आईं ॥
लहंगा पीत हरे और राते सारी स्वेत सुहाईं ॥
अति झीनो झलकत नवसत नव कनक जटित पिचकाई ।
कंचुकी कनक कपिस सब पहरें तहां उरजन की झांईं ।१॥

कहाँ लौं कहौं सकल सोभायुत ए गोकुल की नारी।
अंग अंग गिरिधर गुनलंकृत विधि न जात बिस्तारी॥
प्रफुल्लित वदन तंबोल भरे मुख गावत मीठी गारी।
धुनि सुनि स्रवन निकसे सिंघ पौरी मोहनलाल निहारी॥२॥

उततें स्रीवृषभान दुलारी आवत रूप छटारी।
छापेरी[1] झूमक अंग साजे चहुँ दिस लगी किलारी॥
बेनी चंपक बकुलन ग्रंथित रुचि रुचि सखिन संचारी।
मोतिन माँग और सीस फूल मध्य रतन जटित फुलकारी॥३॥

स्रवनन कुसुम जराउ राजे लरै द्वै द्वै दुहुँ ओर।
पटियन पैं जु लसत दमकन में छवि की उठत झकोर॥
चल दल पत्र प्रवाल बज्र सौं कोधत पंकति जोर।
भाल दिपत जाउ मृगमद मे वक्र भौंह जुग मोरें॥४॥

अखियाँ खुली सुखेन बड़ेरी कहा कहो लोनाई।
सेत अरुन ऊपर मधुराई तामे कछु चिकनाई॥
बसीकरन रस सों भिजी रचि पचि अंजन देख बनाई।
रस बस ललकें ऊपर झलकें परमविधि चपलाई॥५॥

नासा सौभग निपट सुढ़ारी बेसर सिखी आकारी।
पन्नाकर चूनी बहुबरनी छाँह सिखर परकारी॥
सलिल कुँवर सातो जुग ऊपर अधर अरुनता भारी।
गमन करत जब हंस लजावत अरक थरक द्युति न्यारी॥६॥

दसनावली उन सम्पति लिये दरसत जब मुसिकानी।
चिबुक मध्य सामल बिंदु राजें मुख सुख सदन सयानी॥
ग्रीवा लटकि अटकि नागरि की बोलत अमृत बानी।
चोली मुलकट हेम गुनन की कवच सुभटता ठानी॥७॥

---
[1] झांपेरी

बाजूबंद ताउ ढिग सोहत नग वहु मोती लागे ।
तैसी तूइ तड़ित की न्याई ऐसी नौ रंग पागे ॥
नवग्रह गजरा जगमगे नव पोहोंचो चुरियन आगे ।
अचल सुहाग भाग्य की लहरें हस्त हैं मेंहेदी दागे ॥८॥

पांच चवर पटियन पै गूंथी डोर चुनाव पें डूले ।
झूलत झवि फवि सुंदरता फूंदना जहां समतूलें ॥
लहेंगा लाल गुलाल रंग सम पुरट उदक सो झूलें ।
झंकृति कोकिल रव मर्दन करि नूपुर विछिया बोलें ॥९॥

दर्पन निरत मुदरिया धरनी तेज पुंज की नगरी ।
दस ससि के अनुमान प्रमानन चमक जनावत सगरी ॥
हथ साकर रवनी बांधेगी कृष्न सार के पगरी ।
मिलकरि वृंद आय विपिन मे जब तब यो झगरी ॥१०॥

जेहर तेहर पायन सों अनवट कुंदन हीरा वलिता ।
पीन पिंडुरिया तेसोई चरनन जावक दीनो ललिता ॥
इहि विधि राधा रानी गाई नांहि सांवरे सरिता ।
जो जो रसिक गाइ है ऐसे प्रेम पुंज फल फलिता ॥११॥

सब समाज भामिनी लै दामिनि वृंदन वृंदन हेली ।
कजरा अरगजा गोरा सजि नजि लये सहेली ॥
लटकत आवत भांतिन कंठनि बांह परस्पर मेली ।
उनमद कोऊ चदत न काहू स्याम नमर वन वेनी ॥१२॥

बाजत ताल मृदंग ढोल डफ झांझन झमक लगावें ।
करत ढोक प्यारे प्रीतम को भुरि दुरि नयन नचावे ॥
मुरली सुर फेरत घोषन में टेर टेर दरसावे ।
चल्यौ सुगन्ध सहज चारनो कोउ विचार को दावे ॥१३॥

बगर बगर ते सखा स्त्रवन सुन जूथन जूथन धाये ।
अपनी भीर सहित संकरषन लै स्रीदामा आये ॥
कुंकुम केसर माट अरु मथना तेल फुलेल मिलाये ।
तोलौं तोक सुबल उन सन्मुख आगें लैन पठाये ॥१४॥

इतहू बाजे लागे बाजन दुंदभी धौंसा गाजे ।
रुंज मुरज आवज सारंगी जंत्र किन्नरी साजें ॥
इन मध्य मुकुट धरे नंद नंदन नटवर भेषन राजें ।
यह सिंगार नंदराय हस्तकौ कोटिक मन्मथ लाजें ॥१५॥

नखसिख ते अभरन की जोते जगमगाय मेरी माई ।
खुले बंद सब देह उघारी काछ जाल समुदाई ॥
खोलि भुवन भूषन के बाबा होरी भलें मनाई ।
खात हैं बीरा उमगि अलोलन रोम रोम छवि छाई ॥

सुन ले ललिता आज खेल यह मचै खरिक मे माई ।
मानत नही जब वचन अटपटे उततें अंगुरी फिराई ॥
चली है निसंक निरंकुस करिनी एकठौरे तहाँ आई ।
सुबल तोक दोउ गहि लीने जान कहूँ नहिं पाई ॥१७॥

राखे हैं ओल कहत ब्रज सुंदरि तुमे कहाँ लौं पैये ।
दगा कियो किधौं साच कहत हौ कहो किहि बात पत्यैये ॥
जो कूटक तो बाँधि बाँधि के सांटिन नृत्य नचैये ।
जो साँचे हो इन बातनते दैहे छाडि पुन नैये ॥१८॥

बडी बेर भई सुधि जब लीने राखे है दोउ घेरे ।
कहत है अब दूर भजे स्याम घन पीताम्बर को फेरें ॥
जानु सौहृढ़ पकरे नही छूटे दौरे दिये दरेरे ।
खिरिका खैचि दई लै सांकर तरुनी रह गईं हेरै ॥१९॥

चढ़ि चढ़ि अटा चतुर्दिस बरषत भरिभरि कनक कमोरी।
नाहि दाँव बदला लेबेको सहचरी रंग रंग बोरी॥
छूटत है जल जंत्रन चहुँदिस बोलत हो हो होरी।
सुबल भली विधि पहोंच्यो मिलि मिलि यह सिख दीनो गोरी॥२०॥

भई मार गोबर की नीके ललिता सैन जनाई।
तुहि पकरी तुम अब मोहि मेलो सोंह लाल की खाई॥
तब जो लोभ दाबि छटकायो समझे न भेद कन्हाई।
द्वार कपाट उघार भजेहू फिर मोहि सिखो बताई॥२१॥

उत सोंम नहीं भये संपूरन मलहि सब विधि पूरी।
गई है ऊपर गनो न जात हो मैन सुनैया चूरी॥
विद्रुम दाव दसन सों कोपी चन्द्रावलि सुधि पूरी।
कीनी मार उलेडी गागर आंधी बरषत घूरी॥२२॥

कृष्नागुर और अबीर सानिकें गेंदुक सरस संवारी।
श्रीदामा आदि सखा जे कहियत तिनकों तकि तकि मारी॥
कूदत जित तित लगे गात पर हलधर बाँह पसारी।
लगे हैं अति सुकुमार लाल को कहाँ गई प्रीति तुम्हारी॥२३॥

हम ऐसो नहिं खेल खेलिहैं जो लागे या तन कों।
देहें भजाई ये सेन तिहारी गहे हैं बोउ जन कों।
तुम तो कहत ललित यह मूरति जीवन हम ब्रजजन को।
ऐके लै आई मिलो किन अग्रज पूछि आपने मनको॥२३॥

लेगी निसंक लइ ठाले कर पकरि लिए भरि कोरी।
जागि उठे ब्रजराज सदन में सब ऐसी भाँतिन दोरी॥
मुख मांडत सुमनन पंकन सों उर चोवा सो बोरी।
उल्हर रहें बादर रंगरंगन मेंह तेनी होत है होरी॥२५॥

उतरो कर मनोरथ वाके देखि जसोमति लाजी।
जीती हैं रस रीति कटक वर सुरन छबीली छाजी ॥
'परमानन्द' आनन्द दुंदभी आई बगर में बाजी।
दै दै कूक ब्रजेस प्रभृति तब सभा अथाई भाजी ॥२६॥

[६२०] राग आसावरी

तू जिनि आवै नंद जु के द्वारे तैरी बात चलाई री।
खान पान सब तज्यौ सँवारे लै सब लियो है चुराई री ॥
कौन नंद काकौ सुत सजनी मैं देख्यो सुन्यो न माईरी।
फूंकि फूंकि हौं पांई धरत मेरे पैंडे परे लुगाई री ॥
अहो सखी कालि गई हौं ब्रज मे कान्ह ठगोरी लाई री।
जबतै दिष्टि परे मन मोहन तबतै कछु न सुहाई री ॥
अहो सखी तु सुनलै बतियां मेरे जियकी कछूँ न दुराइ री।
सुन्दर स्याम मिलिवे कै कारन नैननि बान चलाईरी ॥
मेरे मन को यहै मनोरथ पं गुरूजन हैं दुखदाई री।
'परमानन्द प्रभु' जो पै पाऊँ मेरे तन बिथा बुझाई री ॥

[६२१] राग काफी

कांकरी कान्ह मोहि किन मारै।
टेढ़ी चितवनि मो तन चितवत लोट पोट करि डारै ॥
है गुरूजन को लाज सखी री निकसी निपट सवारै।
बरज्यो न मानै तऊ नंद सुत जो कोऊ कहि हारै ॥
कहा करौं कहां जाऊँ पुकारौ को यह न्याउ बिचारै।
'परमानंद' प्रीतम की बातें ऐती कौन संभारै ॥

[६२२]　　　　राग यमन

हम तुम मिलि दोऊ खेलैं होरी नव निकुंज में जैये ।
अबीर गुलाल कुंमकुंमा केसरि रंग परस्पर नैये ॥
और सखी कोऊ भेद न जानै ग्वालन तेंहु न जनैये ।
'परमानंद स्वामी' संग खेलत मन भावत सुख पैये ॥

डोल के पद

[६२३]　　　　राग देवगांधार

मदन गोपाल झूलत डोल ।
वाम भाग राधिका विराजत पहरें नील निचोल ॥
गौरी राग अलापत गावत कहत भामतें वोल[1] ।
नंद नंदन को भलो मनावत जासों प्रीति अतोल ॥
नीको भेख वन्यो मनमोहन आज लई हम मोल ।
वलिहारी[2] मन मोहन मूरति जगत देहुँ सब ओल ॥
अद्भुत रंग परस्पर वाढ्यो आनन्द हृदय कलोल ।
'परमानन्ददास' तिहि अवसर उडत होलिका झोल ॥

[६२४]　　　　राग देवगांधार

डोल माई झूलत हैं व्रजनाथ ।
संग सोभित वृषभान नंदिनी ललिता विसाखा साथ ॥
वाजत ताल मृदंग मुरज डफ रंज मुरज वहु भाँत ।
अति अनुराग भरे मिलि गावत अति आनन्द किलकात ॥
चोवा चन्दन वूका वन्दन उड़त गुलाल अबीर ।
'परमानन्ददास' वलिहारी राजत हैं वलवीर ॥

१　भावते बोल
२　बलिहारी या बानिक ऊपर

[६२५] राग सारंग

डोल चंदन को झूलत हलधर बीर।
स्री वृन्दावन मे कालिन्दी के तीर॥
गोपी रही अरगजा छिरकत उड़त गुलाल अबीर।
सुरनर मुनि जन कौतुक भूले व्योम विमानन भीर॥
वाम भाग राधिका बिराजत पहरें कंसुबी चीर।
'परमानंद स्वामी' संग झूलत बाढ्यो रंग सरीर॥

[६२६] राग सारंग

चलहू तौ ब्रज मैं जैये।
जहां राधा कृष्न रिझैये॥
ब्रखभान राज घर आये।
तहाँ अति रस न्यौति जिवाये॥
तहाँ ब्रजवासिन जुरि आई।
जहां बैठे कुंवर कन्हाई॥
तोहि गारी कहा कहि दीजै।
यह जस आपनो सुनि लीजै॥
द्वै बाप सबै कोऊ जानै।
जाहि बेद पुरान बखानै॥
तेरी मैया आनि अनि जाती।
तुम बैठे हिलि मिलि पाँती॥
तेरी फूफी पंच भरतारी।
सो तो अर्जुन की महतारी॥
तेरी बहिन सुभद्रा बारी।
सो तो अर्जुन संग सिधारी॥
यहै जस सुनि कुंवर किसोरी।
तब प्रीति हँसी मुख मोरी॥
जो यह गारी गावै।
सो प्रेम पदारथ पावै॥
यह जस 'परमानन्द' गावै।
कछु रहसि बँधाई पावै॥

[९२७] राग गोरी

ह्वां तौ कोउ हरि की सी भाँति बजावति गौरी ।
हौ ग्रह घाट बाट घरू तजि कै सुनत बेनु धुनि दौरी ।।
गई हौ तहाँ जहां इनि कुंज बन अरू बैठे किसलय चोरी ।
देखी मैं पीठि दीठि द्रुम ओझिल फरकत पीत पिछोरी ।।
लीनी हौं बोलि तहाँ मेरी सखी री देखि बदन भइ बौरी ।
'परमानद' नंदनदन तोहि मिलिहै री भरि भरि कोरी ।।

[९२८]

कहाँ करौ जो हौ मदन जगाई ।
चारि जाम निस बैठी जागौ मन उहाँई जहाँ कुंवर कन्हाई ।।
पाँच बरस के स्याम मनोहर जमुना तीर खेलत देखि आई ।
तनक भनक मेरे कान परी तब कहत सुनि नंद दुहाई री ।।
छिनु बाहिर छिन भीतरि आऊ प्राची दिस जोवत मेरी माइ ।
'परमानंद' भोर कब ह्वै है जाउ उहाँ उठि बिनहिं बुलाई ।।

[९२९]

कोउ माधौ लेइ माधौ लेइ वेचत काम रस दधि को नाम
कहत न आवं परी जु प्रेम वस ।
गोरस वेचन चली बृन्दावन माँझ ।।
हरि के स्वरूप भूली परी जु ह्वै गई साँझ ।
विरह व्याकुल भई विसरि गये हैं धाम ।।
'परमानन्द' प्रभु जगत पावन नाम ।

[६३०] राग सारंग

पून्यौ चंद देखि मृगनैनी माधो को मुख सुरति करै ।
रास बिलास सँभारति पुनि पुनि सीस फोरि अरु नैन भरै ॥
सोई दिन बहुरि कबहि करिहैं रहसि बाँह कर कमल धरै ।
'परमानंद स्वामी' के बिछुरे मलिन बदन अरु हृदय जरै ॥

———

परमानन्द सागर

[पद-सग्रह]

[अकारादि क्रम से सूची]

अ

आ

भ

म

य

र

ल

व

स

	पद स०	पृ० स०	राग
मब विधि मगल नद को लाल	५८६	२०५	भैरव
सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारो	८६०	३०२	देवगाधार
सबै मिलि मगल गावो माई	११	५	बिलावल
सरद रात गोपाल लीला रही है नैननि लाग	२४१	७६	,,
मरद ऋतु सुम जानि अनूपम दममो को दिन आयोरी	२०७	६६	सारग
सहज प्रीति गोपालै भावै	३८२	१२६	वसत
सग तिहारे लैहुँगी रजधानी	४६१	१६६	सारग
सँदेसो राधिका को लीजै	७५२	२६२	,,
सवारे मन हर्यो हमारो कमल दल नायक हो	२३७	७५	,,
साँची प्रीति भई इक ठौर	२४४	७७	,,
सांचो दिवान है री कमल नयन	८८०	३००	कल्याण
साँवरे भले हो रति नागर	७१७	२४६	विभाग
साँवरे भले हो रति नागर	६०६	२१२	आसावरी
साँवरो बदन देखि लुभानी	१३१	४४	सारग
सिखवत केतिक रात गई	३२६	११०	विहाग
सिर धरे पखौवा मोर के	६६८	२३३	सारग
सिला पखारो भोजन कीजै	६४६	२२५	बिलावल
सीतल चरन बाहु भुज बल में जमुना तीर गोकुल ब्रज महीयाँ	७३२	२५५	भैरव
सुखद सेज पौढे स्री वल्लभ सग लिये स्री नवनीत प्रिया	६६१	२४१	केदारी
सुदिन सवारो सोधि कै लाल जू भोजन कीजै	५२	१७	सारग
सुदिन सुमगल जानि जसोदा लाल को पहिरावत बागे	२०६	६६	,,
सुधि करत कमल दल नैंन की	५६१	१६०	धनाश्री
सुनतउ जिय धरि मुरि मुमकानी	३६४	१३४	सारग
सुन री सखी तेरो दोस नाही मेरो पीउ रसिया	४३०	१४६	कान्हरो
सुन सुत एक कथा कहुँ प्यारी	६६५	२८२	विहाग
सुनोहो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल मे	५८	२०	लावनी
सुनियत आज सुदिन सुमरे गाई	१०	५	जैतश्री
सुनि राधा इक बात भली	४३७	१४८	सारग
सुनियत ब्रज में ऐसी चालि	४८२	१६३	
सुनियत मल्ल माधो आए	५०३	१७०	,,
सुनि मेरो वचन छबीली राधा	४५५	१५४	आसाबरी
सुनि प्यारी कहैं लाल बिहारी खेलन चलो खेलैं	३८५	१३०	बसत
सुनो ब्रजनाथ छाडो लरिकाई	१८१	५६	विलावल
सुनोरी आज (मगल) नवल बधायो है	६	३	रामकली
सुन्दर आउ नन्द जू के छगन मगनियाँ	६६	२३	बिलावल
सुन्दर ढोटा कौन को सुन्दर मृदुवानी	६१६	२१६	,,
सुन्दरता गोपालहि सोहै	४४६	१५२	सारग
सुन्दर नन्द नदन जो पाऊँ	३२५	१०८	विहाग

र

ल

ल

व

स